# स्वतंत्रता पूर्व भारतीय राजनैतिक आंदोलन में बुन्देलखण्ड की भूमिका (1700-1947)

## बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

से राजनीति विज्ञान में

पी-एच. डी.

की उपाधि हेतु प्रस्तुत
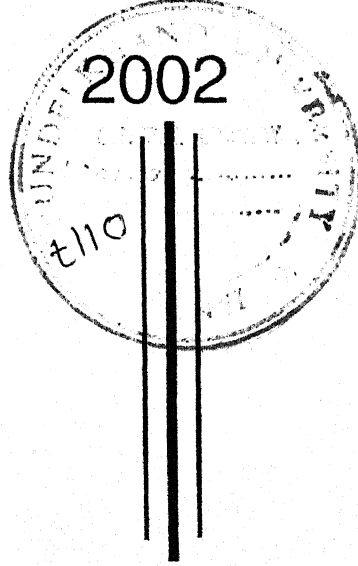
शोध निर्देशक -

डा. आदित्य कुमार

रीडर- राजनीति विज्ञान विभाग

डी० वी० कालेज उरई

शोधकर्ता

दिवसकांत समाधिया

शोध केन्द्र :

दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई (जालौन) उ० प्र०

**डा0 आदित्य कुमार**
रीडर, राजनीति विज्ञान विभाग

**दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय,**
**उरई (उ0 प्र0)**
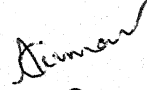
## प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **श्री दिवसकांत समाधिया** आत्मज **डा0 एन0 डी0 समाधिया**, जो बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी में **राजनीति विज्ञान** में **पीएच0 डी0 (Ph. D.)** की उपाधि हेतु मेरे निर्देशन में **''स्वतन्त्रतापूर्व भारतीय राजनैतिक आंदोलन में बुन्देलखण्ड की भूमिका (1700–1947)''** विषय पर शोध कार्य हेतु पंजीकृत थे, ने अपना शोध कार्य पूर्ण कर लिया है।

मैं यह भी प्रमाणित करता हूँ कि

1. जहाँ तक मेरी जानकारी है यह शोध प्रबन्ध मौलिक है और शोधार्थी अथक प्रयासों का परिणाम है।
2. शोधार्थी (श्री दिवसकांत समाधिया) ने मेरे निर्देशन में अध्यादेश द्वारा वांछित अवधि में अपना कार्य पूरा किया है।

दिनांक: 26/12/02

**(डा0 आदित्य कुमार)**
**शोध निर्देशक**

# प्राक्कथन

बुन्देलखण्ड विंध्याचल की तराई में स्थित है। इसका इतिहास बहुत अधिक प्राचीन है। आर्य सभ्यता और आर्य संस्कृति का कर्मक्षेत्र यह रहा इसे 'जेझार्कमुक्ति' 'दशार्ण' चेढ़ि आदि अनेक नामों से सम्बोधित किया गया है। महाभारत में मार्कण्डेय पुराण में इसका उल्लेख आता है। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग ने इस क्षेत्र को 'जुझौति' नाम से सम्बन्धित किया है।

बुन्देलखण्ड में चंदेलों का राज्य राजनीतिक, सांस्कृतिक कला की दृष्टि से बहुत उच्च्य कोटि का रहा है। आज भी कालिंजर, खजुराहों, देवरी आदि स्थानों पर इसके अवशेष देखे जा सकते हैं। चंदेलों के बाद बुन्देलखण्ड में बुन्देली राजाओं का शासन आया। छत्रसाल के समय में एक व्यापक संघर्ष हुआ। छत्रसाल के बाद बुन्देलखण्ड के एक बड़े प्रदेश पर मराठों का राज्य रहा। भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना से पूर्व हुये प्रथम स्वाधीनता संग्राम में बुन्देलखण्ड की महती भूमिका रही। गांधी जी के अंहिसात्मक आंदोलन एवं क्रान्तिकारियों की गतिविधियों में बुन्देलखण्ड के लोगों की सक्रिय भागीदारी रही है।

प्रस्तुत अध्ययन स्वतन्त्रता से भारतीय राजनीति में बुन्देलखण्ड की भूमिका से सम्बन्धित है। इसके लिये अध्ययन की आयोजना निम्नांकित रूप में की गई है–

**प्रस्तावना** के अन्तर्गत अध्ययन की आवश्यकता पर प्रकाश डाला गया है। **प्रथम अध्याय** बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक सामाजिक पृष्ठभूमि एवं चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का परिचय कराता है।

**द्वितीय अध्याय** बुन्देलखण्ड में बुंदेला शासन एवं रानीति का सम्यक् दिग्दर्शन कराता है। **तृतीय अध्याय** प्रथम स्वतंत्रता संग्राम 1857 में बुन्देलखण्ड के योगदान को प्रदर्शित करता है। **चतुर्थ अध्याय** गांधी पूर्वकाल में राष्ट्रीय आंदोलन में बुन्देलखण्ड की भूमिका को स्पष्ट करता है।

**पाँचवा अध्याय** गांधी युगीन राष्ट्रीय आंदोलन में बुन्देलखण्ड की सहभागिता प्रदर्शित करता है। **छठा अध्याय** राष्ट्रीय आंदोलन के अंतिम चरण एवं बुन्देलखण्ड की भूमिका प्रस्तुत करता है। **उपसंहार** शोध ग्रन्थ का निष्कर्ष प्रस्तुत करता है।

शोध प्रबन्ध को पूरा करने में मुझे जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय पुस्तकालय, नई दिल्ली, तीन मूर्ति पुस्तकालय, नई दिल्ली, सप्रू हाउस, नई दिल्ली, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय पुस्तकालय, झांसी, एवं डी0 वी0 कालेज, पुस्तकालय से बहुमूल्य सामग्री प्राप्त हुई। मैं इनके पुस्तकालयाध्यक्षों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ।

यह शोध प्रबन्ध मेरे निर्देशक परम श्रद्धेय गुरुवर डा0 आदित्य कुमार, रीडर, राजनीति विज्ञान विभाग, डी0 वी0 कालेज, उरई के निर्देशन, सहयोग एवं प्रोत्साहन के परिणाम स्वरूप ही पूर्ण हो सका है। उनके श्री चरणों को मैं नमन करता हुआ उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

अपने शोध ग्रंथ को पूरा करने में मुझे आदरणीय डा0 राजेश पाण्डेय, श्री अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद' एवं गुरूदेव डा0 रिपुसूदन सिंहजी से विशेष सहयोग प्राप्त हुआ है। मै इन सभी को अपना साधुवाद व्यक्त करता हूँ।

दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई वैदिक समिति के सचिव श्री विजयकरन नाथ विसारिया एवं सदस्य प्रबन्ध कारिणी डा0 देवेन्द्र कुमार का आर्शीवाद व प्रोत्साहन सदैव मिला। मैं दोनों के प्रति अपनी श्रद्धा निवेदित करता हूँ।

मेरे पिताश्री डा0 एन0 डी0 समाधिया, प्राचार्य, डी0 वी0 कालेज सदैव से मेरे प्रेरणा स्त्रोत रहे हैं। शोध प्रबंध की पूर्णता उन्हीं के आशीष का सुफल है मैं उनके प्रति अपना आदरप्रदर्शित करता हूँ।

राजनीति विज्ञान विभाग की अध्यक्षा डा0 जयश्री पुरवार एवं वरिष्ठ रीडर डा0 राजेन्द्र पुरवार के प्रति भी उनके सहयोग हेतु मैं परम आभारी हूँ।

मैं अपनी माता श्रीमती शीला समाधिया एवं अपनी बहनों डा0 श्रीमती निशा, श्रीमती दीप्ति एवं कु0 दिव्या एवं जीजाश्री आदरणीय एम0 के0 शर्मा (सिविल जज, ग्वालियर), एवं श्री नीलेन्द्र बादल (असि0 प्रोफेसर, के0 एन0 आई0 सुल्तानपुर) तथा प्रिय चित्रांश के प्रति भी आभारी हूँ जिन्होंने प्रत्येक स्तर पर मेरा उत्साहबर्द्धन किया।

अन्त में मैं श्री अनिल मिश्रा (काजल कम्प्यूटर) के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने मेरे शोध प्रबन्ध के मुद्रण मे मेरा पूरा सहयोग किया।

Diwas Kant<br>
(दिवस कान्त समाधिया)<br>
26/12/02

# अनुक्रमणिका

# प्रस्तावना

# प्रस्तावना

इतिहास देश और समाज की वास्तविक घटनाओं को एक सूत्र में बांधकर रखता है और समय–समय पर जन संस्कृति और सभ्यता का परिचय देता है। इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों में घटनायें परिवर्तन की भीषण ज्वालाओं का स्पष्टीकरण करती है और हमें संकेत देती है कि देश किस दशा में प्रगति कर रहा है। इतिहास किसी का हो, प्रान्त का हो, समाज का हो, वह अर्वाचीन और नूतन परम्पराओं को उद्‌घाटन करता है और युग के वातावरण को बल और प्रकाश प्रदान करता है। वह अतीत के खण्डहरों में सुप्त विशाल महापुरूष, महाराजा और वीर पुरूषों की कीर्ति एवं वैभव की गाथाओं, साहित्यिक एवं संस्कृतिक धरोहरों, सम्पदाओं एवं नयासों, त्याग और बलिदान की स्मृतियों, स्वर्ण युगीन कलाओं, चित्रकारियों, प्रस्तर भूतियों, मानव की बिखरी भावनाओं को अपने स्वर्णिम पृष्ठों में संजोकर विश्व के सम्मुख प्रकट करता है और वीरता, महानता, वैभव का दिग्दर्शन करता है। भारतीय इतिहास इस तथ्य का उद्‌घाटन करता है कि बुन्देलखण्ड भारत का हृदय है और इसका इतिहास अधिक प्राचीन है। आर्य सभ्यता एवं आर्य संस्कृति के अभिनवों की लीला भूमि यही बुन्देलखण्ड रहा है। भारत के किसी प्रदेश का इतिहास **जैजार्कभुक्ति (बुन्देलखण्ड)** के साथ प्राचीनता की होड़ नहीं कर सकता। वैदिक कालीन यजुर्वेदीय कर्म काण्ड का यहीं पर प्रथम अभ्युदय हुआ था। इसी कारण यह प्रदेश **यजुहोति** कहा गया था। आर्य संस्कृति में जीजाकमुक्ति, जीजमुक्ति तथा जुझौति आदि नामों से यह प्रदेश प्रतिष्ठित रहा है।

बुन्देलखण्ड के नाम समय समय पर परिवर्तित होते रहे हैं। परिवर्तन की भीष्म ज्वाला में यह प्रवाहित होता रहा। बुन्देलखण्ड को दशार्ण,[1] जेजाकमुक्ति, जुझौती, जुझारखण्ड

---

1. महाभारत, उद्योग पर्व, श्लोक 8–10

आदि नामों से पुकारा जाता था। प्रसिद्ध चीनी यात्री **ह्वेनसांग** ने आपने यात्रा वर्णन में इस प्रदेश को **जुझोति** नाम से उल्लेख किया है। बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध इतिहासकार श्री गोरेलाल तिवारी ने इस क्षेत्र का प्राचीन नाम 'जैजार्कमुक्ति या जुझौति दिया है। लेखक का कथन है **''कन्नौज साम्राज्यान्तर्गत जेजा (जयशक्ति) नामक एक कीर्तिमान एवं शक्तिशाली सामंत था उसके पराक्रम की धूम उन दिनों चारों ओर फैली थी। इसके फलस्वरूप इसका नाम जैजार्कभुक्ति पड़ गया।''**[1] आगे आपने बुन्देलखण्ड सीमा इस प्रकार दी है, **''भारत के मध्य भाग में नर्मदा के उत्तर और यमुना के दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत की शाखाओं से समाकीर्ण और यमुना की सहायक नदियों से जल से सिंचित सृष्टि सौन्दर्यालंकृत जो प्रदेश है उसे बुन्देलखण्ड कहते हैं।''**

आधुनिक विद्वानों को यह नाम 500–600 वर्षों से अधिक पुराना प्रतीत नहीं होता। डा0 आर0 पी0 अग्रवाल ने बुन्देलखण्ड की व्युत्पत्ति बूंद (बिंदु) लिः बुन्देलखण्ड बुन्देलखण्ड बतलाई है।[2] डा0 वागीश शास्त्री ने कहा है, ''इस प्रदेश को कुछ विद्वान पुलिन्द जाति का प्रदेश मानते हैं। अतः पुलिंद अपभ्रंश बोलिन्द और अपभ्रंश बुन्देल मानते हैं।[3] सारांश यह है कि इस प्रदेश की राजनैतिक परिस्थितियों के उतार चढ़ाव के साथ साथ बुन्देखण्ड की राजनैतिक सीमा घटती बढ़ती है। बुन्देलखण्ड की प्राचीनता के सम्बन्ध में विभिन्न इतिहासकारों ने अपने अपने विचार व्यक्त किये है। जयचन्द विद्यालंकार मानते हैं कि चेदि लोग प्रारम्भ से ही यमुना प्रदेश से दूर दक्खिन तक समस्त बुन्देलखण्ड में पहुंच गये थे। मध्यकाल में त्रिपुरी के राज्य ने कालिंजर का किला और समस्त उत्तरी बुन्देलखण्ड पर अपना अधिकार जमा लिया था। उस समय से समस्त बुन्देलखण्ड का नाम चेदि और चेदि के वंशज बाद में चन्देल

---

1. गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का इतिहास
2. डा0 आर0 पी0 अग्रवाल : बुन्देलीभाषा का शास्त्रीय अध्ययन
3. डा0 वागीश शास्त्री, बुन्देलखण्ड की प्राचीनता

कहलाये।[1] मदनपुर के सन् 1882 ई0 के एक लेख से प्रकट है कि पृथ्वीराज चौहान और चन्देल परभार के युद्ध के समय भी यह देश जेजाकमुक्ति या शक्ति कहलाता था। मदनपुर का शिला लेख निम्न प्रकार है–

**"अरूण राजस्य पौत्रेण श्री सोमेश्वर सुनुना।**

**जेजाकमुक्ति देवोऽयं पृथ्वीराजेने लुनिता।"**

इसके पश्चात इस प्रदेश का नाम **बुन्देल राजपूतों** के नाम पर **बुन्देलखण्ड** पढ़ा। इस प्रकार तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में यद्यपि दिल्ली सुल्तान ने यहां के महत्वपूर्ण दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया था किन्तु चन्देल नरेश इस भूभाग पर सोलहवीं शताब्दी तक राज्य करते रहे। सम्वत् 1304 के बाद यह देश चन्देलों के हाथ में आ गया। चन्देल गाहड वालों के वंशज थे जो विन्ध्य में रहने के कारण बुन्देले कहलाये। महाराज छत्रसाल इसी वंश की विभूति थे जिनकी कीर्ति उनकी वीरता के कारण दिशि दिशि में फैली हुई थी। उनके राज्य की सीमायें निम्नलिखित प्रसिद्ध दोहे से ज्ञात होती है–

**"इस यमुना उस नर्मदा इत चम्बल उत टोंस।**

**छत्रसाल सों लड़नकी रहू न काहू होंस।।"**

दीवान प्रतिपाल सिंह ने भी बुन्देलखण्ड की निम्नलिखित सीमायें प्रदर्शित की है–

**उत्तर समथल भूमि गंग जमुना सुबहति है।**

**प्राची दिसि कैसूर सोन कासी सुलसति है।**

**दक्खिन रेखा विन्ध्याचल तज शीतल करनी।**

**पश्चिम में चंबल कचल सोहति मन हरनो।**

---

1. जयचन्द विद्यालंकार,: भारत भूमि और उसके निवासी

**तिनमधि राजेगिरि, वन सरिता सरित मनोहर।**

**कीर्ति स्वल बुन्देलन को बुन्देलखण्ड वर।[1]**

गढ़कुंडार नरेश ने जो दिल्ली सल्तनत का वरद सामन्त था, हुरमत सिंह से इस क्षेत्र को अपने अधिकार में कर लिया था। मुगलों और मराठों के काल में भी यह एक ही प्रशासन के अन्तर्गत रहा और ओरछा तथा पन्ना उस कल के प्रसिद्ध नगर थे। महाराजा छत्रसाल के राज कवि **लाल कवि** ने **'बुन्देला'** शब्द की व्याख्या बड़े ही अलौकिक ढंग से प्रस्तुत की है। आपका कथन है, ''गहरवार वंश के हेमकर्ण ने विन्ध्यवासिनी मां के चरणों में अपने मस्तक की रक्त को बूंद अर्पित करके मां दुर्गा से राज्य का वरदान प्राप्त किया।''[2] इस प्रकार **हेमकर्ण पंचम** ने रक्त की बूंदों के बलिदान के फलस्वरूप अपना नाम **'बुन्देला'** रखा। यहां से ही बुन्देले शब्द की उत्पत्ति हुई और इसी नाम पर इस प्रदेश का नाम **'बुन्देलखण्ड'** पड़ा।

प्रारम्भ से लेकर आज तक यह क्षेत्र किसी एक प्रान्त और शासक के आधीन नहीं रहा, फिर भी इसे भौगोलिक एकता और सांस्कृतिक दृष्टिकोणों से एक माना गया है। डा0 **नर्मदा प्रसाद गुप्त** के अनुसार **''सीमांकन से मेरा** तात्पर्य **किसी ऐसे कृत्रिम रेखा खींचने से नहीं है, जो किसी राजनैतिक और विधि निहित दृष्टिकोण से नियमित की गई हो। वरन ऐसे प्राकृतिक सीमांत से है, जो इस क्षेत्र के ऐतिहासिक परिवेश संस्कृति और भाषा के उद्भव एक्य से सुरक्षित रखते हुए उसे दूसरों जनपदों से अलग करता हो।''[3]**

बहुत से भूगोल शास्त्रियों ने इसका भौगोलिक और राजनीतिक स्तर पर वर्गीकरण किया है। परन्तु यह वर्गीकरण इतिहास के अनुकूल नहीं बैठता। बुन्देलखण्ड के सीमांकन के

1. दीवान प्रतिपाल सिंह : बुन्देलखण्ड का इतिहास
2. लाल कवि : छत्र प्रकाश
3. नर्मदा प्रसाद गुप्त : बुन्देखण्ड का सीमांकन

संदर्भ में बड़े–बड़े इतिहासकारों और भूगोलवेत्ताओं ने समय–समय पर महत्वपूर्ण प्रयास किए है। और उन्होंने इस क्षेत्र में काफी सफलता भी प्राप्त की है। प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता **श्री एस0 एम0 अली** ने पुराणों के आधार पर विन्ध्यक्षेत्र के तीन जनपदों विदिशा, का ऊपरी बेतवा के बेसिन से दशार्ण का (धसान) और उसकी धाराओं के प्रमुख गहरी घाटियों द्वारा चीरा हुआ सागर प्लेटो तक फैले प्रदेश से तथा करुष का सोन नदियों के बीच के समतलीय मैदान से सभीकरण किया है। इसी प्रकार त्रिपुरी जनपद जबलपुर की नर्मदा घाटी से लेकर मण्डला नरसिंहपुर जिलो के कुछ भाग को बुन्देलखण्ड का भाग माना है। इतिहासकार जयचन्द्र विद्यालंकार ने बुन्देलखण्ड की सीमाओं का विभाजन ऐतिहासिक और भौगोलिक दृष्टि से किया है।[2] उन्होंने बिन्ध्याचल पर्वत श्रेणी के अन्तर्गत बुन्देलखण्ड को तीसरा प्रान्त माना है। जिसमें उन्होंने बेतवा (वेत्रवती) धसान (दशार्ण) और केन (शुक्तमती) के नदी क्षेत्र एवं नर्मदा की ऊपरी घाटी और पचमढी से अमरकंटक तक का पर्वतीय क्षेत्र शामिल किया है। वर्तमान भौगोलिक और भौतिक शोधों के आधार पर बुन्देलखण्ड को एक भौतिक क्षेत्र घोषित किया गया है। उसकी सीमाएं इस प्रकार निर्धारित की गई हैं– उत्तर में यमुना, दक्षिण में विन्ध्य पर्वत की श्रेणियां, उत्तर पश्चिम में चम्बल एवं दक्षिण पूर्व में पन्ना अजयगढ़ की श्रेणियां, यही बुन्देलखण्ड क्षेत्र।[3] इसमें उत्तर प्रदेश के पाँच जिले जालौन, ललितपुर, झांसी, हमीरपुर, और बांदा। मध्य प्रदेश के चार जिले दतिया, टीकमगढ़, छतरपुर, पन्ना इसके अतिरिक्त उत्तर पश्चिम में भिण्ड, लहार, ग्वालियर जिले की भांडेर तहसील शामिल है इसे भू संरचना की दृष्टि से सही माना जा सकता है परन्तु सांस्कृतिक एवं भाषा की दृष्टि से यह सही नहीं है।

आगे चलकर राजनीतिक दृष्टिकोणों से बुन्देलखण्ड को कई भागों में विभाजित होना पड़ा। प्रसिद्ध पुरातत्व वेत्ता **कनिंधम** ने भी बुन्देलखण्ड की सीमा निर्धारित करने की

---

1. एस0 एम0 अली : द जाग्रफी पुरानाज पृ0 159
2. जयचन्द विद्यालकार : भारत भूमि और उसके निवासी पृ0 65
3. आर0 एल0 सिंह : इंडिया – ए रीजनल जाग्रफी पृ0 597

कोशिश की है।[1] उनके अनुसार बुन्देलखण्ड के अधिकतम विस्तार के समय इसमें गंगा, यमुना का समस्त दक्षिणी प्रदेश जो पश्चिम मे बेतवा नदी से पूर्व चंदेरी और सागर के जिलों सहित विन्ध्यवासिनी देवी के मन्दिर तक तथा दक्षिण में नर्मदा नदी के मुहाने के निकट बिलहरी तक प्रसारित रहा। यह सीमांकन चंदेल कालीन मूर्तिकला और स्थापत्य कला के आधार पर किया गया है। प्रसिद्ध इतिहासकार **बी0 एस0 स्मिथ** भी इसे मान्यता प्रदान करते हैं।[2]

बुन्देलखण्ड में चंदेलों का राज्य राजनीति संस्कृति और कला की दृष्टि से बहुत ही उच्च कोटि का रहा है। यह शासन वि0 सं0 857 से लेकर 1577 तक कायम रहा। आज भी कालिंजर खजुराहो देवरी, एवं अन्य स्थानों में उसके अवशेष देखे जाते हैं। हर्षवर्धन के साम्राज्य के बाद बुन्देलखण्ड के उत्तरी भाग में ब्राम्हण राजवंश बहुत दिनों तक रहा। परन्तु इसका कोई इतिहास प्राप्त नहीं होता। उसके बहुत दिनों के बाद चेदि देश में कोकल्लदेव प्रथम का राज्य था। उत्तर बुन्देलखण्ड में चंदलों का राज्य था और मालवा में परमारों का राज्य था। इसी समय ग्वालियर और नरवर में कछवाहा राजपूतों का राज्य था और कन्नौज में भोजदेव और उनके वंशजों का राज्य था। चंदेलों के पहले बुन्देलखण्ड में परिहारों का राज्य था। ये लोग गुर्जर शाखा के थे। चंदेलों के अधिकार में जो क्षेत्र था वह धसान नदी के पूर्व में और विन्ध्याचल पर्वत के उत्तर और पश्चिम में था। यह राज्य उत्तर में यमुना नदी तक दक्षिण में केन नदी के उद्‌गम स्थान तक फैला हुआ था। केन नदी इस देश के मध्य में बहती है। महोबा तथा खजुराहो इसके पश्चिम में कालिंजर और अजयगढ़ इसके पूर्व में है। इस प्रदेश में आजकल का बांदा और हमीरपुर जिला तथा चरखारी, छतरपुर, बिजावर, जैतपुर, अजयगढ़ और पन्ना जनपद आदि है। बाद में चंदेलों ने अपनी सीमा बेतवा नदी तक बढ़ा ली थी।

---

1. ए. कनिंघम : द एन्सिमेन्ट जाग्रफी आफ इंडिया पृ0 906
2. बी0 एस0 स्मिथ : ऐपी ग्राफिया इंडिका पृ0 130

इनकी उत्पत्ति के संबंध में एक कहावत है कि चंदेलों का वंश चन्द्रमा से चला। चन्द्रमा के वरदान से काशी के गहरवार राजा के पुरोहित की कन्या हेमवती से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। जिसने महोबा में अपना राज्य जमाया। इस समय चन्द्रमा के पुत्र का नाम चन्द्रवर्मा था। यह कथा केवल किवदन्ती मात्र है इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। इस संबंध में राजा धंगदेव का एक शिलालेख मिला है। इस लेख से चंदेल वंश का प्रारम्भ कर्ता नन्नुक को बतलाया गया है। परन्तु कथानकों में चंदेल वंश के आदि पुरुष चन्द्रातेय वर्णित हैं चंदेलों के इस प्रान्त का नाम जयशक्ति अथवा जैजाक के नाम पर जैजार्कभुक्ति पड़ा। पूर्व में इसे जुझौती भी कहते थे। जयशक्ति वाकपति का जेष्ट पुत्र था इसके छोटे भाई का नाम विजय शक्ति था। प्राप्त शिलालेखों में चंदेल राजाओं में नन्नकदेव के पहले वाले राजाओं का कोई हाल नहीं मिलता। नन्नुक वाकपति और विजय शक्ति के संबंध में कोई इतिहास नहीं मिलता। मात्र इनके नाम मिलते है। नन्नुक के संबंध में केवल यह लिखा है कि इसने परिहारों को मऊ के युद्ध में परास्त किया। इसके बाद परिहार लोग धसान नदी के पश्चिम और दक्षिण की ओर चले गए। जो लोग दक्षिण की ओर गये उन्होंने उचेहरा के तेली राजा को हराकर वहां अपनी राजधानी कायम की थी। युद्ध में चंदेलों के राज्य की नींव दृढ़ हुई।[1]

इस युग की सभ्यता संस्कृति का पता तद्युगीन भग्नावशेषों एवं शिलालेखों और साहित्य से चलता है। चंदेलकाल में कालिंजर, देवगढ़ खजुराहो एवं अन्य स्थानों में पर्याप्त मात्रा में मंदिर शिलालेख पाये जाते हैं। उनको देखकर इस युग का बोध सरलता से हो जाता है। इस युग में बहुत से साहित्यकार जैसे– संस्कृत नाटककार वत्स और आल्हखण्ड के रचयिता जगनायक भाट चंदेल राजाओं का आश्रय प्राप्त किए हुए थे। इन लोगों द्वारा रचित साहित्य से भी युग बोध होना स्वाभाविक है।

---

1. रामकृष्ण बुन्देली, सत्यकामा बुन्देली : बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन पृ0 53

बुन्देलखण्ड के चंदेलयुग को हम राजपूत युग के अन्तर्गत लेते हैं। क्योंकि इसी युग की सभ्यता संस्कृति चंदेलयुग में विकसित हुई। कहने को तो चंदेलराजा हिन्दू धर्मावलम्बी थे परन्तु इन्होंने अन्य धर्मावलम्बियों के साथ किसी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं किया। इनके काल में जहां शव और वैष्णव धर्मावलम्बियों ने धार्मिक स्थलों का निर्माण कराया वहीं पर खजुराहो, देवगढ़ बानपुर एवं ललितपुर के आसपास विशिष्ट स्थापत्य कला युक्त जैन मंदिरों का भी निर्माण हुआ। आल्हखण्ड के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि चंदेल राज्य में रहने वाले मुसलमानों को भी काफी सम्मान प्राप्त था। आल्हखण्ड में सैय्यद, के नाम का उल्लेख अनेक स्थानों में उध्रत है। इस युग में जातीय भेदभाव नहीं था। आल्हखण्ड मे ही रूपनबारी का वर्णन कई स्थानों पर है।

चंदेलों के रिक्त स्थान की पूर्ति बघेलें एवं बुन्देलों ने की। बुन्देले मूल रूप से कन्नौज के गहरवार वंश की एक शाखा थे, जो विंध्याचल प्रदेश में आने के कारण बुन्देले कहलाए। काशीराज के एक राजकुमार हेमकुमार ने भी असंतुष्ट होकर विंध्यवासिनी देवी की शरण में जाकर अनुष्ठान किया और पंचम नामधारी बनकर उसने सन् 1048 में गोहरा की ओर प्रस्थान किया। अपनी स्थिति सुदृढ़ कर उसने माहौन (उरई) पर आक्रमण करके एक राज्य की स्थापना की। चूंकि उसने अपने रक्त की बूंदों से विंध्यवासिनी देवी की अर्चना की थी, इसलिये उसके वंशज बुन्देले कहलाए। 16वीं सदी से बुन्देलखण्ड के इतिहास में एक नया अध्याय प्रारंभ होता है, जिसमें बुंदेलों का उदय सूर्योदय के समान हुआ। सन् 1531 में बुन्देलों की राजधानी ओरछा बन गयी। कालिंजर के किले पर बुन्देलों ने शेरशाह सूरी से संघर्ष किया, जहां शेरशाह बूरी तरह घायल हो गया।[1]

---

1. मोती लाल त्रिपाठी 'अशांत' : बुन्देलखण्ड का इतिहास पृ0 55

प्रारंभिक बुंदेली राजाओं में राजा रूद्र प्रताप और मधुकर शाह का नाम आता है। ओरछा में स्थापित भगवान राम राजा का मंदिर उन्हीं के काल का है। मधुकर शाह के समय मुगल बादशाह अकबर के साथ बुंदेलों ने स्वाधीनता के लिए युद्ध किया। संम्राट अकबर और राजकुमार सलीम के अंतर्विरोध का लाभ तत्तकालीन बुंदेली राजा रामशाह ने उठाया। उनके सेनापति वीरसिंह ने अबुल कज़ज की हत्या कर दी। अकबर की मृत्यु के बाद जब सलीम जहांगीर के नाम से बादशाह बना तो उन्होंने वीर सिंह को बुन्देलखण्ड का राजा बना दिया। वीर सिंह बड़े ही दानी, गुणी और विद्वानों एवं कवियों के आश्रयदाता थे। हरदौल इन्हीं के पुत्र थे।

बुंदेली राज्य का स्वर्ण युग चंपतराय से प्रारंभ होता है। चंपतराय जुझारू सिंह के सेनापति थे। उनके कहने से ओरछा के राजा जुझारू सिंह ने जहांगीर की मृत्यु के बाद मुगल बादशाह शाहजहां को कर देना बंद कर दिया था। शाहजहां बड़ी सेना लेकर आया, लेकिन उसे मुंह की खानी पड़ी। शाहजहां के बाद मुगलों के उत्तराधिकारी युद्ध में चंपतराय ने औरंगजेब का साथ दिया और औरंगजेब विजयी हुआ। औरंगजेब ने चंपतराय को विशाल क्षेत्र प्रदान किया। औरंगजेब की नीतियों से यह मित्रता ज्यादा देर तक नहीं रही। चंपतराय को स्वाधीन बुंदेला राज की स्थापना करनी चाही। तत्कालीन ओरछा नरेश ने मुगलों का समर्थन किया। युद्ध में विश्वासघातियों के कारण चंपतराय विद्रोहियों के घेरे में आ गए और चंतपराय तथा उनकी पत्नी ने कटार मारकर अपनी आत्माहुति 1664 में दे दी।

चंपतराय की मृत्यु के बाद उनके पुत्र 16 वर्षीय छत्रसाल ने पिता के अभियान को आगे बढ़ाया। वे छत्रपति शिवाजी के संपर्क में भी आए, जिन्होंने उन्हें स्वाधीनता का मंत्र

दिया। उन्होंने पिता से विश्वासघात करने वालों का वध किया और व्यापक सैन्य संगठन किया। औरंगजेब को उन्होंने बहुत परेशान किया। सन् 1707 ई0 में औरंगजेब की मृत्यु हो गई और उसके उत्तराधिकारी बहादुर शाह ने छत्रसाल से सहयोग मांगा। उस समय छत्रसाल का राज्य काफी विशाल हो गया था। छत्रसाल के राज्य की वार्षिक आय 1 करोड़ से अधिक थी। वे कवियों के आश्रयदाता थे। उनके गुरू यद्यपि नरहरिदास थे किंतु गुरू प्राणनाथ से उन्होंने काफी प्रेरणा प्राप्त की थी।

मुगल सम्राट बहादुर शाह की मृत्यु के बाद सूबेदार मुहम्मद शाह के काल में मुहम्मद खां बंगस काफी शक्तिशाली हो गया। उसने 1729 ई0 में बुंदेली राजाओं की फूट का लाभ उठाते हुए छत्रसाल को घेर लिया। ऐसी विषम परिस्थितियों में छत्रसाल ने पेशवा बाजीराव को सहायता के लिए पत्र लिखा, जिसमें निम्नांकित पद अंकित था–

**जो गति भई गजेंद्र की सो गति पहुंची आज**

**बाजी जात बुंदेली की राखो बाजी लाज।**[1]

बाजीराव उक्त पत्र को पाकर अपनी विशाल सेना के साथ छत्रसाल की सहायता के लिए महोबा पहुंचे और मुहम्मद खां बंगस को घेर लिया। छत्रसाल ने इस शर्त पर उसे छोड़ा कि वह पुनः बुंदेलखण्ड पर आक्रमण नहीं करेगा। इस समय छत्रसाल काफी वृद्ध हो गए थे। उन्होंने अपना राज्य पुत्रों को बांट दिया और एक तिहाई भाग बाजीराव पेशवा को पुत्र मानकर प्रदान किया, जिसमें कालपी, आटा, हृदयनगर, जालौन, झांसी, सिंरौज, गढ़ाकोटा, हमीरपुर, सागर और बांदा आदि शामिल थे।

सन् 1761 में पानीपत का तृतीय युद्ध महमद शाह अब्दाली और मराठों के बीच

---

1. मोतीलाल त्रिपाठी 'अशांत' : बुन्देलखण्ड का इतिहास

हुआ, जिसमें गोविंद पंत बुंदेला और मस्तानी बाजीराव के पुत्र शमशेर बहादुर शहीद हुए। इस समय देश की स्थिति राजनैतिक रूप से परिवर्तित हो गई तथा मुगल और मराठे द्वितीयक शक्ति बन गए।

प्रथम आंग्ल मराठा युद्ध 1756 में आंरभ हुआ। जालौन के सूबेदार गोविंद राव ने बंबई की ओर बढ़ने वाली सेना, जो कर्नल लेसली के नेतृत्व में थी, का प्रतिरोध किया। लेकिन आपसी फूट का लाभ उठाकर अंग्रेजों ने मराठों को पराजित किया। इसी बीच अवध के नबाव सुजाउद्दौला ने भी बुंदेलखण्ड पर अधिकार का प्रयत्न किया। छतरपुर के पास 4 जुलाई 1783 को बुंदेलखण्ड का महाभारत हुआ, जिसमें 1 लाख से भी अधिक बुंदेली सैनिक मारे गए। इधर मराठों ने भी शेष बुंदेली राजाओं के आपसी फूट का लाभ उठाकर उस पर अपने अधिकार का प्रयास किया। नबाव अली बहादुर (पेशवा बाजीराव और मस्तानी के पौत्र) ने बांदा और कालिंजर को विजित करने का प्रयास किया। कालिंजर का घेरा डालते समय उसकी मृत्यु हो गई। इसी बीच अंग्रेजों ने मराठों को पराजित कर दिया। बाजीराव द्वितीय पेशवा गद्दी पर बैठे। अलीबहादुर के पुत्र शमशेर बहादुर ने इसका विरोध किया। उसे अंग्रेजों से समझौता करना पड़ा।

बुंदेलखण्ड को जिला बनाया गया, जिसका मुख्यालय बांदा रहा। आगे चलकर उत्तरी और दक्षिणी बुंदेलखण्ड़ में बांदा और हमीरपुर जिले बने। दूसरे आंग्ल–मराठा युद्ध में पिण्डारियों के आक्रमण से संपूर्ण बुंदेलखण्ड की भीषण जन और धन की हानि हुई। तृतीय आंग्ल–मराठा युद्ध 1818 में हुआ और अंग्रेजों का वर्चस्व निरंतर बढ़ता गया। अनेक मराठों ने अंग्रेजों से संधि कर ली। झांसी का राज्य रामचंद्र राव को दिया गया और गोविंद राव का जालौन और गुरसरांय का राज्य।

---

लार्ड डलहौजी के वॉयसराय बनने के बाद गोद लेने की प्रथा को समाप्त कर दिया गया। 1838 में गोविंद राव का हटाकर जालौन का प्रबंध अंग्रेजों ने अपने हाथ में ले लिया। झांसी के राजा रामचंद्र राव निःसंतान थे। उन्हें गोद लेने की इजाजत नहीं दी गयी। कई उत्तराधिकारियों में गंगाधर राव को झांसी का राजा मान लिया गया।

गंगाधर राव का विवाह लक्ष्मीबाई से हुआ। अंग्रेजों की नीति से कई राजा असंतुष्ट थे, जिसमें पेशवा बाजीराव के दत्तक पुत्र नाना साहब, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई तथा नबाव अली बहादुर द्वितीय प्रमुख थे और धीरे–धीरे प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की परिस्थितियाँ निर्मित होने लगीं।

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम होने के बुन्देलखण्ड में धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनीतिक कारण थे। पुराने राजवंशों का अस्तित्व खतरे में था। क्रान्तिका प्रारंभ मेरठ से मई सन् 1857 में चर्बी युक्त कारतूस के प्रयोग के विरूद्ध हुआ। जेल में सजायाफ्ता बंदियों को मुक्त कर दिया गया सरकारी खजाने लूट लिये गये। तहसील कार्यालय के सरकारी कागजात जला दिये गये। झांसी के महाराज गंगाधर राव की मृत्यु 1853 में हो गई थी, दामोदर राव को रानी लक्ष्मीबाई ने गोद लिया किन्तु उसे मान्यता नहीं मिली। रानीलक्ष्मीबाई को 5000/– मासिक पेंशन स्वीकृत कर मेजर मालकम ने झांसी को अंग्रेजी राज्य में मिलाने का आदेश दिया। रानी लक्ष्मीबाई ने पेंशन ठुकरा दी और दामोदर राव के नाम से शासन चलाने लगीं। झांसी में कमिश्नर स्क्रिन की नियुक्ति हुयी अंग्रेजी सेना का नेतृत्व जनरल डनलप के अधीन हो गया। क्रान्ति की चिन्गारी फैलते ही झांसी की देशी सेना ने कमिश्नर सेनापति को मार डाला। उधर नबाव बांदा ने बांदा की सत्ता अपने हाथ में ले ली और इस तरह रानी के ऊपर अंग्रेजों ने आक्रमण कर दिया। रानी वीरता से लड़ी किन्तु अन्त में ग्वालियर में वह पराजित

हो गयी और वीरगति को प्राप्त हो गयी। धीरे–धीरे पूरे बुन्देलखण्ड पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया।[1]

1858 के बाद सारा देश अंग्रेजी राज्य के अन्तर्गत आ गया रानी विक्टोरिया का शासन प्रारंभ हुआ। अंग्रेजी शासन में देश को राजनीतिक एकता प्राप्त हुयी। आवागमन के साधनों का विकास हुआ, अंग्रेजी शिक्षा से लोग शिक्षित हुये। इस विकास का प्रभाव बुन्देलखण्ड पर भी पड़ा।

1885 में कांग्रेस की स्थापना हुयी। प्रारंभ में कांग्रेस अंग्रेजी शासन की प्रशंसक रही अंग्रेजों ने विजेता के रूप में अपनी सुविधा के लिये जो विकास किये उनका प्रभाव बुन्देलखण्ड पर भी पड़ा लेकिन भारत के आर्थिक शोषण की अंग्रेजों की प्रक्रिया के प्रारंभ होते ही बुन्देलखण्ड भी इससे अछूता नहीं रहा। तिलक के उग्रवादी विचारों का प्रभाव सारे देश की तरह बुन्देलखण्ड पर भी पड़ा।

अंग्रेजों ने प्रजातांत्रिक संस्थाओं का समावेश प्रारंभ किया। द्वैध शासन की स्थापना हुयी। निरंतर बढ़ती दमन कारी नीति से जनता अपने को अपमानित महसूस करती थी। गांधी जी के राजनीति में प्रवेश के साथ गांधीवादी दर्शन से बुन्देलखण्ड की जनता भी प्रभावित रही। असहयोग आन्दोलन में बुन्देलखण्ड की जनता ने बढ़ चढ़ कर भाग लिया, लाखों व्यक्ति जेल गये, सत्याग्रह किया।[2]

बुन्देलखण्ड क्रान्तिकारियों की भी कर्मस्थली रहा है। चन्द्रशेखर आजाद ने झांसी के पास ओरछा में काफी समय तक गुप्त रूप से रहकर अपनी गतिविधियां संचालित कीं। यशपाल का भी कार्यक्षेत्र बुन्देलखण्ड रहा। झांसी में भगवान दास माहौर और उनके साथियों ने क्रान्तिकारी गतिविधियों को संचालित करने में योगदान दिया।[3]

---

1. गुरूमुख निहाल सिंह : भारत का संवैधानिक विकास
2. आर० सी० अग्रवाल : भारत का राष्ट्रीय आंदोलन एवं भारतीय संविधान
3. राष्ट्र गौरव : बुन्देलखण्ड का स्वतंत्रता संग्राम

क्रान्तिकारियों के पराभव के बाद स्वतंत्रता आन्दोलन पूरी तरह महात्मा गांधी और कांग्रेस के हाथों में आ गया। बुन्देलखण्ड की जनता ने सविनय अवज्ञा एवं भारत छोड़ो आन्दोलन में उत्साह से सहभागिता की। और जिसके परिणाम स्वरूप स्वाधीनता का स्वाद यहां की जनता को भी प्राप्त हुआ।

प्रस्तुत अध्ययन स्वतन्त्रता से पूर्व भारत की राजनीति में बुन्देलखण्ड की भूमिका से सम्बन्धित है। इस क्षेत्र में चंदेलों की राजनीति का पर्याप्त प्रभाव रहा है। बुन्देलों ने मुगलों से संघर्ष करते हुये मध्यकालीन राजनीति ने प्रमुख भूमिका निभाई। छत्रसाल ने व्यापक बुन्देली साम्राज्य की स्थापना की इसके बाद यह क्षेत्र मराठों के प्रभाव में रहा। प्रथम स्वाधीनता संग्राम में इस क्षेत्र की महती भूमिका रही। क्रान्ति की अग्नि शिखा महारानी लक्ष्मीबाई के बलिदान से कोई भी भारतवासी अपरिचित नहीं है।

कांग्रेस की अखिल भारतीय स्वरूप की स्थापना के बाद बुन्देलखण्ड में भी इसका व्यापक प्रभाव रहा। गांधी जी अंहिसा और सत्याग्रह तथा क्रान्तिकारियों के क्रान्तिकारी विचारों दोनों का ही समन्वित प्रभाव यहां के निवासियों पर पड़ा और दोनों ही विचार धाराओं के क्रियाकलापों में इस क्षेत्र की सक्रिय भागीदारी रही। भारत की स्वतन्त्रता पूर्व राजनीति पर बुन्देलखण्ड की अमिट छाप रही है।

= = = =0= = = =

# अध्याय—1

# बुन्देलखण्ड का परिचयात्मक अध्ययन

(i) भौगोलिक स्थिति

(ii) ऐतिहासिक परिचय

(iii) चन्देल कालीन बुन्देलखण्ड (830 से 1600 ई.)

(अ) शासन प्रबन्ध

(ब) न्याय व्यवस्था

(स) सामाजिक आर्थिक दशा

उत्तर में यमुना नदी एंव दक्षिण के बीच के क्षेत्र भिन्न कालों में अनेक नामों से संबोधित किए गये। आदिवासी गोंड़ जाति की प्रधानता के कारण यह प्रदेश **गोंडवाना** नाम से संबोधित हुआ।[1] पुराणों मे इस भूभाग का नाम **मध्य देश** भी पाया गया है। इसी आधार पर ब्रिटिश शासनकाल में इसको **सेंट्रल इंडिया** नाम से पुकारा गया। इस क्षेत्र में विन्ध्याचल पर्वत की श्रेणियाँ सर्वत फैली हुई हैं इसलिये इसे विन्ध्यांचल भी कहा जाता रहा। वनों की प्रधानता से यह क्षेत्र **'आरण्यक'** या **'वन्य–देश'** भी कहलाया। कालांतर में इसे **'आटव्य देश'** के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

महाभारत काल में यह **'चेदि–देश'** नाम से सेबोधित हुआ।[2] यहाँ का राजा शिशुपाल चेदि चन्देरी का राजा था, शुक्तिमती (केन) नदी तक इसकी सीमायें थी। धसान नदी के निकटवर्ती क्षेत्र को **'दशार्ण'** नाम से पुकारा जाता था। संभवतः इस भूभाग से दस नदियां प्रवाहित होती थी।

महात्मा बुद्ध के समय देश में सोलह **महाजनपद** थे। इसमें से ग्वालियर से केन नदी का प्रदेश **पांचालों** के आधीन था जिनकी राजधानी कन्नौज थी। केन नदी से पूर्व वाले प्रदेश पर वत्सों का राज्य था, यमुना नदी के तट पर स्थित कौशाम्बी इनकी राजधानी थी। दशार्ण के दक्षिण में **पुलिन्द** राज्य था। यह राज्य नर्मदा नदी कें तट तक फैला था। राजमार्ग भरहृत से होता हुआ कौशाम्बी तक जाता था। चेदि देश की सीमायें सोन नदी तक विस्तृत थी जो कालांतर में मगध बंशीय शासकों के आधीन हो गई।

छठी शती ईस्वी में यमुना नदी और नर्मदा नदी के बीच का क्षेत्र **'जेजाहुति'**, **'जुझौतिया'** कहा जाता था क्योंकि अधिकांश मात्रा में जुझौतिया ब्राह्मण, वैश्य और अहीर यहाँ के निवासी थे। युद्धप्रिय की प्रवृत्ति के कारण देग या 'जुझौतिया' का नाम लोकप्रिय भी हो गया।

---

1. मुशी श्यामलाल : बुन्देलखण्ड का इतिहास
2. महाभारत : शांति पूर्व, श्लोक 12–13

चन्देलवंशीय राजाओ में प्रतापी राजा **जयशक्ति** या **जेज्जाक** अत्यन्त प्रतापी राजा हुए। बारहवीं शदी के अन्त तक **'जेज्जाकभुक्ति'** के नाम से ही यह प्रसिद्ध था। महाराज धंग का राज्य ग्वालियर से विदिशा तथा पूर्व में सोन नदी तक फैला था। इसकी पुष्टि मदनपुर के सन् 1182 ई0 के शिलालेख से स्पष्ट है।

**अंखड राजस्व पौत्रेण श्री सोमेश्वर सुमुना ।**

**जेज्जाकभुक्ति देशोयम् पृथ्वीराजेन सोभिता।।**[1]

बुन्देला ठाकुरों का राज्य ईसा की चौदहवीं सदी में इस प्रदेश में प्रारम्भ हुआ। इनकी प्रथम राजधानी गढ़कुण्डार में थी जो कालान्तर में ओरछा स्थानान्तरित हो गयी। अनसे राज्य का विस्तार निम्न पद से स्पष्ट है :–

**इत जमुना उत नर्मदा, इत चम्बल उत टोंस।**

बुन्देलों का शासित प्रदेश ही बुन्देलखण्ड नाम से प्रसिद्व है। इस क्षेत्र की भाषा बुन्देली है और इसकी एक विशिष्ट संस्कृति है। बुन्देलखण्ड का सीमांकन कालानुसार परिवर्तनशील रहा। ब्रिटिश शासनकाल अथवा उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भिक दशक में भारत के मानचित्र में इसका सीमाकन $77^0 48$ पूर्वी देशान्तर से $81^0 33$ तक तथा $24^0 3$ उत्तरी अक्षांश से $26^0 26$ तक रेखांकित किया गया। इसका विस्तार 165 मील लम्बा तथा 232 मील चौड़ा, क्षेत्रफल लगभग 23817 वर्ग मील तथा जनसंख्या 2400000 मानी गयी। सेन्ट्रल इण्डिया एजेन्सी के अन्तर्गत सागर नर्मदा क्षेत्र शामिल नही किया गया था। **केप्टन जेम्स फ्रैकलिन** (सन् 1825ई0) के अनुसार बुन्देलखण्ड के उत्तर में यमुन नदी प्रवाहित है और दक्षिण में बरार और मालवा प्रदेश है, पूर्व में बघेलखण्ड है तथा पश्चिम में सिंधिया अधिकृत राज्य है। इसमे टेहरी झांसी, दतिया, समथर देशी राज्य समाविष्ट है।[2]

---

1. दीवान प्रतिपाल सिंह : बुन्देलखण्ड का इतिहास
2. जै. फ्रेकलिन : मैम्वायर आफ बुन्देलखण्ड

उत्तर–पश्चिमी प्रान्त के अन्तर्गत बुन्देलखण्ड प्रदेश सन् 1871 ई0 में **ई. टी. ऐटिकिन्सन** के अनुसार ''उत्तर मे यमुना नदी तक, उत्तर पश्चिम मे चम्बल नदी तक, दक्षिण में जबलपुर (सागर नर्मदा क्षेत्र) तक तथा उत्तर–पूर्व में बघेलखण्ड और मिर्जापुर तक विस्तृत है। इसमें बाँदा, झांसी, ललितपुर, जालौन, हमीरपुर, के ब्रिटिश शासित जिलें, संधि राज्य ओरछा, दतिया, समथर,सनद प्राप्त राज्य अजयगढ़, अलीपुर, अष्टभैया जागीर, धुरवई, टोरी–फतेहपुर, बिजना–पहाड़ी, बंका, बरौधा, बावनी, बेरी, बेहट बिजावर चरखारी तथा चौबियाना जागीर –भैसौंधा नयागांव, पालदेव, पहाड़ी, तरांव, तथा जिगिनी, खनियाधान, लुगासी, नयागांव, रेवई,पन्ना सरीला, सम्मिलित थे। सागर तथा दमोह जिले ''नर्मदा क्षेत्र'' ब्रिटिश शासनाधीन थे।''[1]

मुगल शासन (सम्राट अकबर से औरंगजेब तक) बुन्देलखण्ड का क्षेत्र आगरा, इलाहाबाद तथा मालवा प्रान्त के सूबेदारों द्वारा नियंत्रित था। केन तथा धसान नदी द्वारा विभाजित बुन्देलखण्ड–पूर्वी और पश्चिमी बुन्देलखण्ड राज्य के नाम से सम्बोधित किया जाता था। पूर्वी राज्य डांगही अथवा डाँगर क्षेत्र के नाम सम्बोधित किया गया था। यहां वन और पहाड़ अधिक थे जिन्हे स्थानीय भाषा में डांग कहा जाता है। अजयगढ़ कालींजर, चित्रकूट आदि इसी के अन्तर्गत थे।

बुन्देलखण्ड का सीमांकन विभिन्न इतिहासकारो, भूगोल–वेत्ताओं तथा भाषाविदों ने भी किया है। श्री एस. एम. अली ने विभिन्न पुराणों के आधार पर विन्ध्य क्षेत्र में तीन जनपद–विदिशा, दशार्ण एवं करूष की स्थिति का विवरण दिया है। विदिशा में ऊपरी बेतवा का बेसिन, 'दशार्ण' धसान नदी और उसकी गहरी घाटियों द्वारा चीरा हुआ सागर के पठार तक फैला हुआ प्रदेश तथा करूष के अन्तर्गत सोन नदी के बीच समतलीय मैदान समाविष्ट किया है। त्रिपुरी

---

1. डा0 रमेश श्रीवास्तव : बुन्देलखण्ड साहित्यिक ऐतिहासिक, सांस्कृतिक वैभव

जनपद में जबलपुर, मण्डला, नरसिहपुर के जिले माने है। इतिहासकार जयचन्द्र विद्यालंकार ने बुन्देलखण्ड को विन्ध्यांचल पर्वत श्रेणियों में फैला हुआ प्रदेश माना है जिसमें बेतवा (वेत्रवती), धसान (दशार्ण) और केन (शुक्तिमती) नदी क्षेत्र एवं नर्गदा की ऊपरी धाटी पचमढ़ी से अमरकंटक तक का क्षेत्र शामिल किया है।

पाजिटर के मतानुसार 'चेदि देश' उत्तर मे यमुना तट से दक्षिण में मालवा के पठार, दक्षिण–पुर्व में कर्बी (पयस्वनी) नदी से उत्तर–पश्चिम में चम्बल नदी तक फैला हुये प्रदेश का नाम था। डा0 डी. वी. मिरासी के अनुसार भी मध्यकाल में बुन्देलखण्ड का विस्तार यमुना नदी से नर्मदा नदी तक था। प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता कनिंघम के अनुसार बुन्देलखण्ड के अंतर्गत यमुना का दक्षिणी प्रदेश, पश्चिम में बेतवा नदी से पूर्व में चन्देरी और सागर के जिलों सहित विन्ध्यवासिनी देवी के मंदिर तक तथा दक्षिण में नर्मदा नदी कें तट पर बिलहरी तक विस्तृत रहा। चन्देलकालीन मूर्तिकला के आधार पर उक्त सीमा का समर्थन **विन्सेट स्मिथ**[1] ने भी किया है। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार बुन्देलखण्ड पूर्व में टौंस नदी और सोन नदी (बनारस के निकट बुन्देलखण्ड नाले) तक चला गया है। पश्चिम में बेतवा, चम्बल और काली सिंध नदी तक बढ़ते हुए ग्वालियर राज्य को स्पर्श करता है। उत्तर में यमुना और गंगा नदियों से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी और मालवा तक विस्तृत है।[2]

**सर जार्ज ग्रियर्सन** ने बुन्देली भाषा के आधार पर बुन्देलखण्ड का क्षेत्र निर्धारित किया है उनके मतानुसार बुन्देलखण्ड उत्तर में चम्बन नदी के उस पार मैनपुरी, आगरा, इटावा के दक्षिणी भाग तक, पश्चिम में पूर्वी ग्वालियर तक, दक्षिण मे सागर दमोह तक ही नही, भोपाल का पूर्वी भाग नर्मदा के दक्षिण में नरसिंहपुर, होशंगाबाद, सिवनी बालाघाट, छिन्दवाडा के कुछ क्षेत्रौं तक फैला है। पूर्व मे बांदा की भाषा बुन्देली नहीं है। श्री कृष्णानन्द गुप्त ने इसका समर्थन किया है।

---

1. बिन्सेंट स्मिथ : आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इंडिया
2. दीवान प्रतिपाल सिंह : बुन्देलखण्ड का इतिहास

**डा0 रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल** ने बुन्देली का विस्तार उत्तर में मुरैना जिला, पश्चिम मे शिवपुरी, गुना तक दक्षिण में बैतूल जिला तक माना है। डा0 महेश प्रसाद जायसवाल ने मध्य प्रदेश के दुर्ग जिले का कुछ भाग, बाँदा का कुछ भाग तथा महाराष्ट्र के चाँदा, बुलढ़ाना, भंडारा, अकोला के कुछ भाग को बुन्देलखण्ड माना है।

भौतिक भूगोल की दृष्टि से बुन्देलखण्ड की दक्षिण सीमा विन्ध्य की पर्वत श्रेणियां है, ये नर्मदा नदी तक फैला हुई है। जल विभाजक की दृष्टि से बुन्देलखण्ड के दक्षिण में महादेव पर्वत श्रेणी और दक्षिण पूर्व में मैकल पर्वत श्रेणी उचित ठहरती है।

बुन्देलखण्ड की भौगोलिक, सास्कृतिक, भाषाई इकाइयों मे अद्भुत समानता है। भूगोलवेत्ताओ का मत है कि बुन्देलखण्ड की सीमाएं स्पष्ट है और भौतिक सास्कृतिक रूप में निश्चित है। वह भारत का एक ऐसा भौगोलिक क्षेत्र है जिसमें न केवल संरचनात्मक एकता, भौम्याकार की समानता, जलवायु की समानता है वरन् उसके इतिहास, अर्थव्यवस्था और सामाजिकता का आधार भी एक है। वास्तव में समस्त बुन्देलखण्ड में सच्ची सामाजिक, आर्थिक और भावात्मक एकता है। यह एक भौगोलिक प्रदेश है।[1]

बुन्देलखण्ड के उत्तर में यमुना नदी है और इस सीमा रेखा को भूगोलविदो, इतिहासकारों भाषाविदों आदि सभी ने स्वीकार किया है। पश्चिम सीमा चम्बल नदी को भी अधिकांश विद्वानों ने माना है। निचली चम्बल इसके निकट पड़ती है। मध्य ओर निचली चम्बल के दक्षिण में स्थित मध्य प्रदेश के मुरैना और भिण्ड जिलों मे बुन्देली संस्कृति और भाषा का मानक रूप समाप्त हो जाता है। भाषा और संस्कृति की दृष्टि से ग्वालियर और शिवपुरी का पूर्वी भाग बुन्देलखण्ड में आता है और साथ ही उत्तर प्रदेश के जालौन जिले से लगा हुआ भिण्ड का पूर्वी हिस्सा (लहार तहसील का दक्षिण भाग) जो दतिया जिले का अंश बन गया है।

---

1. डा0 नर्मदा प्रसाद गुप्त : बुन्देलखण्ड का सीमांकन

भौतिक भूगोल में बुन्देलखण्ड की दक्षिण सीमा विन्ध्य पहाड़ी श्रेणियाँ बताई गयी है जो नर्मदा नदी के उत्तर में फैली हुयी है लेकिन संस्कृति और भाषा की दृष्टि से यह उपयुक्त नहीं है क्योंकि सागर प्लेटों के दक्षिण पूर्व से जनपदीय संस्कृति और भाषा का प्रसार विन्ध्य श्रेणियों के दक्षिण में हुआ है। संभवतः छत्रसाल बुन्देला के राल्य सीमा को केन्द्र में रखकर, लेकिन जनपदीय संस्कृति और भाषा विन्ध्य श्रेणियों और नर्मदा नदी के प्राकृतिक अवरोधक पारकर होशंगाबाद और नरसिहपुर जिलों तक पहुँच गयी है अतएव प्रदेश की दक्षिणी सीमा महादेव पर्वत श्रेणी (गोण्डवाना हिल्स) और दक्षिण पूर्व में मैकल पर्वत श्रेणी उचित ठहरती है। इस आधार पर होशंगाबाद जिले के होशंगाबाद और सोहागपुर तहसीलें तथा नरसिहपुर का पूरा जिला बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत आता है।

बुन्देलखण्ड के पूर्व में मैकल पर्वत श्रेणियाँ भांछेर, श्रेणियाँ कैमूर श्रेणियाँ और निचली केन नदी है। दक्षिण पूर्व में मैकल पर्वत है। इस कारण नरसिंहपुर जिले के पूर्व मे स्थित जबलपुर जिले के दक्षिण पश्चिम भाग समतल अर्थात पाटन और जबलपुर तहसीलों का दक्षिण पश्चिम भाग बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत आ गया है। इसके अतिरिक्त सोन और टोस की उद्‌गम घाटी जो नर्मदा की तरफ  दक्षिण की तरफ खुलती है जिसमें पाटन जबलपुर सिहोरा और मुण्डवारा तहसीलों की लम्बी सी पट्‌टी का क्षेत्र है, बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत है।

उपर्युक्त आधार पर बुन्देलखण्ड प्रदेश में निम्नलिखित जिले और उनके भाग आते है और उनके इस प्रदेश की भौगोलिक, भाषिक एवं सास्कृतिक इकाई बनती है–

(1) उत्तर प्रदेश के जालौन, झांसी, ललितपुर, हमीरपुर और बांदा जिले की नरैनी और कर्वी तहसीलों का दक्षिणी पश्चिमी भाग।

---

(2) मध्य प्रदेश के पन्ना, छतरपुर, टीकमगढ़, दतिया, सागर, दमोह, नरसिंहपुर जिले तथा जबलपुर जिले की पाटन और जबलपुर तहसीलों को दक्षिणी और दक्षिणी–पश्चिमी भाग, होशंगाबाद जिले की होशंगाबाद और सोहागपुर तहसीलों रायसेन जिले की उदयपुर सिलवानी, गैरतगंज, बेगमगंज, बरेली तहसीलों एवं रायसेन गौहरगंज तहसीलों का पूर्वी भाग, विदिशा जिले की करवई तहसील और विदिशा बसौदा, सिरोज तहसीलों के पूर्वी भाग गुना जिले की अशोक नगर (पिछोर) और मुंगावली तहसीले शिवपुरी जिले की पिछौर और करैरा तहसीले, ग्वालियर की पिछोर भान्डेर तहसीले और ग्वालियर गिर्द का उत्त्र पूर्वी भाग, भिण्ड जिले की लहर तहसील का दक्षिणी भाग।[1]

उपर्युक्त भू– भाग के अतिरिक्त उसके चारों और की पेटी मिश्रित भाषा और संस्कृति की है। कुछ जिलों के निवासी आज भी स्वतः को बुन्देलखण्ड का अंश मानते है और उनकी भाषा और संस्कृति पहले बुन्देली ही रही है पर बाद में परिवर्ती सम्पकों के कारण मिश्रित हो गयी है। ऐसे जिलों में बाँदा, गुना आते है। अतएव ऐसे जिले बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत यम्मलित करने में कोई हानि नही है।

आधुनिक जमाव ग्रेनाइट बट्टानों के ऊपर कॉप मिट्टी के जमाव को अभिव्यक्त करते है। जैसे–जैसे हम दक्षिण से उत्तर में यमुना नदी की और चलते है बैसे–बैसे मिट्टी के कणो का आकार महीन से महीनतर होता जाता है। जालौन, हमीरपुर, बाँदा तथा चित्रकूट जनपद के उत्तरी क्षेत्रौ मे इस मिट्टी का व्यापक जमाव देखने को मिलता है। यह मिट्टी यहां की कृषि अर्थ व्यवस्था के लिए मूलाधार पृष्ठभूमि प्रस्तुत करती है।

---

1. डा0 रमेश श्रीवास्तव : बुन्देलखण्ड : साहित्यिक, ऐतिहासिक

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र घिसी–पिसी धरातलीय संरचना को प्रकट करता है। लगभग 68 प्रतिशत क्षेत्र 300 मीटर से कम ऊँचा है, लगभग 4 प्रतिशत क्षेत्र 450 मीटर से अधिक ऊँचा है तथा शेष 300 से 450 मीटर ऊँचा है। उत्तर का 1/3 भाग समतलीय मैदानी भाग है जो 300 मीटर से कम ऊँचा है। इसके दक्षिण में विन्ध्यन पठार विद्यमान है जो 300 से 450 मीटर ऊँचा क्षेत्र है। मुख्य रूप से ग्रेनाइट चट्टानों की संरचना वाला यह क्षेत्र कहीं–कहीं 600 मीटर ऊँची चोटियों को प्रदर्शित करता है।[1]

**प्रवाह प्रणाली :**

बुन्देलखण्ड यमुना क्रम की नदियों द्वारा सिचित है, यमुना सबसे बड़ी नदी बेतवा केन, बागें इसकी मुख्य सहायक नदियों है। धसान बेतवा की सहायक नदी है। इन नदियों को अनेक छोटे–छोटे नालों द्वारा जल प्राप्त होता है। यमुना का दक्षिणी किनारा 15से45 मीटर ऊँचा है जो सिंचाई व्यवस्था के विकास में बाधा उपस्थित करता है। इसलिए बेतवा, केन, पहूज और धसान नदियाँ ही बुन्देलखण्ड में सिचाई के महत्वपूर्ण स्रोत है। बेतवा का औसत प्रवाह 815000 क्यूसेक तथा केन नदी का केवल 800 क्यूसेक है, लेकिन इनके मौसमी विचलन असमान्य है। मई के महीने मे केन का जल प्रवाह धटकर केवल 300 क्यूसेक हो जाता है।[2] बुन्देलखण्ड की अन्य महत्वपूर्ण जलराशियां पहुज जलाशय, बरूवासागर, बड़वार लेक, स्योढ़ी झील, पचवाड़ा झील, डक्कन तथा पारीच्छा जलाशय, अरहर ताल, मानिकपुर, मझगवा ताल, बेलाताल राजपुर सागर, कीर्तिसागर, मदन सागर तथा टीकमगढ़ के नंदवारा, बीरसागर और अरझर झील है। छतरपुर में जगत सागर गोरा ताल गगँऊ जलाशय महत्वपूर्ण है। माताटीला और सपरार जलाशय स्वातन्त्रयोत्तर काल में बनाये गये है। इनमें सिचाई के अतिरिक्त विद्युत उत्पादन भी किया जाता है।

---

1. डा0 राम आसरे चौरसिया : बुन्देलखण्ड की भौतिक बनावट
2. स्टैटिस्टिकल एण्ड हिस्टोरिकल एकाउण्ट्स आफ नार्थ–वेस्टर्न प्रविन्सेज आफ इण्डिया बोल्यूम–1, पृ0 55–56

बुन्देलखण्ड की सिंचन व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए यह आवश्यक है कि इस क्षेत्र के सदाबहारी नाले और छोटी नदियां जैसे उर्मिला बागे, गड़रा, मदरार आदि का सर्वेक्षण कराकर समुचित स्थानों पर जलाशय बनाने जायें जों न केवल सिचाई व्यवस्था को सुदृढ करेगे अपितु अधौभैामिक जल की क्षमता में भी वृद्धि करेगे जिससे सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड का अधोभौमिक स्तर ऊंचा उठेगा और नलकूप सिचाई से होने वाले खतरों से इस क्षेत्र को बचाया जा सकेगा।

## जलवायु :

बुन्देलखण्ड की जलवायु पूर्वी तटीय तथा पश्चिम तटीय जलवायु का मिश्रित रूप है। यहां का औसत वार्षिक तापमान 25 डिग्री से रहता है। झांसी का औसत तापमान 27 डिग्री. तथा उरई का 23 डिग्री सेल्सियस है। औसत वार्षिक वर्षा उत्तर पश्चिम में 75 सेमी. से लेकर दक्षिण पूर्व में 125 सेमी. तक होती है। औसतन बुन्देलखण्ड में 100 सेमी. वर्षा होती है जिसका 90 प्रतिशत जून से सितम्बर माह के मध्य प्राप्त होता है। कभी–कभी पश्चिमी चक्रवातों के आगमन से शीतकाल में भी थोड़ी वर्षा प्राप्त हो जाती है।

ग्रीष्मऋतु में औसत तापमान 30 से. के मध्य रहता है। कभी–कभी यह 40 सें तक पहुँच जाता है, तब हवा के झोंके चलने है जिन्हे लू कहते है। बाँदा ज़नपद में अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा लू अधिक दिनों तक चलती है। जून का महीना बहुत गर्म, सूखा और झुलसाने वाला होता है। जिससे तापमान बढ़ जाता है। मध्य जून के पश्चात कुछ पूर्व मानसूनी बौछारें आती है, जिससे तापमान गिर जाता है राहत महसूस होता है। जुलाई और अगस्त सबसे अधिक वर्षा वाले महीने है। अक्टूबर से फरवरी तक मौसम ठण्डा व सुहावना रहता है। शीत ऋतु 15 दिसम्बर से प्रारम्भ होती है। जिसमें औसत तापमान 16 से 21 से. के मध्य रहता है। रातें ठण्डी होती है। कभी–कभी पाला पड़ता है, शीतऋतु में आने वाली वृष्टि रबी खरीफ के लिए लाभदायक होता

है।15 मार्च के उपरान्त तापमान क्रमशः उच्च होने लगता है। इसके बाद का मौसम प्रायः शुष्क रहता है।

## जल संसाधन :

चम्बल, सिन्ध पहुज, बेतवा, केन, धसान, पयस्वनी आदि उद्गम स्रोत होते हुए भी विन्ध्य शैल समुह को जलविहीन माना जाता है। जल आपूर्ति बुन्देलखण्ड की अत्यन्त जटिल समस्या हैं वर्षा ऋतु में विप्लवी बाढ़ जान और माल की भीषण हानि करती है। वही जल ग्रीष्म में विपत्ति का कारण बन जाता है। सूखा पड़ जाने पर दुर्भिक्ष मनुष्य और घरेलू पशुओं की मृत्यु का कारण बन जाता है। यह स्थिति दैवीय प्रकोप नहीं मानवीय उपेक्षा का एक ज्वलन्त उदाहरण है। पर्यावरणीय निम्नीकरण द्वारा उत्पन्न पारिस्थितिक असुतंलन तथा उपलब्ध जल संसाधन के विकास में उदासीनता ही वर्तमान जलाभाव का मुख्य कारण है। बुन्देलखण्ड में औसतन 70000 लाख टन धन मीटर पानी प्रति वर्ष वृष्टि द्वारा उपलब्ध होता है। दुर्भाग्य का विषय है कि इसका अधिकांश भाग तेज प्रवाह के साथ निकल जाता है और जो भाग भूमिगत हो जाता है उसके बारे में किसान को जानकारी नही होती।[1] बुन्देलखण्ड की भूमि की उर्वरता विलक्षण है, मौसम की अनियमितता ही प्रायः उत्पादन में अवरोध करके दुर्भिक्ष की स्थिति उत्पन्न करता है। सूखा एंव दुर्भिक्ष यहां के नियमित अतिथि है। यहाँ जल की कमी नही वरन् व्यवस्था की अनियमितता है। जो मुख्यतः उपेक्षाजनित है।

बुन्देलखण्ड में 131021 लाख घन मीटर भौमजल प्रतिवर्ष उपलब्ध रहता है। इस विशाल भण्डार के केवल 14355 लाख घन मीटर जल का ही उपयोग किया जाता है। शेष 116666 लाख घन मीटर प्रतिवर्ष अछूता ही रह जाता है। पूरी क्षमता का 10.95 प्रतिशत ही उपयोग में लिया जाता है।[2] विभिन्न जनपदों में 3.2 से 31.1 ही भौम जल का उपयोग प्रतिवर्ष

---

1. ईश्वरीय शरण विश्वकर्मा : बुन्देलखण्ड का प्राचीन भौगोलिक परिवेश
2. केन्द्रीय सिचाई एवं विद्युत मंत्रालय की भौमजल सांख्यिकी 1985

होता है। न्यूनतम उपयोग दमोह तथा बांदा जनपद मे तथा अधिकतम टीकमगढ़ में 31.1 प्रतिशत होता है। जलोढक का विस्तार बुन्देलखण्ड के उत्तरी भाग में है। इसका क्षेत्रफल लगभग 12931 वर्ग किमी0 है। गहराई में यह कुछ मीटर से लेकर दो सौ मीटर से अधिक है। यहां पर 2 से 3500 लीटर तक पानी देने वाले क्षमता के नलकूप अनेक स्थानों पर लगाये जा सकते हैं। बांदा राठ, गोपालपुर, मऊ तथा अतर्रा आदि स्थान इसके उदाहरण है।

पठारी क्षेत्र भी बुन्देलखण्ड को प्राप्त है। चित्रकूट क्षेत्र के इसी शैल समूह में गुप्त गोदावरी, हनुमानधारा कोटितीर्थ, देवांगना, बांके–सिद्ध आदि जलस्रोत है। अनुसुइया नामक स्रोत से ग्रीष्मकालीन जलप्रवाह 84950 ली0 प्रति मिनट है। चित्रकूट जनपद के पाठा क्षेत्र में गत सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि 150 से लेकर 200 मीटर बालू की तह के नीचे चूने के शैल समूह में अटूट भौमजल का भण्डार है। यहां नलकूपों का निर्माण किया जा सकता है।

## क्षेत्रफल और जनसंख्या

बुन्देलखण्ड का क्षेत्रफल व जनसंख्या निम्नांकित तालिका स्पष्ट करती है।[1]

| जिला | क्षेत्रफल | जनसंख्या |
|---|---|---|
| 1. बाँदा (चित्रकूट) | 7624 वर्ग किमी0 | 18.74 लाख |
| 2. हमीरपुर (महोबा) | 7165 वर्ग किमी0 | 14.65 लाख |
| 3. झांसी | 5024 वर्ग किमी0 | 14.26 लाख |
| 4. ललितपुर | 5039 वर्ग किमी0 | 7.45 लाख |
| 5. जालौन | 5565 वर्ग किमी0 | 12.17 लाख |
| 6. पन्ना | 7135 वर्ग किमी0 | 5.95 लाख |
| 7. छतरपुर | 8687 वर्ग किमी0 | 9.35 लाख |
| 8. टीकमगढ़ | 5048 वर्ग किमी0 | 7.81 लाख |
| 9. दतिया | 2038 वर्ग किमी0 | 3.07 लाख |
| 10. दमोह | 7306 वर्ग किमी0 | 7.34 लाख |
| 11. सागर | 10252 वर्ग किमी0 | 11.65 लाख |
| संलग्न क्षेत्र लहर (दतिया) तथा अन्य | 2200 वर्ग किमी0 | 12.56 लाख |
| **योग** | **72000 वर्ग किमी0** | **1.25 करोड़** |

1. डा0 रमेश चन्द्र श्रीवास्तव : बुन्देलखण्ड : ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अनुशीलन

## बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक परिचय :

बुन्देलखण्ड की आर्कियन क्रम भूपेटी की प्राचीनतम चट्टानें भूगर्भ वैज्ञानिक झिगरन के अनुसार 130 करोड़ वर्ष प्राचीन है। इसी प्रकार आज से 60 से 70 करोड़ वर्ष पूर्व बुन्देलखण्ड का दक्षिणी भाग एक भूसम्मति थी जिसे विन्ध्यन सागर कहते थे। इस सम्मति में विवर्तनिक शक्तियों से उत्पन्न भिंचाव के कारण ऊपरी विंध्यन और निम्न विंध्यन क्रम के चट्टानों की संरचना हुई जिन्हें भांडेर, रीवां और कैमोर क्रम में रखा गया है। यह चट्टाने दमोह, ललितपुर, बांदा और चित्रकूट जनपद में पाई जाती है। लाखों वर्ष पूर्व के जीवाश्म एवं मानव जबड़े नर्मदा नदी के तट पर प्राप्त है।

## पूर्व एवं मध्यकालीन इतिहास :

इस मध्यदशे का आर्यीकरण लगभग तीन हजार ईसापूर्व से 1500 ईसापूर्व तक भगवान परशुराम के काल में वर्तमान राजापुर हमीरपुर तथा कालपी के यमुना तट प्रवेश से प्रारम्भ माना जा सकता है। इसी काल में आदिकवि वाल्मीकि, अत्रि–अनुसुइया, अगस्त्य, सुतीक्षण, मार्कण्डेय, भरद्वाज, शरभंग, पराशर, वेदव्यास आदि के आश्रम जलाशय (नदी) पर्वत उपत्यकाओं में स्थापित थे। समस्त आश्रम विद्या एवं आर्य संस्कृति के केन्द्र बिन्दु थे। ऋग्वैदिक काल में यमुना नदी के दक्षिणी तट पर स्थित वसु या कसु चैछ्य का विवरण प्राप्त है जो चेदि वंशी राजा था तथा अपनी दानशीलता के लिए प्रसिद्धि प्राप्त था।

रामायण काल में चित्रकूट कालींजर का क्षेत्र दण्डकारण्य के अन्तर्गत था। एक ओर यत्र तत्र ऋषियों के आश्रम थे। उनके चारों ओर जनजातियां–कोल, निषाद, शबर, पुलिंद आदि निवास करते थे तथा राक्षस समूह ऋषियों के आश्रमों को आतंकित करते तथा यज्ञों को भ्रष्ट कर देते थे। चारों ओर अशान्ति अव्यवस्था व्याप्त थी। मर्यादा पुरूषोत्तम राम अपनी पत्नी सीता तथा

अनुज लक्ष्मण के साथ यमुना पार कर चित्रकूट प्रदेश में प्रविष्टि हुये। उन्होंने अपने वनवास के 11–12 वर्ष आसपास के क्षेत्रों में घूमते हुये व्यतीत किये। उनके आगमन से ऋषिगण अपने आपको सुरक्षित अनुभव करने लगे तथा बनवासी भी आर्य संस्कृति के निकट आये। इनके प्रमुख देवता पशुपति शिव थे। वे लिंग–योनि के उपासक थे तथा देवी उपासना में पशु बलि, नरबलि चढ़ाते थे। श्री रामचन्द्र जी के भाई शत्रुघ्न के पुत्र शत्रुघाती को यह प्रदेश प्राप्त हुआ था। श्री रामचन्द्रजी के भाई शत्रुघ्न के पुत्र शत्रुपाती को यह प्रदेश प्राप्त हुआ था। उनकी राजधानी कुशावती (शुक्तिमती केन नदी के तट पर थी।

द्वापर युग में चेदि प्रदेश राजा शिशुपाल तथा दंतवक्र के अधीन था। दोनों ही श्री कृष्ण की बुआ के पुत्र थे। शिशुपाल की राजधानी चंदेरी तथा दक्षिणी प्रदेश में केन दनी के तट पर स्थिति शुक्तिमती थी। श्रीकृष्ण की नारायणी सेना का मुख्यालय कान्तवार था। दंतवक्र का मुख्यालय दतिया था। श्रीकृष्ण जी यदा कदा यहां आते जाते थे। जरासंघ तथा कालवयन से पराजित होने की सम्भावना पर वे दतिया खजुराहों होते हुये (कन्नोज–मालवा राजमार्ग) गुजरात की ओर (द्वारिका) भागे थे। इस प्रदेश की किसी उपत्यता का गिरिगुहा में सोते हुये मुचकुन्द महाराज ने कालयवन को भस्म कर दिया था। युधिष्ठिर अपने भाइयो सहित 12 वर्ष का वनवास तथा एक वर्ष का अज्ञातवाश इसी प्रदेश में व्यतीत किया। स्वर्गवाह (कालिंजर), चित्रकूट का भ्रमण किया। बांदा जनपद में यत्रतत्र विराट नगर के स्थानों में सम्बन्धित गांवो के नाम आज भी दृष्टिगत हैं। गउवो की चरागाह तथा पालन के लिए यह क्षेत्र प्रख्यात था। शिशुपाल के वधोपरान्त श्रीकृष्ण को अपमानित करने के लिए स्थानीय खाईपार (बांदा) उपनाहों (जूतों में) मुकुट प्रतीक सम जड़ित करने की परम्परा आज भी विद्यमान है।[1]

---

1. डा0 रमेश चन्द्र श्रीवास्तव : बुन्देलखण्ड : ऐतिहासिक सांस्कृतिक वैभव

महाकाव्य तथा जैन, बौद्धकाल में उत्तरी भारत 16 महाजनपदो में विभक्त था। उनमें चेदि, दशार्ण, वत्स के भूभाग इस प्रदेश में स्थित थे।

मौर्यवंश के पतन के पश्चात ब्राम्हण वंशीय राजाओं का प्रभाव बढ़ा जिनमें शुंग कण्व और शातवाहन प्रमुख थे। इनकी सत्ता 184 ई0पू0 से 78 ई0 तक रही पुराण औरर स्मृतियों की रचना इसी काल में हुयी। कण्व शातवाहन वंश की शत्रुता ने शक, कुषाण विदेशी जातियों को पश्चिम, दक्षिणी बुन्देलखण्ड पर अधिकार करने का अवसर दिया। राजा कनिष्ठ ने उनाव (दतिया) में भागवत वैष्णव धर्म वाले सूर्य मन्दिर का निमार्ण कराया। सौर, शैव, शाक्त, गाणपत्य मतों के आधार पर मूर्तियों की रचना इस काल में प्रारम्भ हुयी। मोहनगढ़ (टीकमगढ़) में एक विशाल चट्टान में उत्कीर्ण 14 भुजीय भैरवी का विशाल चित्र दर्शनीय है। इस काल के राजाओं का विवरण विष्णु तथा भगवत पुराण में प्राप्त है। कुषाणों के अभ्युदय के साथ बुन्देलखण्ड में नागवंशीय क्षत्रियों का उदय हुआ। नागराज्य एक संघ राज्य था। ये शैवमातावलम्बी थे। उनका चिन्ह दो सर्पो के मध्य शिवलिंग पन्ना में प्राप्त हुआ है। नागों के प्रसिद्ध मठ नचनाकांचन (पन्ना) कला का अद्भुत आदर्शा हैं। इनका राजय 10 ई0पू0 से 220 ई0 तक चला। नव नाग राजाओं में वीरसेन ह्यानाग, बहिर्नाग, भगनाग आदि प्रसिद्ध है। भवनाग की पुत्री गौतमी प्रवरसेन वाकाटक को ब्याही थी जिसका पुत्र रूद्रसेन था। शिवलिंग को सिरपर रखे भारशिव प्रतिमायें देवरदा (टीकमगढ़) के वैद्यनाथ शिवजी के मन्दिर में प्राप्त है। इनकी उप राजधानी भारगढ़ (बरगढ़ जनपद चित्रकूट) में भी थी। पार्वती मन्दिर, विष्णु मन्दिर (वाराह, नृसिंह, वामन) नचना (पन्ना) में इसी काल के हैं।

वाकटकों का उद्भाव बेतवा नदी के तट पर स्थित बाघाट (टीकमगढ़) माना जाता है। इनका राज्य पश्चिमी बुन्देलखण्ड में 300 ई0 से 520 ई0 के मध्य था। प्रारम्भ में ये शैव थे

किन्तु गुप्तवंशीय वैवाहिक सम्बन्धों के कारणर वैष्णव हो गये। प्रारम्भ में वाकाटक नाग (भारशिवों) के सेनापति थे। इस वंश के प्रतापी राजा भीमसेन ने विन्ध्यशक्ति के उपाधि धारण की और पूर्वी बुन्देलखण्ड के भूभाग को जीत लिया। किलकिला नदी के तट पर पन्ना के केन्द्र बनाया। उनका युद्ध समुद्रगुप्त से हुआ। धसान, बेतवा नदी के मध्य का क्षेत्र गुप्त राजाओं के अधीन हो गया। प्रवरसेन का विवाह नागवंशी राजुकुमारी से हुआ। उसे नागवंशी राज्य का एक भाग पुत्रहीन होने कारण प्राप्त हो गया। इसके पौत्र रूद्रेसन द्वितीय ने चन्द्रगुप्त द्वितीय कीा पुत्री प्रभावती से विवाह किया। उसके मृत्योपरान्त अल्पवयस्क पुत्रों की संरक्षिका प्रभावती बनी। वाकाटकालीन सूर्यमन्दिर मड़खेड़ा, उमरगढ़ (उमरी) नारायणपुर, गोरा बनारसी (टीकमगढ़) में तथा जराय (झांसी) के सूर्य मठ का निर्माण इसी काल में हुआ उदयपुर (ललितपुर) में विष्णु की प्रतिमा दर्शनीय है। इस वंश में अन्तिम राजा हरिषेण हुये।

290 ई0 से 400 ई0 तक लगभग समूचा बुन्देलखण्ड गुप्त राजाओं के अधीनस्थ था। दक्षिण पूर्वी क्षेत्र प्रत्यक्षतः उनके आधीन था जिसका मुख्यालय बीना नदी पर स्थित ऐरकेण (ऐरन) था। शेष बुन्देलखण्ड नागों और वाकटकों के अधीन था। इस काल में वैष्णवातारों की मूर्तियां का निर्माण हुआ। बुन्देलखण्ड क्षेत्र का मांडलिक सुरश्मिचन्द्र था। ऐरण में भी धान्यविष्णु (जुझौतिया ब्राम्हण) प्रबन्धक थे। इस समय का निर्मित देवगढ़ का विष्णु मन्दिर कला का अप्रभि उदाहरण है। शेषशायी भगवान विष्णु की मूर्ति अद्वितीय कला की प्रतीक है। नाग, वाकाटक और गुप्तवंशी शासकों ने शिव, सूर्य और विष्णु की अनेकानेक मूर्तियां स्थापित की। भेलसी तथा मोहन गढ़ (टीकमगढ़), मे बाराह तथा विष्णु–लक्ष्मी सहित मूर्ति दर्शनीय है। राजापुर (चित्रकूट) में चतुर्मुखी शिव की तीन मूर्तियां एक मुखलिंग, कालिंजर (बांदा) में साहस्त्रलिंग, एकमुखी शिवलिंग इसी काल की देन है।[1] बुद्धगुप्त (सन् 477–99 ई0) का शासन बांदा जनपद में था। तोरमाण ने

1. लक्ष्मी नारायण मिश्र : बुन्देलखण्ड का सांस्कृतिक इतिहास

बुन्देलखण्ड पर सन् 485 ई0 में आक्रमण किया। गुप्त सम्राटों ने हूणों को पराजित किया किन्तु उनकी शक्ति क्षीण हो गयी। उच्चकल्प (क्षत्रियवंशी) राजाओं ने महाकांतार प्रदेश (पन्ना, सतना) को जीत लिया, इनकी राजसत्ता 400 ई0 से प्रारम्भ हुयी और अनेक राजा हुये। परिहार गुप्त राजाओं के मांडलिक थे। कालांतर में स्वतंत्र होकर उन्होंने बुन्देलखण्ड के पश्चिमी, पूर्व और दक्षिणी भाग में अपनी सत्ता स्थापित की। इनकी राजधानी पश्चिमी भाग में गंगानगर (टीकमगढ़), पूर्व में मउसहानियां तथा दक्षिण में सिंगोरगढ़ (दमोह) में स्थापित हुई। दमोह के शिव मन्दिर इसी काल में निर्मित हुये इनका राज्य बेतवा से टमस नदी तक फैला हुआ था। छोटे राज्यवंशों में दांगी (यादवों) ने गढ़पहरा (सागर) को राजधानी बनायी। मंदिलों ने बेतवा और धसान नदी के मध्य अपना राज्य स्थापित किया। वे काफी लोकप्रिय शासक थे।

गुप्त वंश के पतन के साथ देश अनेकाने स्वतंत्र राज्यों में विभक्त हो गया। पांचवी शती के अंत में जुझौतिया राज्य की सीमा सागर चंदेरी से मिर्जापुर तक तथा यमुना नदी से बिलहरी तक का विवरण प्राप्त है। मातृविष्णु ने हूणों का प्रतिरोध किया और संस्कृति सुरक्षा का गौरव प्राप्त किया जिस के उपलक्ष मे ऐरन मे विजय स्तम्भ तथा वराह मन्दिर बनवाया। मातृविष्णु ने स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। खजुराहों में अपनी राजधानी बनाई और उसे अनेक विष्णु मन्दिरों से सजाया। चीनी यात्री हेनसांन चिचिटो की यात्रा की। उसने बौद्धधर्म का प्रभाव कम पाया। जनता सम्पन्न थी। कल्चुरि (कल्य = मदिरा, चुरि= चुराने वाले) प्राचीन जाति है। इनका सम्बन्ध रामायण काल में सहस्त्रार्जुन, महाभारत काल में हैहय तथा चेदि से जुड़ा हुआ है। 550 ई0 से 1200 ई0 तक यह प्रभावशील रहे। पश्चिमी बुन्देलखण्ड की राजधानी चंदेरी थी। वे मालवा के परमार, राष्ट्रकूट और चंदेलों के समकालीन थे। इनका प्रमुख केन्द्र महिष्मती तथा त्रिपुरी थे। सन् 863 ई0 में कोकल्लदेव ने स्वतंत्र राज्य की पुनर्स्थापना की, उसने कन्नौज के भोजदेव एवं

कृष्णराज (राष्ट्रकूट) से युद्ध किया तथा जागेश्वर (बांदकपुर) की स्थापना की। इसी वंश के कर्णदेव ने कीर्ति वर्मा चंदेल को पराजित किया जिसका विवरण प्रबोध–चन्द्रोदय नाटक में है। कालिजंर अभिलेख के अनुसार 5वीं शती के अन्त तक कालंजरवंशी कल्चुरियों का शासन था। उन्होंने विष्णुमन्दिर का निर्माण कराया। कुछ इतिहासकारों ने उन्हें मौखरी वंश के अधीन मान है। प्रो0 मिरासी के अनुसार हस्ती ने पाण्डववंशी उदयन के पुत्र इन्द्रबल को पराजिकर सत्ताच्युत कर दिया। सन् 477–78 ई0 में जयदुर्ग (अजयगढ़) को अपनी राजधानी बनायी। कल्चुरि नरेश कृष्ण राज प्रथम ने कालिंजर पर अधिकार कर कालींजरपुराधीश्वर तथा दहाला–बिडंगा की उपाधि ग्रहण की। यह छठी शती के मध्य में शासक था तथा उसके सिक्के प्राप्त है। जल्हाण की सूक्ति मुक्तावली में कालिंजर के राजा भीमता का उल्लेख प्राप्त है जिसने स्वप्न दर्शन के अतिरिक्त चार अन्य नाटकों की रचना की। कृष्णराज का छोटा भाई लक्ष्मणराज कालिंजराधिपति था। रामराज ने कालिंजर के अभेद्य दुर्ग को जीता और अपनी राजधानी बनाई उसके उत्तराधिकारियों  के पास यह प्रदेश 8वीं शती तक रहा।

भूगोलवेत्ता टॉलमी ने कांलिंजर पर्वत को तपसिस या कालपसिस का नाम दिया। है।[1] हर्ष के समय इस प्रदेश में ब्राम्हण शासक थे जो उसके मांडलिक रह होंगे। चीनी यात्री हनेसांग का चिचिटो चित्रकूट हो सकता है। परिब्राजको के अभिलेख में इस प्रेदश का नाम डभाल था। इस वंश के राजा हस्ती एवं संक्षोभ इस क्षेत्र के अधिपति थे। अनेक आटविक राजा चम्बल, एव केन नदियो के मध्य स्वतंत्र या अर्द्धस्वतंत्र शासक थे।

कन्नौज के प्रतिहार नरेशों ने कल्चुरियों से सत्ता छीन ली। सागर जनपद सं0 919 वि0 में कन्नौज के आधीन था। नागभट्ट ने कौशम्बी के वत्स नरेशों को पराजित कर बांदा जनपद का पूर्वी भाग प्राप्त कर लिया। बागभट्ट की मृत्यु के बाद उत्तराधिकारी युद्ध में

---

1. टालमी : एशियेन्ट इंडिया

चन्देलवंश के प्रथम शासक ननुक ने रामभद्र के निर्बल शासन तंत्र से मुक्त होकर स्वतंत्र राज्य लगभग सन् 830 ई0 में स्थापित कर लिया। उसने नृपति, महीपत की उपाधि धारण कर सन् 850 ई0 तक राज्य किया। उसका राज्य खजुराहों, महोबा तक ही सीमित था। रामभद्र के उत्तराधिकारी मिहिरभोज ने पुनः शक्ति संगठित कर नन्नुक को अपना सामंत (करद) बना लिया। उसके पुत्र वाक्यपति ने पिता के पद को 870 ई0 तक स्वीकार किया। चंदेलों की उत्पत्ति के संबन्ध में इतिहासकारों मे गहरे मतभेद है। श्री–सी.वी. बैद्य के अनुसार चन्देल विशुद्ध चन्द्रवंशी क्षत्रिय है। चन्देल शब्द चन्द्र तथा प्राकृतप प्रत्तय 'इल्ल' के योग से बना है और चन्द्रात्रेय उसका संस्कृत रूप है। चन्देलों का गोत्र चन्द्रायण बतलाया जाता है। खजुराहों शिलालेख के अनुसार वंश अत्रि के पुत्र चन्द्र से उद्भूत हुआ। महोबा की चन्द्रिका देवी उनकी आराध्या थी। ब्राम्हण कन्या हेमवती और चन्द्र (क्षत्रिय) से उत्पन्न चनद्र ब्रम्हा इस वंश का मूल पुरूष माना जाता है। विन्सेंट स्मिथ उन्हें गोड़ सन्तान मातने है क्योंकि उनके वैवाहिक सम्बन्ध (रानी दुर्गावती) गौंड राजा से हुये अमान्य है। जयशक्ति (जेजा) की पुत्री कल्चुरि राजा कोल्लदेव को ब्याही थी। चन्देलों की गणना छत्तिस क्षत्रिया वंशो में मान्य है।

वाक्पति का ज्येष्ठ पुत्र जयक्ति सन् 870 ई0 में पिता के पद पर प्रतिष्ठित हुआ। छोटा भाई विजयशक्ति सहयोगी था। दोनों ने प्रतिहार नरेश महेन्द्रपाल प्रथम को राष्ट्रकूट तथा बंगाल नरेश के विरूद्ध युद्ध में सक्रिय सहयोग देकर प्रतिष्ठा व पद प्राप्त किया। जयशक्ति (जेजा) के नाम पर जेजाकभुक्ति नाम पड़ा। विजयशक्ति के पुत्र राहिल (890–910 ई0) ने प्रतिहारों के युद्धों में सहायता की। उसने अपनी पुत्री नन्दादेवी का विवाह कल्चुरि नरेश कोकल्ल प्रथम से तथा पुत्र हर्ष का विवाह शाकम्भरी की चौहान राजकुमारी कंचुका के साथ किया। अपनी शक्ति व प्रतिष्ठा बढ़ाई। उसने अजयगढ़ दुर्ग का सृदृढ़ता प्रदान की। उसकी स्वतंत्र प्रवृत्ति को

प्रतिहार राजा मिहिरदेव ने दबा दिया। राहिल के पुत्र हर्ष ने प्रतिहारों के अंतर्कलह में भाग लेकर अपने समर्थक महिपाल (क्षितिपाल) को राजा बनाकर स्वतंत्र रूप से राजा बान गया। उसने महोबा के निकट राहिल नगर बसाया। रसिन (बांदा) का परकोटा निमार्ण कर उसे नगर का रूप प्रदान किया। यह प्राचीन संस्कृति (रसिकेन) विद्या का केन्द्र था। चन्देलों के अधिकार क्षेत्र में धसान नदी के पूर्व का प्रदेश तथा विन्ध्याचल पर्वत के उत्तर और पश्चिम का भूभाग था। राहिल ने महेबा मे विशाल महोत्सव आयोजित कर नगर का नामा महोत्सवनगर (महोबा) रखा।[1]

यशोवर्मन (सन् 925–40 ई0) एक महान् योद्धा था। उसने कन्नौज नरेश देवपाल को बाध्यकर भगवान बैकुण्ठनाथ की मूर्ति प्राप्त कर लीं तथा कैयूरवर्ष कल्चुरि से कांलिजर विजय कर चंदेल कीर्ति का विस्तार किया। खजुराहों शिलालेख सं0 1011 मे उसकी विजयों का वर्णन है। उसकी रानी पुष्पा देवी सम्मानित महिषी थी। उसने अनेक जलाशय तथा विष्णुमन्दिर खजुराहों का निर्माण कराया। उसका साम्राज्य सोन नदी तक विस्तृत था। यशोवर्मन का पुत्र धंगदेव सन् 950 ई0 में गद्दी पर बैठा उसने प्रतिहारों से पूर्णतया संबंध–विच्छेद कर स्वंतत्रता प्राप्त कर ली। वह शैवमत का उपासक था। उसके शासन काल में शिव (कपिलनाथ) मन्दिर मड़पुर (समथर) महेवा (टीकमगढ़) नागचांदपुर (पन्ना) मनियागढ़ (छतरपुर) तथा कंधारिया महादेव और विश्वनाथ मन्दिर खजुराहों में निर्मित हुए। इसका मंत्री यशोधर प्रतिभावन राजनीतिज्ञ था।

(999–1025 ई0) धंग का पुत्र उसी के समान प्रतापी राजा था। वह दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था। नवीं के आक्रमणों को रोकने के लिए राजाओं के साथ संयुक्त रूप से मुकाबला करने के लिए को (सीमांत प्रदेश) जयपाल के सहायतार्थ भेजा किन्तु कन्नौज नरेश राज्यपाल की कायरता से योजना सफल न हो पायी। विद्याधर ने राजपाल का वध कर त्रिलोचनपाल को राजा

---

1. बी. ए. स्मिथ : हिस्ट्री एण्ड क्वायनेज आफ चन्देल डायनेस्टी

बनाया। महमूद ने ग्वालियर तथा कालिंजर पर चढ़ाई कर दी किन्तु विजय श्री प्राप्त न कर सका, समानता की सन्धि हो गयी।

विद्याधर (1025–1040) गंडदेव के बाद गद्‌दी पर बैठा उसने कन्नौज के प्रतिहारों से द्वाब प्रदेश छीहन लिया। पंजाबा के शासक त्रिलोचनपाल के सहातार्थ एक सेना भेजी। महमूद की वापसी के बाद गांगेयदेव चेदि ने बांदा को नजरबंदी हेतु कालिंजर भेजा जो मित्रता का एक प्रतीक था। महमूद की वापसी के बाद गांगेदेव चेदि ने बांदा जनपद का पूर्वी भाग तथा कालिंजर अपने अधीन कर दिया। विद्याधर का पुत्र विजयपाल 1040–50 ई0 शांतिप्रिय निर्बल शासक था। देववर्मा मात्र दो वर्ष राज्य कर पाया। कीर्तिवर्मा (1053–1100) ने खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनप्राप्त करने के प्रयास किया। उसने कर्णदेव को परास्त कर खोया हुआ गया भाग प्राप्त कर लिया। उसके मंत्री महिपा एवं अनन्त थे। इसके पूर्व राजाओं ने खजुराहों को अपनी अल्पकालीन राजधानी बनाई थी। कृष्णमित्र ने इसके शासन काल में प्रबोधचन्द्रोदय नाटक लिखा। इसका राज्य देवगढ़ ललितपुर तक फैला हुआ था। महोबा में कीर्तिसागर खुदवाया, खजुराहों में शान्तिनाथ भगवान की मूर्ति स्थापित कराई। देवगढ़ का नाम कीर्तिगिरी इसी ने रखा। सलक्षण वर्मा ने सन् 1100–10 ई0 तक शासक पद संभाला। उसने खजुराहों में अनेक मंदिरों का निर्माण कराया तथा सलक्षणपुर (सरकनपुर टीकमगढ़) बसाया। उसमे गजलक्ष्मी एवं महिषासुर की मूर्तियां दर्शनीय है।

सलक्षण वर्मा और परमार्दिदेव के बीच जय वर्मा, पृथ्वी वर्मा तथा मदन वर्मा चन्देलशासक बने। मदन वर्मा ने मलवा के परमारी तथा गुजरात के चालुक्यों का पराजित कर अपना प्रभाव बढ़ाया। काशी के गढ़वालों से मैत्री सम्बन्ध स्थापित किये, उसने मदनपुर गांव बसाया तथा अनेक मठ, मन्दिरों का निर्माण करया। जतारा, महोबा तथा आहार मे मदनसागर

खुदवाये। आहार में मदनेश्वर का विशाल मन्दिर तथा महोबा में ककरामठ तथा नेमीनाथ मन्दिर बनवाये। उसके शासन में आठ प्रमुख दुर्ग, कालिंजर, अजयगढ़, मनियागढ़, मड़फा, बारीगढ़, गढ़कुंडार, सिरसागढ़ एवं मैहर थे। यहां दुर्गाध्यक्ष (विषयपति) ससैन्य रहा करते थे। देवीपुर का देवी मन्दिर तथा मनियागढ़ का मनियादेवी मन्दिर इसी समय स्थापित हुये। शैव मत के साथ जैन तीर्थो को प्रश्रय प्राप्त हुआ। अनेक स्थानों में जैन मन्दिरों का निर्माण हुआ।

परमर्दिवर्मा (परमालदेव) सन् 1165 ई0 में गद्दी में बैठा। उसने महोबा से ही शासन चलाया। उरई के प्रतिहारों को आस्तित्वहीन कर माहिल की बहिन मल्हना देवी से विवाह किया। उसने अजयगढ़ में तालाब खुदवायें एवं मन्दिर बनवाये। महोबा में जैन मूर्ति प्रतिष्ठित कराई। आहार में प्रसिद्ध मूर्तिकार बापट ने 21 फिट ऊची शान्ति नाथ की प्रतिमा बनाकर स्थापित कराई। महाराजपुर (छतरपुर) में चामुंडा तथा सिरसागढ़ में मलखान सूबेदार थे। सरदार बच्छराज ने बछरावनी (अजयगढ़) बसाई। प्रसिद्ध वीर आल्हा, भाई ऊदल तथा पुत्र इंदल अजेय योद्धा थे। कुंडार में खूब सिंह खंगार नायब किलेदार थे। माहिल ने चुगली कर आल्हा, ऊदल को महोबा से निष्काषित करा दिया। उन्होंने कन्नौज के राजा जयचन्द्र का आश्रय लिया। अजमेर दिल्ली नरेश पृथ्वीराज चौहान को माहिल ने आक्रमण का निमंत्रण दिया। सन् 1182 ई में माहौनी (उरई) में युद्ध हुआ। पृथ्वी राज की जीत हुई। वह महोबा मदनपुर आदि को लूटता हुआ दिल्ली लौट गया। बेतवा नदी का दक्षिणी पश्चिमी भाग अपने अधीन कर लिया। विजित प्रदेश धंधेलखण्ड कहलाया। राजा जयचन्द ने भी कालींजर का घेरा डाला किन्तु असफलता प्राप्त हुई। इस आक्रमण ने परमाल की शक्ति को कमजोर बना दिया। सन् 1202 ई. में उसकी मृत्यु हो गयी। सन् 1203 ई0 में कुतबुद्दीन ऐबक ने कालिंजर पर आक्रमण किया। किले की जल–व्यवस्था को नष्ट कर दिया जीत लिया। दीवान अजयदेव ने मुस्लिम सेना को छापामार युद्ध से परेशान

किया। किले के मन्दिर ध्वस्त कर दिये गये। असंख्य सम्पत्ति, हाथी घोड़े प्राप्त हुये। 50,000 स्त्री पुरूष दास बनाये गये। चंदेलों ने किले पर पुनः अधिकार कर लिया। सन् 1208 ई0 में कुतुबुद्दीन ने दोबारा आक्रमण किया। परमाल के शासनकाल का विवरण सेमरा, इछावर, महोबा चरखरी, मदनपुर के शिलालेखों में प्राप्त है।[1]

त्रिलोकवर्मन ने सन् (1203–45) शाही सेना के वापस होते ही कालिंजर पर अधिकार कर लिया। परममहेश्वर तथा कालिंजराधिपति पद ग्रहण किया। सन् 1233 ई0 में मलिक नसिरूद्दीन तोसी ने कालिंजर पर आक्रमण किया। जीत कर शाही निशानत ले गया। त्रिलोकवर्मन ने बड़गांव (कटनी) में सोमनाथ (शिव) तथा विष्णु मन्दिर बनवाये। त्रिलोकवर्मा के उपरान्त वीरवर्मा, भोजवर्मा, हम्मीरवर्मा का उल्लेख प्राप्त है। हम्मीरवर्मा ने हमीरपुर बसाया। इसके उपरान्त चन्देलशासकों की स्थिति क्रमशः गिरती गयी। चन्देल सत्ता का अन्त सन् 1310 ई0 में प्रायः हो गया। बुन्देलों तथा बघेलों ने उन्हें मिर्जापुर, बरदी–खटाई (म0प्र0) होते हुये बिहार की ओर प्रस्थान करने के लिये विवश किया।

चन्देलों के रिक्त स्थानों की पूति बघेलों तथा बुन्देलों ने की। बधेलों ने बघेलाबारी (कालिंजर के समीप) को केन्द्र बनाया। उन्होंने चित्रकूट (तरौहां) के राजा मुकुंददेव की पुत्री से विवाह किया। निःसन्तान राजा ने उन्हें गहोरा क्षेत्र प्रदान किया। बलबन ने सन् 1247 ई0 में उन पर चढ़ाई की और गहोरा को नष्ट कर दिया। बधेलों ने अपना केन्द्र रीवां बनाया। उनकी प्रारम्भिक राजधानी बान्धवगढ़ बनी जो कालांतर में रीवां हस्तान्तिरित हो गयी।

बुन्देले मूल रूप से कन्नौज के गहड़वाल या गहरवार की एक शाखा है जो बिन्धेलखण्ड में आने के कारण बुन्देले कहलाये। काशी राज्य का एक राज कुमार हेमकरण ने अन्तुष्ट होकर विन्ध्यवासिनी देवी की शरण में आकर पांच बार अनुष्ठान किया और पंचम नामधारी

---

1. सी. वी. वैद्य : हिस्ट्री आफ मेडिवल हिन्दू इंडिया

बनकर सन् 1048 ई0 गहोरा की ओर प्रस्थित हुआ। अपनी स्थिति सुदृढ़ कर उसने माहौनी (उरई) पर आक्रमण कर एक राज्य की स्थापना की। सन् 1091 ई0 में हेमकरण की मृत्यु हो गयी। वीरभद्र तथा कर्णपाल माहौनी को केन्द्र बना कर शासन करते रहे। सोहनपाल ने गढ़कुंडार के खंगारों से छलपूर्वक असन्तुष्ट सरदारों के सहयोग से, राजा के सपरिवार समाप्त कर कब्जा कर लिया। सन् 1257 ई0 में उन्होंने इसे अपनी राजधानी बनाई। गुलामवंश के पतनकाल मे निकटवर्ती क्षेत्र जीत लिये। उन्होंनेर चंदेलों, की निर्बल सत्ता को महोबा से उखाड़ फेका। अलाउद्दीन खिलजी ने सम्पूर्ण उत्तरी भारत को जीत लिया। मोहम्मद तुगलक ने गढ़कुंडार पर आक्रमण कर उसे नष्ट कर दिया। तुगलक वंश के निर्बल उत्तराधिकारियों तथा सैय्यद वंश के शासन काल में बुन्देले पुनः स्वतंत्र व शक्तिशाली हो गये। तैमूर लंग के आक्रमण से केन्द्रीय सत्ता निर्बल हो गयी। इसका लाभ बुन्देलों ने राज्य विस्तार के माध्यम से उठाया तथा कालिंजर तक का क्षेत्र ले लिया।

इस समय सत्ता संघर्ष का क्षेत्र कालपी बन गया। जौनपुर, कन्नौज, मालवा, गुजरात सभी की गिद्ध दृष्टि इस ओर केन्द्रित हुयी। कालपी के मलिकजादा शासकों ने साहित्य की समृद्धि की। लोदीवंशीय सत्ता प्राप्त एवं सत्ताच्युत राजकुमारों का केन्द्र कालपी बना रहा। कई उलटफेर हुये। बुन्देलों ने अपनी राजधानी गढ़कुंडार से स्थानान्तरित कर ओरछा बना ली जो कालांतर में बुन्देलखण्ड की कला और संस्कृति का अप्रतिभ केन्द्र बन गया।

16वीं. शती से बुन्देलखण्ड के इतिहास का एक नया अध्याय आरम्भ होता है। चन्द्रवंश (चन्देल) केन्द्रीय सत्ता के रूप में उभरे और अस्ताचलगामी हो गये। बुन्देलों का अभ्युदय सूर्योदय के सामान हुआ, अनेक संघर्षो–उतार चढ़ाव का सामन करते हुए स्वतन्त्रता प्राप्ति तक जीवित रहे। सन् 1531 ई0 में बुन्देलों की राजधानी ओरछा बन गयी। राजा रूद्रप्रताप

के 12 पुत्रों में से एक पुत्र का नाम कीरतशाह है। कृष्ण कवि के अनुसार वह कालींजर के किलेदार थे। शेरशाह सूरी ने कालींजर पर सात माह तक डेरा डाला तो चन्देलों की जगह बुन्देली सेना ने उनका मुकाबला किया। कालींजर की पहाड़ी पर शेरशाह ने तोपखाना चढ़ाया। किले से चलाया गया यह गोला वापस आकर बारूदखाना में आकर फट गया था बुन्देलों द्वारा छोड़ा गया अग्निबाण (गोला) बारूदखाना में आकर गिरा वहां पर उपस्थित शेरशाह बुरी तरह घायल हो गया। शरीर छोड़ने के पूर्व ही कालींजर किले पर अधिकार का समाचार उसे मिल गया। इस्लाम शाह पिता के मृत्यु के समय रीवां में था। शेरशाह ने कालींजर किला अपने दामाद बिजली खां को सौंप दिया था। रींवा के शासक रामचन्द्र देव ने कालींजर की किलेदारी सूबेदार से प्राप्त कर ली।

राजा रूद्रप्रताप के देहान्तोपरान्त राजा भारती चन्द्र सन् 1531 ई0 से 1554 ई0 तक राजा बने। उन्होंने हुमायूं और शेरशाह सूरी के सत्ता संघर्षकाल में टमस, यमुना तथा नर्मदा के मध्यवाला लगभग दो करोड़ का वार्षिक आय का क्षेत्र प्राप्त कर लिया। सन् 1539 ई0 में ओरछा दूर्ग का विशाल परकोटा, राजमन्दिर तथा रानी महल तैयार करा लिया। दुर्ग का परकोट 12 मील लम्बा था। भारतीचन्द्र नेभाई मधुकर शाह और कीरतसिंह के पांच हजार घुड़सवारों के साथ कालींजर भेजा था। कीरत सिंह युद्ध में मारे गये। शेरशाह के पुत्र इस्लाम शाह ने जतारा को इस्लामाबाद का नाम देकर अपना मुख्यालय बनाया था। भारती चन्द्र ने उसे पुनः जीत लिया। उनका निधनसन् 1554 ई0 में हो गया।[1]

मधुकर शाह (सन् 1954–92 ई0) राजा बने। वे मथुरा से राधा–माधव एवं जुगुल किशोर की मूर्तिया ओरछा ले आये तथा उनकी रानी गणेश कुवंरि आयोध्या से भगवान राम राजा की मूर्ति लायी जो अभी भी रामराज मन्दिर में प्रतिष्ठित है। अकबर के समय बुन्देलखण्ड के ऐरछ

1. राधाकृष्ण बुन्दे जी एवं सत्भाभा बुन्दे जी : बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन

कालपी आदि सूबा आगरा से, ललितपुर, चन्द्ररी मालवा से बालाबेहट और धमौनी रायसेन से तथा बांदा, हमीरपुर सूबा इलाहाबाद से नियन्त्रितथ थे। कालपी अकबर के चाचा कामरान के अधीन था। कालान्तर में अकबर ने उसका सूबेदार अब्दुला खां को बना दिया।

गढ़ा मण्डला के राजा संग्राम शाह के ज्येष्ठ पुत्र दलपत शाह के साथ चन्देल वंश की राजकन्या वीरांगना दुर्गावती से प्रेम विवाह हुआ तथा एक पुत्र वीरनारायण की उत्पत्ति सन् 1545 ई0 में हुयी। सन् 1550 ई0 में राजा साहिब का असामयिक निधन हो गया। दीवान आधार सिंह कायस्थ ने रानी की संरक्षता में वीरनारायण को राजा पद पर प्रतिष्ठित किया। रानी ने सिंगौरगढ़ के स्थान पर चौरागढ़ राजधानी बनायी। सागर सन् 1517 सें 1528 ई0 तक गुजरात के शासक बहादुर शाह के अधीन था। सन् 1556 ई0 में मलवा के शासक बाज बहादुर ने रानी पर आक्रमण किया किन्तु वह पराजित हआ। गढ़ा सम्पन्न राज्य था। इसकी सीमा मुगलों से टकराती थी। कड़ा मानिकपुर के सूबेदार दमोह पहुंचे। 26 जून 1562ई0 को रानी शरमन हाथी पर सवार होकर मुकाबला करने बढ़ी। दो तीर रानी के कनपटी व गर्दन में लगे। शत्रुओं के हाथ जीवित पड़ने के पूर्व स्वयं कटार मारकर प्राणोत्सर्ग कर लिया। गौंड़ राज्य मुगल राज्य में मिला लिया गया।

सन् 1561 ई0 में अकबर कालपी आया। मधुकरशाह ने सिरौंज व ग्वालियर पर धावा बोल दिया था। सन् 1578 ई0 में मुगल सेना ओरछा की ओर बढ़ी, युद्ध अनिर्णीत रहा। सन् 1551 ई0 मुराद मालवा का सूबेदार बना। मधुकरशाह भेंट करने हेतु नहीं गये। इस पर शाही सेना उनके विरूद्ध भेजी गयी। मधुकर शाह नरवर के जंगलो की ओर भाग गये।

सम्राट अकबर ने सन् 1569 ई0 में कालींजर का किला राजा रामचन्द्र बघेले से

प्राप्त कर इलाहाबाद सूबे के अन्तर्गत कर दिया। ओरछा नरेश मधुकरशाह को राज दरबार में जाना पड़ा। वे वैष्णव मातावलम्बी थे। बैष्णव टीका लगाकर दरबार में पधारे, सभी विचिलित थे किन्तु मधुकर शाह अविचिलित, सम्राट ने आपत्ति नहीं की। मधुकर शाह के पुत्र वीरसिंह देव को बड़ौनी की जागीर प्राप्त थी। ओरछा का राज्य मधुकर शाह के उपरान्त सन् (1592) रामशाह को प्राप्त हुआ। वीरसिंह देव महत्वाकांक्षी थे। उन्होंने राज्य विस्तार करना प्राश्रम्भ किया। ऐरछ, रवर का इलाका अधिकृत कर लिया। सम्राट अकबर ने उनके विरूद्ध सन् 1578–79 तथा 1591 में मुगल सेना भेजी। ओरछा तथा ग्वालियर के राजाओं ने मुगलों को सहयोग दिया। वीरसिंह ने छापामार युद्ध द्वारा मुगल सेना को परेशान किया। साथ ही सम्राट अकबर और राजकुमार सलीम के अन्तर्विरोध का लाभ उठाया। सन् 1602 ई0 में अब्दुलफजल की दक्षिण भारत से वापसी पर उनकी हत्या कर दी। अकबर इस घटना से अत्यन्त दुःखी हुआ। एक विशाल सेना उनके खिलाफ भेजी। सलीम ने उनका राज तिलक बड़ौनी में कर दी थीा। वीरसिंह ने भागना ही उचित समझा, वे बड़ौनी से दतिया, ऐरछ होते हुए आगरा में शाहजादा सलीम से मिले। उन्होंने ओरछा पर अधिकार कर लिया। सम्राट अकबर की मृत्यु सन् 1605 ई0 में हो गयी। सलीम (सम्राट जहांगीर) ने उन्हें सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड का राजा बना दिया। रामशाह और वीरसिंह देव में परस्पर वैमनस्य उत्पन्न हो गया। रामशाह को चन्देरी और वानपुर का राज्य दे दिया गया। वीरसिंह के इलाके आय दो करोड़ रूपये थे। इसमें 81 परगने थे। उन्होंने ओरछा का नाम जहांगीरपुरा रखा। वे महान दानी स्थापत्यकला के पारखी, कवियों और विद्वानों के आश्रयदाता थे। उनका देहान्त अगस्त 1627 ई0 में हो गया। उनके तीन पत्नियों से 12 पुत्र उत्पन्न हुये। इनमें जुझार सिंह और पहाड़सिंह ओरछा के राजा बने। दीवान हरदौल को बड़ा गांव तथा भगवन्त राय को दतिया का राज्य प्राप्त हुआ।

चम्पतराय बुन्देला वंश के थे। उन्हें महेवा की जागीर प्राप्त थी। वे नहीं चाहते थे कि

वीरसिंह देव मुगलों के आश्रित बने रहे। जहांगीर की मृत्यु के बाद राजा जुझार सिंह ने सम्राट शाहजहां को कर देना बन्द कर दिया। सम्राट ने बकी खां को सेना सहित भेजा किन्तु वह बुन्देली सेना से पराजित हो गये। जुझार सिंह ने विद्रोही खान जहां को दक्षिण की ओर भागने में सहायता प्रदान की। शाहजहां स्वयं विशाल सेना लेकर आये किन्तु उन्हें सफलता न मिली। वीरसिंह देव के मृत्यु के उपरान्त बुन्देलों ने अकाल पीड़ित जनता को राहत देने के उद्देश्य से संधि कर ली। ओरछा के राजा जुझार सिंह, चन्देरी के राजा भरतशाह तथा धमौनी के राजा नरहरि दास को मनसबदारी प्रदान की गयी। चम्पतराय को कोंच की जागीर प्रदान की गयी। जुझार सिंह ने चौरागढ़ के गोंड़ राजा को हराकर काफी धन लूट में प्राप्त किया। बुन्देलों की अजेयता की कुण्ठित करने के उद्देश्य से राजा जुझारसिंह और दीवान हरदौल के बीच षड़यन्त्र रचित किया गया। हरदौल देशभक्त, वीर, स्वाभिमानी और जनप्रिय थे। उन्हें राजा के संकेत पर विषभरी खीर रानी चम्पावती के द्वारा खिलायी गयी। हरदौल ने हंसते–हंसते प्राणाहुति दे दी। वीर चम्पतराय की जागीर शाहजहां के ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह के हस्तक्षेप से, ओरछा नरेश पहाड़ सिंह ने प्राप्त कर ली। इस पर खिन्न होकर चम्पतराय ने उत्तराधिकारी युद्ध में औरंगजेब का समर्थन किया। शाहजहां के शासनकाल में खान ए जहां ने विद्रोह किया। वह भागते हुए कालींजर आया। सैय्यद अहमद किलेंदार कालींजर ने उन्हें शरण न दी। वह सिंकुड़ा की ओर भागा। वहां उसकी पुत्रों सहित हत्या कर दी गयी।[1]

उत्तराधिकारी युद्ध में चम्पतराय के सहयोग से औरंगजेब विजयी हुआ। उन्होंने चम्पतराय को यमुना से ओरछा तक का प्रदेश तथा वाराहजारी मनसव प्रदान किया। यह मित्रता अधिक समय तक न टिकी, चम्पतराय ने सनदे वापस कर दी तथा अधीनता से मुकत होकर स्वतन्त्रता कानारा बुलन्द किया। अनेक किले जीत लिये। औरंगजेब ने दतियां के राजा को

1. प्रताप नारायण श्रीवास्तव : वीर बुन्देले

बुन्देलखण्ड का सूबेदार नियुक्त किया। ओरछा नरेश ने मुगलों का समर्थन किया। यत्र तत्र जान बचाते हुए चम्पतराय विश्वासघातियों के घेरे में आ गये। उन्होंने समर्पण की अपेक्षा आत्महत्या करना ही उचित समझा। स्वयं तथा उनकी पत्नि लालकुंवरि दोनो ने ही अपने पेट में कटारे मारकर सन् 1664 ई0 में आत्माहुति दे दी।

छत्रसाल का जन्म ज्येष्ठ शुक्ल तीन सम्बत 1705 विकमी में मोर पहाड़ी के जंगल में हुआ। पिता के साथ दक्षिण अभियान में छत्रसाल की मुलाकात छत्रपति शिवाजी से हुयी। उन्होंने उत्तरी भारत में स्वराज्य स्थापन का मन्त्र दिया। पिता के देहान्त के समय इनकी आयु मात्र 16 वर्ष थी। उन्होंने अपने काका सुजानराय तथा भाई अंगद के परामर्श से सैन्य संगठन आरम्भ किया। उन्होंने अपना अभियान धामौनी, मैहर पर आक्रमण कर तथा पिता के विश्वासघाती हत्यारों के वध से प्रारम्भ किया। उनकी सेना में सभी जाति एवं धर्म के सैनिक थे। उन्होने मऊ सहनिया को सैन्य राजधानी तथा पन्ना को सन् 1675 ई0 में गोड़ों से हस्तगत कर राजधानी बनायी। मऊ के समीप उनकी मुलाकात संत प्राण नाथ से हुयी। उन्हें वे आदपूर्वक पन्ना ले आये। उनका कार्यक्षेत्र बढ़ता गया। छापामार युद्ध से मुगल सेना को परेशान करते रहे। गढ़पहरा (सागर) डांगी राजपूतों से प्राप्त किया। उन्होंने छत्तरपुर नगर बसाया। सन् 1707 ई0 में सम्राट औरंगजैब की मृत्यु अहमदनगर मे हो गयी। उनके उत्तराधिकारी मुअज्जम (बहादुरशाह) ने छत्रसाल को लोहगढ़ अभियान में सहयोग के लिये आमंत्रित किया। सम्राट बहादुर शाह की मृत्यु के बाद सैय्यद बन्धु (अब्दुल्ल, हुसेन अली) शक्तिशाली हो गये। कई अल्पकालीन शासक आये और गये। सम्राट मुम्मद शाह के शासन काल में मुहम्मद खां बंगस शक्तिशाली हो गया। उसे सात हजारी मनसब तथा इलाहाबाद की सूबेदारी प्रदान की गयी। उसे बुन्देलखण्ड में एरछ, भाण्डेर, कालपी, कोंच, मौदहा, जालौन का इलाका सैन्य खर्च हेतु प्राप्त हुआ। छत्रसाल ने

उसकी अधिकृत क्षेत्र पर आक्रमण किया तो बंगस सन् 1726 ई0 में सेहुडा, बांदा होते हुए जैतपुर की ओर बढ़ा। अनेक बुन्देलों राजाओं ने बंगस का सहयोग दिया। बुन्देले इचौली के युद्ध मे हार गये। उसने जैतपुर का किला घेर लिया। ओरछा के राजा उदोत सिंह, दतिया के राजा रामचन्द्र, चन्देरी के राजा दुर्जन सिंह, मौदहा के जागीरदार जयसिंह सभी बंगश के सहयोगी थे। ऐसी विषम परिस्थिति में छत्रसाल ने पेशवा बाजीराव को सहायतार्थ पत्र लिखा।

पेशवा पच्चीस हजार सवार तथा पैदल सेना सहित 12 मार्च को महोबा पहुंचे, बगश ने अपने पुत्र को सहायतार्थ बुलवाया किन्तु मराठों ने उसे बेलाताल के निकट पराजित कर भागने को विवश किया। बंगश को जैतपुर के किले में घेर लिया। निराश मुहम्मद खां बंगश ने बुन्देलों की शर्त स्वीकार की कि वह दुबारा बुन्देलखण्ड पर आक्रमण नही करेगा। छत्रसाल ने उसे सकुशल लौट जाने दिया। जैतपुर में पेशवा का अभिनन्दन किया गया। पुत्रों की रक्षा का भार उन्हें सौंप दिया, अपने राजय का 1/3 भाग, तीसरा पुत्र मानकर जागीर के रूप में प्रदान किया। इसी समय मस्तानी नामक सुन्दरी पेशवा के साथ कर दी गयी। 23 मई को बाजीराव ने पूना के लिए प्रस्थान किया। दो वर्ष उपरान्त महाराज छत्रसाल का देहावसान 12 मई सन् 1731 ई0 (ज्येष्ठ बदी 3 सम्बत् 1788 विक्रमी) हो गया। उन्होंने राज्य के तीन भाग कर दिये। ज्येष्ठ पुत्र हृदयशाह को पन्ना, मऊ, गढ़ाकोटा, शहागढ़, कालींजर सहित प्रदान किया। जगतराज को जैतपुर, अजयगढ़, चरखारी, विजावर, बांदा सहित प्रदान किया । अगले वर्ष पेशवा के भाई चिमा जी बुन्देलखण्ड पधारे। मराठों को कालपी, हटा, हृदयनगर, जालौन, झांसी, सिरौंज, गढ़ाकोटा, सागर आदि सन् 1735 में प्राप्त हुए।

बेतवा नदी के पार ओरछा राजवंश दिल्ली सम्राट का समर्थक था। झांसी के निकट ओरछा राजधानी आक्रांताओं से अशान्त रहने लगी। फलतः राजधानी परिवर्तित होकर (पुरानी

टेहरी) टीकमगढ़ हो गयी। महाराज हृदयशाह और जगतराज के उपरान्त उत्तरधिकारी विषयक गृहयुद्ध छिड़ गये। चरखारी और बांदा (खुमान सिह और गुमान सिंह) तथा पन्ना और शाहगढ़ (सभा सिंह और पृथ्वीराज) के बीच विवाद उत्पन्न हो गये। इसमे नोने अर्जुनसिंह, पेशवा बालाजी बाजीराव ने हस्तक्षेप किया। बुन्देलों की शक्ति क्रमशः निर्बल होती गयी। पन्ना नरेश सभासिह को गोविन्द पन्त बुन्देला ने विवशतः भाई पृथ्वी सिंह को शाहगढ़, गढ़ाकोटा का इलाका दिला दिया। वे मराठों को चौथ देते रहे। राजा अमान सिंह (1752 से 58) की हत्या चित्रकूट में हो गयी। इससे गृहयुद्ध प्रारम्भ हो गया। राजा हिन्दूपत (सन् 1958–76 ई0) ने अपने ज्येष्ठ पुत्र की जगह अल्पवयस्क अनिरूद्ध सिंह को राजा बनाया। कम्पनी की सेना जब बुन्देलखण्ड में गुजर तो कामदार बेनी हुजूरी ने इनका विरोध किया किन्तु किलेदार कालींजर के सहयोग से सकुशल निकल गये।

दतिया नरेश राजा रामचन्द्र ने सन् 1707–36 ई0 तक राज्य किया। सन् 1760 ई0 में सम्राट शाह आलन बुन्देलखण्ड का दौरा किया। दतिया नरेश इन्द्रजीत को राजा की उपाधि से सम्मानित किया। नन्हें शाह गूजर ने बुन्देलों के गृह युद्ध में भाग लिया। राजधर की उपाधि प्राप्त कर समथर राज्य की स्थापना की। मदन सिंह ने सन् 1725–70 ई0 तक शासन सम्भाला। दतिया नरेश शत्रुजीत ने सन् 1763 से 1801 ई0 तक शासन किया। सन् 1793 ई0 में सिंधिया के निर्देशन पर गोपाल राव ने दतिया पर आक्रमण किया। अम्बा जी इंगलियां ने विद्रोह कर दतिया मे शरण प्राप्त की। सिंधिया की सेना ने उनका पीछा कर विद्रोहियों को घेर लिया। राजा शत्रुजीत इस युद्ध में मारे गये।

महाराजा हिन्दूपत की मृत्यु के बाद बुन्देलों में गृह युद्ध प्रारम्भ हो गया। इस अव्यवस्था का लाभ उठाकर सोनेशाह परमार (पावांर) ने सन् 1758 ई0 में स्वन्त्र छतरपुर राज्य की स्थापना की जिसकीा आय चार लाख रूपया वार्षिक की थी। मैहर भी स्वतन्त्र हो गया।

सन् 1761 ई0 में पानीपत का तृतीय युद्ध अहमद शाह अब्दाली और मराठों के बीच हुआ। सेनापति विश्वासराव और सदाशिव भाऊ पराजित हुये। गोविन्द पन्त बुन्देला तथा मस्तानी बाजीराव के पुत्र शमशेर बहादुर भी शहीद हो गये। पेशवा बालाजी बाजीराव दुखित होकर प्राण गवां बैठे, मराठों की शक्ति कमजोर हो गयी। अंग्रेजों का प्रभुत्व बंगाल और बम्बई में स्थापित हो गया। मुगल और मराठे द्वितीयक शक्ति बन गये।[1]

प्रथम आंग्ल मराठा युद्ध सन् 1776 में प्रारम्भ हो गया। अंग्रेजी सेना कलकत्ता से कर्नल लैस्ली के सनोपतित्व में बम्बई की ओर बढ़ी। मार्ग में गोविन्द राव (जालौन के सूबेदार) ने बुन्देलखण्ड के राजाओं को अंग्रेजी सेना का मार्ग रोकने के लिए प्रोत्साहित किया। उत्तराधिकारी युद्धों से ग्रसित कुछ बुन्देला शासकों ने अंग्रेजी सेना को, सहयोग दियां राजगढ़ के समीप कर्नल लेस्ली ने बुन्देलों के उत्तराधिकारी युद्ध मे हस्तक्षेप करने नीति बनाई थी, उसकी मृत्यु हो गयी । कर्नल गाडर्ड ने निर्हस्तक्षेप की नीति अपनाई और अंग्रेजी सेना सकुशल सागर होते हुए भोपाल पहुंच गई। प्रथम मराठा युद्ध बिना हार जीत के समाप्त हो गया। अंग्रेज अधिकारियों को बुन्देला राजाओं को निर्बलता का ज्ञान हो गया। नबाबा अवध शुजाउछ्दौला न बुन्देलखणड पर अधिकार करने का विचार किया। हिम्मत बहुाद गुसाई के नेतृत्व में सेना भेजी, बुन्देलों की संयुक्त सेनाओं ने अवध की सेना को हरा कर खेदड़ दिया। सागर के सूबेदार ने गौड़ राजा नरहरिशाह के विरूद्ध सेना भेजी और उन्हें चौरागढ़ के युद्ध में पराजित कर बन्दी बना लिाय। सम्राट शाहआलम ने इलाहाबाद में रूक कर पन्ना के राजा हिन्दूपत के खिलाफ सैन्य अभियान का कार्यक्रम बनाया किन्तु अंग्रेजी सेना ने सैन्य सहयोग देने से इन्कार कर योजना को विफल कर दिया।

---

1. डा0 जय प्रकाश मिश्र : बुन्देलखण्ड का इतिहास एवं सस्कृति

सन् 1781 में पन्ना एवं अजयगढ़ के राजाओं के बीच उत्तराधिकारी युद्ध प्रारम्भ हो गया जिसमे मराठों तथा अंग्रेजों से हस्तक्षेप चाहा गया। महाराज हिन्दूपत के देहान्तोपरान्त उनके पुत्र सरनते सिंह और अनिरूद्ध सिंह के बीच उत्तराधिकारी युद्ध मे बेनी हुजूरी और कामयजी चौबे ने अलग–अलग पक्ष का समर्थन किया। इनकी परस्पर प्रतिद्वदिता में अर्जुन सिंह भी शामिल हो गये। बुन्देलखण्ड का महाभारत गठेवरा (छतरपुर से पांच मील पूर्व) में 4 जुलाई सन् 1987 ई० (असाढ़ सुदी परीवा सं० 1844 वि०) को हुआ। जिसमें एक लाख से अधिक वीर पुरूष मारे गये अथवा गम्भीर रूप से घायल हुये। पन्ना के सेनाध्यक्ष बेनी हुजूरी (मैहर के संस्थापक) मारे गये। इसमें अर्जुन सिंह को विजयश्री प्राप्त हुई। छिछरिहा का युद्ध उत्तरवर्ती बुन्देलों का युद्ध हे। सोने शाह पवार ने छतरपुर राज्य की स्थापना कर ली।[1]

बुन्देलों की आन्तरिक दुर्बलता को समझकर हिम्मतबहादुर गोसाई ने अली बहादुर पथम (पौत्र पेशवा बाजीराव तथा मस्तानी) ने बन्देलखण्ड विजित करने का प्रस्ता दिया। तुकोजी होलकर का सहयोग प्राप्त कर महाराज सिनिघ्या के विरूद्ध अली बहादुर बुन्देलखण्ड की ओर बढ़े। 18 अप्रैल 1790 ई० को बनगांव के युद्ध में उन्हांने नोने अर्जनसिंह को परास्त कर दिया। युद्ध में अर्जन सिंह वीरगति को प्राप्त हुए। धीरे–धीरे कालींजर किलो को छोड़कर पूर्वी प्रदेश अली बहादुर के अधीन हो गया। कालींजर को घेरा डालते हुए ही अलीबहादुर की मृत्यु 28 अगस्त सन् 1802 ई० में हो गयी। नबाब अली बहुदर का विजित क्षेत्र पश्चिमी मे धसान, पूर्व में टोंस उत्तर में बेतवा तथा दक्षिण में सागर तक फैला हुआ था। इसकी वार्षिक आय 62 लाख रूपये थी। कालींजर दो वर्ष घेरा डालनके उपरान्त अविजित रहा। रीवा राज्य से भी चौथ प्राप्त होने लगी थी। ओरछा,दतिया स्वतन्त्र राज्य थे। अली बहादुर का एक मात्र पुत्र शमशेर बहादुर पूना में था।

---

1. मोती लाल त्रिपाठी : बुन्देलखण्ड का इतिहास

पिता की मृत्यु का समाचार पाकर उसने पेशवा अमृतराव तथा होलकर का आशीर्वाद प्राप्त कर बुन्देलखण्ड की ओर प्रस्थान किया। हिम्मत बहादुर गोसाई तथा अली बहादुर के चचेरे भाई गनी बहादुर ने दो वर्षीय बालक जुल्फिकार अली को नवाब की गद्दी पर बैठा कर स्वतः संरक्षक बन बैठे। पूना दरबार में नाना फड़न्वीस की मृत्यु ने अंग्रेजों को हस्तक्षेप करने का अवसर प्रदान किया। रघुनाथ राव के पुत्र बाजीराव द्वितीय को पेशवा की गद्दी पर बैठा दिया। बसीन की संधि पर हस्ताक्षर करा लिये। अंग्रेजी सेना की व्यय पूर्ति हेतु कर्नाटक व गुजरात में भूभाग प्रदान किया गया था। बसीन की पूरक संधि पर हस्ताक्षर पेशवा बाजीराव ने कर दिये। इसके अनुसार अंग्रेजी कम्पनी को रूपया 36,16000/- का इलाका (अलीबह्ुदुर द्वारा विजित) उन्हे प्रदान कर दिया गया। नबाब शमशेर बहादुर द्वितीय को विद्रोही करार देकर उसे समर्पण करने का प्रस्ताव भेजा गया। हिम्मत बहादुर ने नवाब का साथ छोड़कर कम्पनी शासन से शाहगढ़ की संधि कर ली। कपसा के मैदान में नवाब की सेना पर कर्नल पावेल तथा हिम्मत बहादुर की सेना ने पीछे से आक्रमण किया। शमशेर बहादुर बेतवा नदी पारकर झांसी की ओर बढ़ा। कैप्टेन बेली ने नवाब की जागीर पर शासन व्यवस्था प्रारम्भ कर दी। अन्ततः नवाब को 16 जनवरी 1804 ई० में बत्तीस शर्तो का शर्तनामा स्वीकार करना पड़ा। नबाब को चार लाख रू० वार्षिक पेंशन स्वीकृत हुई। झांसी तथा कालपी के सूबेदार भी समर्पण संधि पर हस्ताक्षर के लिए विवश हो गये। नवाव द्वारा विजित प्रदशे के पूर्व राजाओं से कम्पनी शासन ने संधि पत्र पर हस्ताक्षर करायें। अजयगढ़ और कालींजर के विरूद्ध सैन्य अभियान प्रारम्भ हुआ। कूटनीति के द्वारा किलेदार कालींजर के दीवान गोपाल लाल को अनकूल बनाकर कालींजर के सामान मूल्य की जागीर, चौबे परिवार (आठ भाइयों) को तथा दीवान साहब को स्वतन्त्ररूप से

चित्रकूट के समीप कामता रजौला की जगीर प्रदान की गयी।

बुन्देलखण्ड जिला बनया गया इसका मुख्यालय बांदा रहा। आगे चलकर उत्तरी दक्षिणी बुन्देलखण्ड नामक दो जिले (बांदा हमीरपुर) बन गये। द्वितीय आंग्ल–मराठा युद्ध के दौरान पिण्डारियों के आक्रमण से सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में धन और जन की भयंकर क्षति हुई। तृतीय आंग्ल मराठा युद्ध सन् 1818 ई0 में समाप्त हो गया। सागर के विनायक राव चांदोरकर ने भोंसले और पिण्डारियों को सहायता दी थी। इसलिए अंग्रेजों ने उनका राज्य छीन लिया और दो लाख पचास हजार रूपये वार्षिक पेंशन स्वीकृत दे दी। सागर जिले का धामौनी परगना भी भोसले के हाथ में था। अंग्रेजो से संधि हो जाने पर सिन्धिया के अधिकार क्षेत्र से गढ़ाकोटा, मालथौन, देवरी, गौर झामर, नाहरमऊ आदि प्रदेश सन् 1821 ई0 में अंग्रेजों को प्राप्त हो गये। 'दमोह और सागर का क्षेत्र, नर्मदा और सागर का क्षेत्र बनाकर' कमिश्नर के अधीन शासित प्रदेश कहलाया। झांसी के राज्य पर रामचन्द राव का अधिकार अंग्रोजों को स्वीकार कर लिया। गोविन्दराव का अधिकार क्षेत्र जालौन और गुरसराय में मानलिया गया।

लार्ड डलहौजी ने गोद लेने की प्रथा को समाप्त कर दिया। सन् 1838 ई0 में गोविन्द राव को राज्य व्यवस्था देखने में असमर्थ मानकर जालौन का प्रबन्ध अंग्रेजों ने अपने हाथ में ले लिया। जालौन सूबे में महोबा, रामपुर, मुहम्मदाबाद आदि परगने थे। गुरसराय का प्रबन्ध केशवराय के सुपुत्र बालाकृष्ण भाऊ के हाथों में बना रहा । झांसी के राजा रामचन्द्र रव निःसन्तान मर गये। उनकी विधवा रानी ने गोद लेना चाहा। उसे मान्यता प्राप्त नहीं हुई। शिवराम भाउ के दूसरे पुत्र रधुनाथ राव राज्य के स्वामी बने। रघुनाथ राव की मृत्यु सन् 1838 में हो गयी। उनके उत्तराधिकारी को अस्वीकार कर गंगाधर राव को राजा मान लिया गया।

इनका विवाह लक्ष्मीबाई से हुआ। सन् 1835 ई0 में आगरा और इलाहाबाद क्षेत्र को मिलाकर पश्चिमोततर प्रदेश लेफ्टिनेन्ट गर्वनर के आधीन कर दिया गया। पोलिटिकल ऐजेन्ट नौगांव छावनी में निवास करने लगे। अंग्रेजी शासन की राजस्व नीति किसान तथा जमींदारों के हित के विरूद्ध थी। लगान प्रति चार या पांच वर्ष में बढ़ाया जाने लगा। इस नीति से खेत उजड़ने लगे और किसान भूमिहीन बन गये।

सन् 1842 ई0 में जैतपुर के राजा पारिक्षित के नेतृत्व में समीपवर्ती जगीरदार एवं राजाओं ने अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंकने का संकल्प बुढ़वा मंगल को लिया। कई जागीरदार और राजा अंग्रेजी शक्ति के आगे झुक गये। अन्ततः विद्रोह दबा दिये गये। जैतपुर का राज्य अंगेजी शासन में विलीन हो गया। विद्रोह का क्षेत्र दमोह नरसिंहपुर, सागर, बांदा तक फैला हुआ था। लार्ड डलहौजी की नीति में पेशवा बाजीराव के दत्तक पुत्र नाना साहब, झांसी की रानी लक्ष्मी बाई तथा नबाब अली बहादुर द्वितीय असंतुष्ट हो गये।

प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम प्रारम्भ होने के अनेक कारण— धार्मिक सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनैतिक थे। पुराने राजवंशों का अस्तित्व खतरे में था। क्रान्ति का प्रारमी मरेठ से मई सन् 1857 ई0 में चर्बी युक्त कारतूस के प्रयोग के विरूद्ध शुरू हुआ। इलाहाबाद और कानपुर में फैली हुई क्रान्ति का प्रभाव शीघ्र बुन्देलखण्ड में फैल गया। देशी सिपाहियों में अंग्रेजी सेनाधिकारियों को जहां पाया मार डाला। जेल से साजायाफ्ता बन्दियों को मुक्त कर दिया गया। सरकारी खजाने लूट लिये गये। तहसील कार्यालय के सरकार कागजात जला दिये गये।

झांसी के महाराज गंगाधर राव की मृत्यु सन् 1853 ई0 में हो गयी। दामोदर राव को गोद लिया गया  किन्तु इसे मान्यता नहीं मिली। रानी लक्ष्मीबाई को रूपया 5000/—

मासिक पेन्शन स्वीकृत कर मेजर माल्कम ने झांसी को अंग्रेजी राज्य मे मिलाने का आदेश दिया। झांसी के राजदरबार ने शासन दामोदार राव के नाम से चलाने का निश्य किया। रानी की समस्त अपीले निरर्थक सिद्ध हुई। झांसी के राज्य अंग्रेजी शासन मे मिलाने का विरोध लक्ष्मीबाई ने किया और घोषणा की "मैं झांसी अंग्रेजां को नहीं दूंगी" तथा पेन्शन ठुकरा दी।[1] रानी किला छोड़कर शहर में रहने लगी। झांसी में कमिश्नर स्किन की नियुक्ति की गयी। अंग्रेजी सेना का नेतृत्व जनरल डनलप के आधीन हो गया। क्रान्ति की चिन्गारी फैलते ही झांसी के सेना ने 4 जून 1857 ई0 को सेनापति गार्डेन तथा कमिश्नर स्किन को मार डाला। बांदा में भी क्रान्ति मऊ (इलाहाबाद के समीपस्थ) मे 5 जून को शुरू हो गयी। 19 जून को नबाब बांदा ने सत्ता अपने हाथों में ले ली। बांदा, झांसी, दमोह, सागर स्वतन्त्रा संग्राम के केन्द्र बने। ओरछा के राजा की ओर से नत्थेखां दीवान नें झांसी पर आक्रमण किया। रानी ने अंग्रेजों सहायता मांगी किन्तु नहीं मिली। रानी ने जवाहर सिंह के नेतृत्व में नत्थेखां की सेना पर आक्रमण कर उन्हे पराजितः कर दिया। झांसी पर आक्रमण हेतु अंग्रेजी सेना बम्बई तथा मद्रास की ओर से चली। जनरल हिटलाक जबलपुर से चला। सागर में भी देशी सेना ने बगावत कर दी। राजा मर्दन सिंह ने खुरई तथा नरियावालि पर अधिकार कर दिया। शाहगढ़ के राजा बख्तवली ने अंग्रोजें के विरूद्ध संघर्ष प्ररम्भ कर दिया। दमोह जिले के लोधी भी अंग्रेजो के विरूद्ध हे गये। हयूरोज की सेना ने बानपुर के राजा को पराजित कर सागर पर अधिकार कर लिया। अंग्रेजों ने चकमा देकर शाहगढ़ को भी ले लिया। अंग्रेजी सेना तालबेहट चन्देरी होते हुए झांसी की ओर बढ़ी। 23 मार्च 1858 ई0 को झांसी किले पर आक्रमण किया। रानी के तोपची गुलाम गौस खां ने वीरता से मुकाबला किया। तात्या टोपे रानी के सहायतार्थ चरखारी

---

1. डा0 मोहन लाल गुप्ता : बुन्देलखण्ड की अमर क्रांति

से बचे किन्तु अंगेजी सेना ने उन्हें बीच में ही रोक लिया। तात्या भाग कर कालपी चले गये। अंग्रेजी सेना ने झांसी पर तीन ओर से हमला बोल दिया। मजबूर होकर रानी को झांसी किले से भागना पड़ा। रानी 3 अप्रैल को झांसी से कालपी की ओर बढ़ी। झांसी को अंग्रेजी सेना ने जी भर लूटा। पुरूष वेष में झांसी की रानी ने अंग्रेजों का मुकाबला किया। वह अपनी पीठ पर दामोदर की बांधे हुयी थी। बांदा के नबाव अली बहादुर द्वितीय भी 20 अप्रैल को पराजित होकर कालपी की ओर बढ़े। शाहगढ़ तथा बानपुर के राजा भी सेना सहित कालपी पहुंचे। कोंच और लोहारी किले पर अंग्रेजी सेना का अधिकार हो गया। कालपी के युद्ध में अंग्रेजी सेना युद्ध सामग्री की पर्याप्तता के कारण विजयी हुयी। रानी ने ग्वालियर की ओर प्रस्थान किया। बांदा के नबाब और राव साहब इन्दौर की ओर बढ़ गये। रानी ने सिंधिया की सेना को हराकर ग्वालियर पर कब्जा कर लिया।

अंग्रेजी सेना ग्वालियर की ओर बढ़ी क्रांन्तिकारी विजयोल्लास में मस्त लापरवाह थे। ग्वालियर की सेना अंग्रेजी सेना के सहयोग में आ गयी। फलतः रानी व पेशवा की सेना 18 जून 1858 ई0 को मुरार में पराजित हो गयी। रानी ने बुन्देलखण्डी सैनिक जैसा मर्दाना वेश बनाया। उनके साथ रामचन्द्र देशमुख भी थे। रानी का घोड़ा सोनरेखा नाले को पार न कर पाया। पीछा करते दो अंग्रेज सैनिकों को रानी ने मार डाला। रानी का अगला सिर कट गया था। जीवन के अन्तिम क्षण में रानी ने अपने शव को अंग्रेजों के हाथ में न पड़ने लिए रामचन्द्र से निवेदन किया। वीरगति प्राप्त होने पर राचन्द्रराव ने एक फूस के झोपड़े में रानी का शव रखकर अग्नि प्रदीप्त कर दी तथा स्वयं दामोदर राव को लेकर फरार हो गये।[1]

---

1. श्रवण कुमार त्रिपाठी : बुन्देलखण्ड की अमर क्रांति

## चंदेल कालीन बुन्देलखण्ड (830–1600 ई0)

बुन्देलखण्ड के प्राचीन इतिहास में चन्देलकाल का विशेष महत्व है। चन्देलकाल का विशेष महत्व है। चन्देलकाल बुन्देलखण्ड की वीरता, गण्ड, धंग, विद्याधर जैसे महान योद्धाओं के योगदान, खजुराहो के अमरशिल्प, उत्कृष्ट शासन व्यवस्था को प्रतिबिम्बित करता है।

### (अ) चन्देलों का शासन–प्रबन्ध :

जैजाकमुक्ति (बुन्देलखण्ड) चंदेलों का शासन अन्य राजवंशो की तुलना में सर्वाधिक लगभग 300 वर्षो तक अबाध रूप से रहा। शासन प्रबन्ध का मूलाधार चाणक्य नीति के सिद्धान्त थे। राजसत्ता का स्वरूप निरंकुश, अनियन्त्रित था। इसके अव्यव शक्तिशाली सामंत थे। ये राजसत्ता के साथ उनके निर्देश पर कार्य करते थे। राजा को अपनी सत्ता बनाये रखने के लिए अपने सगे सम्बन्धियों की सहातया लेनी पड़ती थी। इनके अतिरिक्त अनेकानेक कर्मचारी भी होते थे जो राजा के द्वारा नियुक्त व पदमुक्त किये जाते थे। राजा का परमाधिकार दैवीय सत्ता सिद्धान्त पर आधारित था।[1] चन्देल शासकों ने सर्वदा विधान (धर्मशास्त्र) की मर्यादा सुरक्षित रखते हुये शासन किया, उनकी निरंकुशता प्रजाहित के लिए प्रयुक्त हुई। इस युग में स्मृतियों के नियमों के आधार पर शासन संचालित होता था। उनकी स्वेच्छाचारिता नियंत्रित थी।

व्यवहारिक रूप में राजा सब अंगो (सेना, न्याय, कार्यपालिका) का अध्यक्ष था, समस्त अधिकारों का उद्‌गम स्थल था। सेना का सर्वाधिकारी नायक था। शास्त्रों से अनुसार राजा प्रजा से बलि के रूप में पारश्रमिक पाता है राजा के उपरान्त राजमहिषी तथा युवराज

---

1. बी. ए. स्मिथ : हिस्ट्री एण्ड कायलेज आफ चंदेल डायनेस्टी

का सर्वोच्च स्थान था। युवराज बहुधा सेनापतित्व का कार्यभार भी संभालता था। चन्देलों में ज्येष्ठाधिकार के आधार पर शासन सत्ता हस्तांतरित होती थी इस वंश में अभिषेक परम्परा विद्यमान थी राजा की उपाधियों परमभट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर, परममहेश्वर, तथा कालिंजराधीश्वर आदि थी।[1]

राजा अपने मंत्रियों की सहायता से शासन संचालित करता था। मंत्रिमण्डल शासनतंत्र का अविच्छेद्य अंग था। मंत्रियों की नियुक्ति राज्यभक्ति, वंश की प्रतिष्ठा और पहुंच के आधार पर होती थी। उनकी सेवावधि राजेच्छा पर निर्भर थी। मंत्रियों का पद प्रायः पैतृक था। एक ही वंश की पांच पीढ़ियां मंत्रिपद पर रहीं। मंत्री प्रायः वाग्मी, चुतर, दूरदर्शी, तीव्रमति, पराक्रमी, स्थिरचित स्वास्थ्य–सम्पन्न होते थे। इनकी संख्या अनिश्चत थी। ब्राम्हण मंत्रियों का बाहुल्य था। ब्रह्माणेत्तर (कायस्थ, क्षत्रिय) मंत्री पद प्रतिष्ठित थे। मंत्रिगण अलग अलग विभाग के प्रभारी रूप में राजा परामर्श देते थे। **प्रधानमंत्री (मन्त्रीन्द्र)** के पास भी शासन के विभाग थे। बहुधा युवराज मंत्री सभा की अध्यक्षता करने में सक्षम माने जाते थे। **पुरोहित** का पद मंत्रियों से अलग था। युद्ध मंत्री या सेनापति के अधीन प्रमुख दुर्ग रखे जाते थे। न्याय, परराष्ट्र, कोष आदि विभाग भी थे। मंत्रियों के विभाग बदलते रहते थे उनकी सहायता के लिय सहायक (सचिव) यथावश्यक होते थे। मंत्रियों का परामर्श मानना राजा के लिए अनिवार्य नहीं था।

**साम्राज्य** अनेक **भुक्ति** (संभाग) में विभक्त था। इनके अधिकारी राजस्थानीय कहलाते थे जिनकी नियुक्ति सम्राट द्वारा होती थी। इनका कार्यकाल अनिश्चित था। मुक्ति भी विषय (जिला) में विभक्त थे। इनके अधिकारी **विषयपति** कहलाते थे। भुक्ति और विषयों में कार्यालय व स्थानीय आधिकारी थे। **विषय या गण्डलों** की सीमायें बदलती रहती थी।

---

1. सी. वी. बैध : हिस्ट्री आफ मेडिकल इंडिया

**गांव** इस शासकीय विभाजन की सबसे छोटी इकाई थी। नगरों एवं किलों के लिए स्वतंत्र शासन व्यवस्था थी। कई समितियों तथा उपसमितियों व्यवस्था का भार सम्भालती थी। गांव की महत्ता सर्वोपरि थी।[1] इसके प्रबन्ध के लिए ग्राम पंचायतें थी। ग्राम प्रधान का पद प्रायः पैतृक था। गांव प्रबन्ध की दृष्टि से दो प्रकार के थे प्रत्यक्ष रूप से राजा या उसके नियुक्त कर्मचारी के आधीन तथा अन्य प्रतिग्राहकों (विषयों) के अधीन थे। गांव प्रायः आत्मनिर्भर थे। प्रत्येक गांव में रक्षक वैद्य, चिकित्सक, शिक्षक, पुरोहित आदि थे। स्थानीय संस्थाओं की जांच के लिए प्रतिवर्ष केन्द्रीय शासनालय से विशेष कर्मचारी आते थे। महोबा, खजुराहों, कालिंजर, देवगढ़, आदि बड़े नगर थे।

चन्देलों की अर्थव्यवस्था अत्यन्त सुदृढ़ थी। अनेक युद्धों के बाबजूद वह आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न बने रहे। किले, मन्दिर, तालाबों का निर्माण कराते रहे। विशाल सेना को सुस्थिर करते रहें। आय के प्रमुख साधन जलाशय, परती भूमि, पत्थर, पहाड़ व नदियां, वन्य, खनिज सम्पत्ति, नमक आदि थे। हीरा खदाने भी आय की बड़ी श्रोत थी। न्यायालयों में अर्थदण्ड भी आय का एक साधन था। युद्ध में प्राप्त लूट तथा सामंतो द्वारा प्रदत्त उपहार भी आय के साधन थे। अस्त्र–शस्त्रों को निर्माण तथा सिक्को के ढालने पर राज्य का एकाधिकार था। कर संग्रह में कठोरता नहीं बरती जाती थी। जनता में सदभावना बनी रहे यह ध्यान रखा जाता था।[2] चंदेलों को युद्ध की संलग्नता के कारण एक विशाल स्थायी सेना रखनी पड़ती थी। शासन संचालन में राजकर्मचारियों की संख्या भी विशाल थी। व्यवस्था सामंतवादी थी। इस लिए अनेक कर्मचारियों को नकद वेतन मिलता था या भूमि गांव दे दिये जाते थे। पद प्रायः पैतृक थे। आय का एक भाग मन्दिर, सरोवर व दुर्ग निर्माण तथा मरम्मत में व्यय होता था। जनहित के कार्य उदारतापूर्वक किये जाने कारण चन्देल काल स्वर्ण का दृष्य उपस्थित करता था।

---

1. केशव चन्द्र मिश्र : चन्देल और उनका राजत्वकाल
2. डा. ए. एस. अलतेकर : प्राचीन भारतीय शासन पद्धति

## (ब) चन्देल कालीन न्याय व्यवस्था :

चन्देल काल में न्याय और दण्ड के लिये धर्मशास्त्र एवं लोकव्यवहार प्रमुख आधार थे। राजा स्वयं विधान का स्रोत था।[1] पुरोहित या ब्रह्ममण्डल न्याय का रक्षक था। न्याय की निम्नतम इकाई ग्राम पंचायतया जातीय पंचायते थी। राजपुरोहित न्यायाधिकारी थे। अपीलों की प्रथा नहीं थी। दीवानी और फौजादारी मुकदमें एक स्थान में निर्णीत होते थे। घृणित अपराधों के लिए अंगच्छेद, प्राणदंड, कारावास या राज्य निष्कासन था। ब्राम्हण मृत्युदण्ड से वंचित थे अंगच्छेद हो सकता था। अर्थदण्ड अपरधानुसार था। राज्य में शान्ति सुव्यवस्था थी। उद्दण्ड उच्छृंखल अपराधियों का अभाव था। सैन्य व्यवस्था में स्थानीय सैनिकों की प्रधानता थी। पदाति अश्व, हस्तिके साथ नौसेना (नौकायें) थी। स्वादेशाभिमान सैनिकों का आवश्यक गुण था। सभी जाति के सैनिक भर्ती किये जाते थे। सेनापतियों के अधीन बलाध्यक्ष होते थे। जब कोई सैनिक मरता था तो उसके आश्रिताके को जीविका के साधन प्रदान किये जाते थे। कालिंजर, अजयगढ़ मनियागढ़, मड़फा, मौदहा, देवगढ़ आदि किले सुदृढ़ और सुरक्षित थे उनमें अन्न भण्डार तथा पानी की पर्याप्त व्यवस्था की जाती थी। सुरक्षा की दृष्टि से उनमें कई द्वार होते थे। समस्त किले राजमार्गो से जुड़े हुये थे। कन्नोज से गुजरात, मालवा का मार्ग खजुराहों होकर जाता था। चंदेल शासन काल में अनेकानेक तालाब खुदवाये गये तथा नहरें भी निकाली गयी। शिक्षालय या तो ब्राम्हणों के धरों में या देवालियों में थे। सांस्कृतियों समारोहों में मन्दिरों के विशाल प्रांगणों का उपयोग होता था। शिक्षक ब्राम्हणों की जीवकोपार्जन के लिए भूमि, अन्न, गाय, प्रदान की जातीा थी। दक्षिणा में शिष्य भी प्रर्याप्त धन प्रदान करते थे। उच्च शिक्षा का आधार भी यही था। पंडित (दान विभाग) और पुरोहित धर्म के संरक्षक थे।

चन्देलों के राजत्वकाल में भी मंत्रिपरिषद् शासन का एक आवश्यक अंग थी जो

---

1. डा0 ए0 एस0 अलतेकर : इंडियन एण्टीक्वेरी

पर्याप्त लोकप्रिय और वैधानिक थी। शासन व्यवस्था को अत्याधिक प्रभावकारी और सुदृढ़ बनाने के लिए चन्देल शासकों ने अपने साम्राज्य को क्रमिक रूप से भागों और उपभागों में विभाजित कर दिया था। समस्त चन्देल राज्य मण्डलों में विभक्त था।[1] यह चन्देलों की प्रादेशिक शासकीय इकाई थी। मण्डल कई विषयों में विभक्त थे जो वर्तमान जिलों की भांति थे। विषय पुनः ग्राम समूहों में विभक्त कर किये गये थे। ग्राम समूह अपने मुख्य ग्राम के नाम से प्रसिद्ध था। यह तहसील जैसा था।

**गांव** शासकीय विभाजन की सबसे छोटी इकाई थे औार उनका महत्व असाधारण था। गांव के प्रधान को–पट्टलिक, ग्रामपति, ग्रामकूट, महत्तक या महन्तक कहा जाता था।[2] गांव की व्यवस्था का भार ग्राम सभा पर था। विविध कार्यो का दायित्व वहन करने के लिए सभा के अधीन कई उपसमितियां होती थी, जिन्हें मध्यकालीन लेखों में पंचकुली कहा गया है। इनके प्रमुख कार्य रक्षा, भूमि–वितरण उद्योग तथा न्याय थे। सभा के भीतर विशिष्ट लोगों की एक कार्यकारिणी भी होती थी। परमर्दिदेव के सेमरा ताम्रपत्र (वि0सं0 1233) से ज्ञात होता है कि गांवों की व्यवस्था ऐसी सुचारू थी कि वे सर्वथा आत्मनिर्भर थे। प्रत्येक गांव में रक्षक, दूत, बैद्य–चिकित्सक, ज्योतिषी आदि थे। परमर्दिदेव के महोबा–पत्र के अनुसार गांवों में ग्रामपति और रक्षकों के अतिरिक्त अन्य कई प्रकार के कर्मचारियों के होने की सूचना प्राप्त होती है। ग्राम व्यवस्था सम्बन्धी समस्त कागजात गांव में ही रखे जाते थे और इन कागजातों की जांच के लिए शासन की ओर से विशेष अधिकारियों की नियुक्ति भी होती थी।[3]

चन्देल शासन व्यवस्था में सभी लोग धर्म शास्त्रों तथा लोग व्यवहार को विधान का मूल मानते थे। दूसरा साधन देश में प्रचलित लोक व्यवहार था। कभी–कभी तो किसी गांव विशेष, सम्प्रदाय विशेष यहां तक कि परिवार विशेष में प्रचलित लोक व्यवहार विधान के रूप में

---

1. केशव चन्द्र मिश्र : चन्देल और उनका राजत्वकाल पृ0 162
2. शुक्रनीति सार
3. एपीग्रेफिया इंडिका भाग – 1 पृ0 140

ग्रहण कर लिये जाते थे। नये–नये विधानों के बनाने की सम्भावना कम थी, पर विधानों में तात्पर्य विस्तार और सुधार बराबर सम्भव थे। इसके अतिरिक्त मूल विधानों के भाष्य होते रहे, जिससे उन्हें परिवर्तित समाज के स्वास्थ्य के अनुरूप रूप दिया जा सके। जब कभी विधान का संदिग्ध भाष्य होता अथवा कोई जटिल अभियोग निर्णय के लिए आ जाता तब विवेकशील ब्राम्हणों का मण्डल इस पर अन्तिम निर्णय प्रसारित करने के लिए बैठाया जाता था। स्मृतियों का ज्ञान प्रधान न्यायाधीश के लिए आवश्यक था। अतः कभी–कभी पुरोहित ही उस पद पर प्रतिष्ठित होता था। धंगदेव (1003 ई0) के शासन काल में ऐसा ही था। उस समय का प्रसिद्ध न्यायाधिकारी राज्य पुरोहित यशोधर था।[1] अन्यान्य न्यायलयों में भी पुरोहित और उनकी सभा को महत्व प्राप्त था।

दीवानी और फौजदारी पद्धतियों में कोई विशेष भेद नहीं थां अतः दोनों ही प्रकार के उच्च–स्तर के अभियोग एक ही न्यायलय में देखे जाते थे। न्याय की सबसे अन्तिम इकाई ग्राम पंचायत थी। यहां दीवानी और फौजदारी के सभी छोटे–छोटे अभियोग देखे जाते थे। इन पंचायतों को अपने निर्णय कार्याविन्त करने के पूरे अधिकार प्राप्त थे। अग्रहार ग्रामों में, जो प्रतिग्राहकों के अधीन थे, पंचायतों के अधिकार प्रतिग्राहक को प्राप्त हो जाते थे। इन गांवों में राजा अथवा उसके कर्मचारियों के किसी प्रकार के शासकीय अधिकार नहीं रह जाते थे। ग्राम पंचायतों के ऊपर विषय (जिला) न्यायालय थे जिनमें राजस्थानीय या दण्डनायक न्यायाधीश होते थे यहां बड़े अभियोगी तथा अपील पर विचार किया जाता था। हिन्दू न्याय प्रणाली में अपीलों की महिला अधिक नहीं थी। जो व्यक्ति जिले के न्यायालय में हार जाता था। वह अपना मुकद्मा राजा के यहाँ प्रस्तुत करता था यदि राजा उचित समझता था तो उस मुकदमें को अभिनव रूप में निर्णय करता था यही रूप पेशवाओं के राज्यकाल तक था।

---

1. सी. वी. जैन : हिस्ट्री आफ हिन्दू मेडिकल इंडिया पृ0 406

न्याय की कार्य–प्रणाली के सम्बन्ध में **अल–बे–रूनी** द्वारा ज्ञात होता है कि "वादी को न्यायालय में प्रार्थना–पत्र और कागजपत्र प्रस्तुत करना पड़ता है। लिखित प्रमाण के अभाव में साक्षी प्रस्तुत किये जाते हैं। कम से कम चार अपेक्षित होते हैं साक्षी के परिपृच्छ की अनुमति नहीं है।"[1] उस समय वकील नही थें अतः गवाहों से परिपृच्छ का न किया जाना स्वाभाविक ही है। साक्षी को न्यायालय में अपनी आख्या देने के पूर्व शपथ लेनी पड़ती थी, जो उसे सत्य से जोड़े रखती थी। राजतन्त्रीय शासन प्रणाली में न्याय के साथ–साथ दण्ड विधान भी कम महत्वपूर्ण नहीं था। दीवानी और फौजदारी के मुकदमें में हारने वाले व्यक्ति को अर्थ दण्ड लगाया जाता था। घृणित अपराधों के लिए कारावास, अंग विच्छेद और प्राण दण्ड तक प्रदान किया जाता था। अल–वे–रूनी के कथनानुसार–'ब्राम्हण और क्षत्रिय हत्या के लिए दण्डित नहीं होते थे– उनकी सम्पत्ति जब्त करके उन्हें राज्य से निष्कासित कर दिया जाता था। चोरी करने वाले ब्राह्मण को नेत्र–हीन कर दिया जाता था और उसका बायां हाथ तथा दायां पैर काट लिया जाता था। इसी अपराध के लिए क्षत्रिय को नेत्रहीन नहीं किया जाता था।'[2] इस प्रकार चन्देल शासकों ने अपने गम्भीर प्रयत्न और कठोर दण्ड विधान द्वारा साम्राज्य के उच्छृखल और अवांछनीय व्यक्तियों का उन्मूलन कर शांतिपूर्व साम्राज्य स्थापित किया था।

**(स) सामाजिक दशा :**

चन्देल युग में स्मृतिजन्य स्मार्त पूजा का प्रचार था। श्रोत सूत्र में वर्णित यज्ञ अप्रचलित हो रहे थे और गृह्यसूत्रों में वर्णित यज्ञों का प्रचार हो रहा था। उस युग में देवी–देवताओं की पूजा का अधिक प्रचार था। अनेक मन्दिरों का निर्माण उस युग में हुआ जिनसे लोगों के धार्मिक जीवन में एक नयी स्फूर्ति आयी। वैष्णव एवं शैव उस समय के प्रमुख धर्म थे।

---

1. अल–बे–रूनी : किताब–उत–हिन्द
2. अल–बे–रूनी : किताब–उत–हिन्द

**वैष्णवधर्म :**

यद्यपि वैष्णवों में पंचदेवो की पूजा विधान था फिर भी विष्णु तथा उसके अवतारों को वे अधिक महत्व देते थे। हरिवंध तथा विष्णु पुराण की रचना उसी युग में हुई और पूजा के लिए अनेक विष्णु मन्दिरों का निर्माण हुआ। **यशोवर्मन** ने खजुराहों में प्रसिद्ध **वैकुण्ड मन्दिर** का निर्माण करवाया। परमर्दिदेव के मंत्री **सलक्षण** ने भी **विष्णु** मन्दिर बनवाया। मदनवर्मन के मंत्री **गदाधर** ने **देदू** नामक स्थान पर एक **विष्णु मन्दिर** तथा एक तालाब बनवाया। इसके अतिरिक्त खजुराहों में **जगदम्बी मन्दिर**, चुतुर्भुज मन्दिर, वामन, तथा वाराह मन्दिर बड़े प्रसिद्ध है।[1]

**शैवधर्म :**

आगमों में शिव का अनादि निर्विकार तथा सर्वज्ञ आदि के रूप में वर्णन है। उनमें शिव को पशुपति तथा मनुष्य मात्र को पशु कहा गया है। पशुपाश के आबद्ध है। यह पाश अन्व, कर्म तथा माया के विविध रूप का हैं, जो भगवान् शिव के अनुग्रह से कट सकता है और जीव मुक्त हो सकता हैं। **कर्म** तथा **शिवपुराण** में शिव महिमा के अतिरिक्त उनमें शैव संस्कार, सदाचार तथा शैव मंदिरों के निर्माण का विधान है। **धंगदेव** ने **प्रमथदेव** नामक शिवमन्दिर का निर्माण किया था। ग्रहपति वंशीय **कोकल्ल** ने भी **वैद्यनाथ मन्दिर** बनबाया था। इनके अतिरिक्त खजुराहों तथा अन्य स्थानों के शैव मन्दिरों के **कन्दरिया** महादेव, **विश्वनाथ, मृत्युंजय** तथा **नीलकण्ठ** मन्दिर उल्लेखनीय है।

**ब्राह्म पूजा :**

पंचदेवों की पूजा के पर्व ब्रह्मा की पूजा का विधान था। खजुराहों का ब्रह्मा मन्दिर अति प्राचीन है। राजकुमार देवलब्धि ने दुबई नामक स्थान में ब्रह्मा के एक मन्दिर का निर्माण किया था।[1]

---

1. आर्क्योलोजिकल सर्वे टिव्यु भाग 7, पृ0 421
2. आर. जी. भंडारकर : वैष्णविज्म एण्ड शैविज्म पृ0 177–79

इन त्रिदेवों की पूज के अतिरिक्त गणेश, सूर्य तथा शक्ति की पूजा होती थी। विकमाब्द 1337 अथवा सन् 1280 ई0 मे वीरवर्मन के मंत्री गणपति ने विनायक अथवा गणेश की मूर्ति स्थापित की थी। खजुराहों के छत्र को पत्र नामक सूर्यमन्दिर से तत्कालीन सूर्यपूजा के प्रचार का ज्ञान होता है। पार्वती की पूजा उसके विभिन्न रूपों–दुर्गा, काली, कपालिनी आदि के रूपों में होती थी। खजुराहों तथा अन्य स्थानों में उनके मन्दिर भी पाये जाते है। विष्णु तथा ब्रह्मा की शक्तियों को भी पूजा होती थी।

अनेक जैन मन्दिरों तथा उनकी मूर्तिकला से ज्ञात होता है कि चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड में जैन धर्म का बड़ा प्रचार था। खजुराहों, दौनी, दुबई, चांदपुर तथा कुण्डलपुर आदि स्थानों में अनेक जैन मंदिरों से भी इसकी पुष्टि होती है।[1]

**(स) सामाजिक व्यवस्था :**

हिन्दू समाज की जाति व्यवस्था स्वयं अपनी ही देन है। अनेक विदेशी यात्रियों के लिए यह पहेली बनी रही। इतिहासकारों तथा धर्मशास्त्रकारों ने भी इसकी बड़ी चर्चा की हैं। इब्तकुर्दहा, अलइद्रीस तथा अन्य लोगों ने भिन्न भिन्न प्रकार से जातियों की गणना की है। हिन्दू समाज की विविधता के कारण अनेक उपजातियों का भी प्रादुर्भाव हुआ; किन्तु सभी जातियां तथा उप–जातियां चार मुख्य जातियों की ही अंग हैं, जो हिन्दू समाज की पोषक है।

**ब्राह्मण :**

ब्राह्मण हिन्दू समाज में सर्वोपरि थे। उनके उच्चादर्शो तथा उनकी विद्वत्ता के कारण उनकी पूजा होती थी। अनेक शिलालेखों में यह उल्लेख है कि उनका जीवन पवित्र तथा सादा था, वे यज्ञाग्नि प्रज्जवलित रखते थे। किन्तु सम्पूर्ण ब्राह्मणवर्ग विद्वान् तथा धर्मात्मा न था, और न ब्राह्मणोचित छहो धर्मो का पालन ही करता था। अनेक ब्राह्मण अपने उच्चादर्शो

---

1. डा. अयोध्या प्रसाद पाण्डेय : बुन्देलखण्ड का चन्देलकालीन इतिहास पृ0 239

से पतित हो रहे थे और दिन–पर–दिन अधिकाधिक सांसारिक होते जा रहे थे। विद्वान् तथा सदाचारी ब्राह्मण, जो धर्म की अधिक परवाह न करते थे, वे राज्य में शासकीय पदों पर नियुक्त किये जाते थे। जो लोग विद्यार्थी में पारंगत नहीं हो पाते थे; वे कृषि, व्यापार तथा सैनिक सेवा का कार्य करते थे। ऐसे भी उदाहरण हैं कि ब्राह्मण ताम्बुलिक जैसा कार्य भी करते थे। उस युग में ब्राह्मण अपने गोत्र तथा शाखा के नाम से विख्यात थे।[1] कुछ लोग अपने स्थान के नाम से भी प्रसिद्ध थे।

**क्षत्रिय :**

राजा तथा राजवंश के लोगों का समाज में सर्वोच्च स्थान था; किन्तु साधारण क्षत्रिय को वह अधिकार न प्राप्त था। उस युग में क्षत्रियों के गोत्रों की नहीं, बल्कि कुल की महत्ता थी। सैनिक सेवा ही क्षत्रियों की एक मात्र वृत्ति न थी। उन्होंने कृषि तथा व्यापार आदि को भी अपनाया। संस्कृत के अध्ययन तथा पौराणित यज्ञ करने का उन्हें अधिकार था।

**वैश्य :**

क्षत्रियों के बाद वैश्यों का उल्लेख आता है। समाज में उनका अधिक सम्मान न था। उन्हें वेदाध्यान का अधिकार न था। उनकी आर्थिक दशा अच्छी थी और वे मुख्यतः व्यापार ही करते थे।

**शूद्र :**

समाज में उनका स्थान बड़ी ही निम्नकोटि का था। कृषि तथा अन्य वर्णो की सेवा ही उनका मुख्य कार्य था। वेदाध्ययन का उन्हें निषेध था।[2] उन्हें पौराणिक यज्ञों के अनुष्ठान का भी अधिकार न था, किन्तु धनिक शूद्र ब्राम्हणों के माध्यम से पौराणिक यज्ञ कर सकते थे।

---

1. केशव चन्द्र मिश्र : चन्देल और उनका राजज्वकाल
2. शुक्रनीति सार

अन्य :

मेद तथा चाण्डाल बड़े ही पतित समझे जाते थे। वे समाज की निम्नकोटि की सेवा करते थे। इनके अतिरिक्त और भी जातियां तथा उपजातियां का आविर्भाव हो रहा था। रूपकार, पीतलहार, अयसकार आदि जातियां उसी युग से बनीं। कायस्थ वर्ग की उन दिनों बड़ी उन्नति थी। अनेक कायस्थ राजमंत्री तथा प्रसद्धि सेनानी हुए।

आज की भांति विवाह एक पवित्र संस्कार माना जाता था। उस समय सवर्ण विवाह की प्रथा थी। पर अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाह भी होते थे। अन्तर्जातीय भोज का दिन तथा उच्च क्षत्रिय शराब नहीं पीते थे। ब्राम्हण, गाय तथा भैंस के अतिरिक्त अन्य पशुओं को दूध न पीते थे। लहसुन, प्याज आदि भी वे सेवन न करते थे।

तत्कालीन समाज में स्त्रियों का आदर था। बालविवाह की प्रथा चल निकली थी, किन्तु बड़ी आयु में भी विवाह होता था, जैसा कि पृथ्वीराज संयुक्ता के विवाह से प्रतीत होता है। उस युग में सती प्रथा का अधिकार प्रचार न था।[1]

= = = =0= = = =

1. डा. अयोध्या प्रसाद पाण्डेय : चन्देल कालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास पृ0 241

# अध्याय—2

# बुन्देलखण्ड में बुन्देला शासन एवं राजनीति

## (1700—1800 ई.)

(i) बुन्देलों की उत्पत्ति एवं प्रारम्भिक बुन्देली शासक

(ii) वीर सिंह देव का शासन एवं मुगलों से युद्ध

(iii) चंपतराय का शासन

(iv) बुन्देली राज्य के संस्थापक छत्रसाल एवं तत्कालीन भारतीय राजनीति

(v) बुन्देली शासन मं सभ्यता व संस्कृति

(vi) बुन्देलों व मराठों से संबंध

वर्तमान बुन्देलखण्ड उन बुन्देले राजाओं के नाम पर ही है, जिन लोगों ने इस धरती पर सैकड़ों वर्ष शासन किया और आज भी उनके वंशज सम्मान की दृष्टि से देखे जाते है। इससे पहले यह देश जैज्जाकभुक्ति, जुझौति और दशार्ण आदि नामों से जाना जाता था। इस क्षेत्र में बुन्देलों का शासन लगभग विक्रम की 12 वी शताब्दी से है। सबसे पहले यह राज्य महौनी गढ़कुण्डार ओरछा में प्रारम्भ हुआ, तत्पश्चात् यह पूरे बुन्देलखण्ड में फैला। जिन बुन्देलों ने यहाँ पर सैकड़ों वर्ष राज्य किया। उनकी उत्पति के बारे में विभिन्न इतिहासकारों ने अपने विभिन्न मत प्रस्तुत किये है।

## बुन्देलों की उत्पत्ति :

बुन्देलों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सबसे प्रसिद्व ग्रन्थ छत्रप्रकाश है, इसके रचयिता लाल कवि ने बुन्देलों के सम्बन्ध में विस्तार से प्रकाया डाला है। कुछ शिलालेखों में भी इसका वर्णन आया है। लाल कवि के अनुसार बुन्देलों की उत्पत्ति रामचन्द्र जी के पुत्र लव से मानते है। यथा–

रामचन्द्र के पुत्र सुहाये, कुश लव भए समत ए गाये।

वंश कुल कलश भये छवि छात्र, अवधपुरी नृप घने गिनाए।[1]

बुन्देलों की वंशावली देखने से पता चलता है, कि ये सूर्यवंशी थे। बाद में इसी वंश से काशी के राज्य का श्री गणेश हुआ। इसी वंश में गहरदेव नाम के राजा हुए है जिनसे यह वंश चलता है। बुन्देले ठाकुर गहरवारों की ही एक भााखा है, जिन्होने 12 शताब्दी के बाद बुन्देलखण्ड क्षेत्र पर अपना राज्य जमाया।

कृष्ण कवि के मतानुसार यह वंश हरिब्रहम्न के पुत्र महिपाल से चलता है। इसके पश्चात कुछ पीढ़ियों उपरान्त इसी वंश में विहंगराज या वीतिरात नाम के राजा होते है। ओरछा

---

1. लाल कवि : छत्रप्रकाश, अध्याय–1

के इतिहास के अनुसार वीतिराज से लेकर सन् 674 के बाद लगभग 10 राजा काशी के गद्दी पर बैठते है। इसी वंश में कर्णपाल नाम के राजा होते है। जिनके तीन पुत्र वीर, हेमकरण और अरिवर्मा होते है। वीतराज से ले करके करणपाल तक का समय सन् 674 से लेकर सन् 1048 के मध्य का है।[1]

आगे चलकर इसी वंश में गहरदेव अथवा यशो विग्रह चन्द्र नाहुचन्द्र अथवा चन्द्रदेव राजा हुए यह लोग कन्नौज के अधिपति रहे। इनका वंश महीचन्द्र गोपचन्द्र, गोविन्द चन्द्र आदि राजाओं तक चला।

इसी प्रकार बदायूँ के राजाओं का वंश एव कन्नौज के गहरवारों का वंश भी इन्ही नरेशों से चला। इस सम्बन्ध में ताम्र पत्र और शिलालेख भी प्राप्त हुये है।

मि0 स्मिथ के अनुसार अयोध्या और काशी का राज्य समाप्त होने पर यह लोग कन्नौज और दिल्ली के आस–पास तमाम इलाकों पर फैल गये।[2] बाबू बृज रामदास मानते है कन्नौज साम्राज्य बनने पर काशी राज्य उसके पूर्वी भाग में शामिल हो गया था।[3]

बुन्देला शब्द के सन्दर्भ में कहा जाता है कि वीरभद्र गहरवार के पुत्र पंचमदेव ने विंध्यवासिनी देवी की तपस्या करते समय अपने सिर की बलि देने के लिए उसमें तलवार से वार किया उससे जो रक्त की बूंद जमीन पर गिरी उसी के कारण देवी के आर्शीवाद से बुन्देला पद धारी **पंचम देव** व उनके वंशज विख्यात हुए।[4] बहुत से विद्वानों ने बुन्द और पृथ्वी शब्द को मिश्रित कर बुन्देला शब्द का निर्माण किया है।[5] मुंशी श्यामलाल भी रक्त की बूंद से ही बुन्देलों की उत्पत्ति मानते हैं।[6] परन्तु ओरछा गजेटियर के अनुसार विन्धेला शब्द से बुन्देला शब्द बना होगा। इस सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि हरदेव नामक गहरवार खैरागढ़ से एक बांदी लाकर ओरछा के समीप बस गया उसी के पुत्र बांदेला अथवा बुन्देला

---

1. कृष्ण कवि : बुन्देलखण्ड भास्कर पृ0 57
2. मि0 स्मिथ : फरीदाबाद गजेटियर
3. बाबू बृजरामदास : बुन्देलों के कीर्ति स्तम्भ पृ0 415
4. राधाकृष्ण बुन्देली सत्यभामा बुन्देल : बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन पृ0 73
5. लाल कवि : छत्र प्रकाश पृ0 8
6. मुंशी श्यामलाल : तवरीखे बुन्देलखण्ड

कहलाए, यह शब्द फारसी के बांदी शब्द से बना है। सर टाड मानते है कि जयसंघ गहरवार ने विन्ध्यवासिनी देवी के समाने तप करके अपने वंशजों के लिए बुन्देला शब्द की पदवी छोड़ दी यह काशी के गहरवार राजा से संबंधित था। डा0 वीसेन्ट स्मिथ के अनुसार शायद बुन्देला गढ़ कुण्डार के खंगार राजा की कन्या एवं एक गहरवार रातपूत की संतान है।

विभिन्न मतो का अध्ययन करने पश्चात् यही निष्कर्ष निकलता है, कि वीरभद्र के पुत्र पंचमदेव के समय 1256 ईस्वी के पश्चात उसकी संतान अपने को बुन्देला कहने लगी।

बुन्देले क्षत्रियों का सीधा संबंध सूर्यवंशी के भगवान रामचन्द्र के पुत्र लव से है। उसी वंश में कुछ पीढ़ी उपरात कनकसेन और गगनसेन नामक राजा हुये। कहा जाता है कि कनकसेन ने वि0 सं0 201 में गुजरात में लक्ष्मीपुरा बसाया और वे वहीं रहने लगे। किन्तु गगनसेन वि0 सं0 239 में पूर्व की ओर चले आए फिर इसी वंश में कीर्ति अथवा कतराज पैदा हुये। इसी वंश के गंगा ऋषि ने गया जी में एक मन्दिर बनवाया और प्रदुम्न ऋषि ने प्रयागराज में अक्षयवट का वृक्ष लगवाया था। इसी वंश के इन्द्रधुम्न ने जगन्नाथ पुरी में जगन्नाथ मन्दिर और इन्द्र दमन नामक तालाब खुदवाया था। कर्त्तराज के छह पीढ़ी पहले अनिरूद्व ने काशी में अपना राज्य स्थापित किया। उनके वशज शनि राजपूत राजाओ के आधीन राज करते थे कहा जाता है कर्त्तराज संवत् 731 में काशी गया। वहां पहुँचते ही इसने देवदास नामक शनि राजपूत राजा को गद्दी से उतारने का प्रयत्न किया उसके पश्चात् वहाँ के राजा माध की कन्या बरा से भाादी की। उस समय उसके राज्य के ग्रह दशा ठीक नहीं थी। उसने पंडितों की सलाह से अशुभ ग्रहों की भाँाति करवाई। इसी कारण वंश के लोग गहरवार कहलाये। संवत् 731 से लेकर संवत् 1105 तक इस वंश में 20 राजा हुए इसके पहले राजा का नाम कर्णपाल था। इनके मात्र नाम मिलते है। इसके राज्य काल की घटनाओ का पता नहीं लगता।

कर्णपाल के तीन पुत्र हुए उनके नाम वीर, हेमकयी और अरिवर्मा थे। गोरेलाल तिवारी ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में इसे सन्देह जनक बतलाते है।[1]

जिस समय बुन्देले राजाओं का अभ्युदय हो रहा था—उस समय चंदेलों का पतन प्रारम्भ हो गया था। चंदेल राज्य के परमार्दिदेव के समय गढ़कुण्डार का किला शिवा नाम के एक परमार क्षत्री के पास था। वह यहाँ का किलेदार और सेना का अधिनायक था। इसके आधीन खूब सिंह नाम का खंगार था वह चंदेलो से स्वतंत्र होना चाहता था। जब वि0 सं0 1239 में पृथ्वी राज चौहान ने परमार्द्रिदेव पर आक्रमण किया और परमार्दिदेव हार गया तो वह स्वतंत्र हो गया, क्योकि इस लड़ाई में शिवा भी मारा गया था। इसी समय पूर्वी और पश्चिमी भाग में गौड़ लोग भी स्वतन्त्र हो गये थे जब पृथ्वीराज चौहान संवत 1249 में शाहबुद्दीन मुहम्मद गोरी से हारा और कैद कर लिया गया तब उसके सरदार लोग जो धसान नदी के पश्चिमी भाग में सूबेदार थे स्वतंत्र हो गये। किन्तु कुतुबद्दीन ऐबक की चढ़ाई के पश्चात् ये सब उसके आधीन हो गये उसने जगम्मनपुर में एक अफगान सूबेदार नियुक्त किया। समय बुन्देलों ने भी अपने राज्य स्थापित करने में लग गये झाँसी के आस पास खगारों का राज्य बहुत दिनो तक बना रहा। मुसलमानों के आने के बाद भी खंगार लोग यहां बहुत दिनों तक राज्य करने रहे बुन्देलों को अपना राज्य स्थापित करने के लिए खंगारों से लड़ाई लड़नी पड़ी इनसे लड़ने वाले प्रथम बुन्देला नाम सोहनपाल है।[2]

बुन्देलों का संबन्ध काशी के गहरवार राजघराने से था। पूर्व में इनका राज्य बुन्देलखण्ड की पश्चिमी सीमा तक फैला हुआ था। परन्तु किसी कारणवश यह उनके हाथ से निकल गया था। जिस भाग पर गहरवारों का राज्य था उसे गहोरा कहते थे। यह गहोरा बाँदा जनपद में रैपुरा के पास था। बाद में इसके अधिकांश भाग पर चेदि राजाओं का अधिकार हो गया। अतः प्राचीन गहरवार वंश से ही बुन्देलों की उत्पति मानी जा सकती है।

---

1. गोरेलाल तिवारी : बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास
2. सी. वी. वैद्य : हिस्ट्री आफ हिन्दू मेडिकल इंडिया

<u>प्रारम्भिक बुन्देली शासन</u>

हेमकरण करणपाल का पुत्र था साथ ही साथ इसके दो भाई वीर वर्मा और अरिवर्मा नाम के थे। हेमकरण इनसे सबसे छोटा था। इसके पिता इसे बहुत प्यार करते थे। क्योकि यह बहुत वुद्धिमान था इसीलिए इसके पिता ने इसे राज गद्दी प्रदान की और इसके पुत्रों अन्य जागीरें प्रदान की पिता के मरते ही इसके दोनों भाईयों वीर वर्मा और अविवर्मा ने इसका राज्य छीन लिया इससे उदास होकर इसने काशी के शनि राजा के पुरोहित पं0 गजाध् ार की सम्मति से विध्यवासिनी देवी की आराधना की और बैसाख सुदी 14 संवत् 1105 में देवी से वरदान प्राप्त किया। जब इसका भाईयों से युद्ध हुआ तो यह पुनः हार गया। दुबारा इसे फिर देवी से वरदान प्राप्त हुआ जिसमें देवी ने उसे विजयी होने का आर्शीवाद दिया।[1]

देश की विषम परिस्थितियों से हेमकरण ने लाभ उठाया इस प्रकार उसने अपना राज्य स्थापित किया थोड़ी बहुत सेना एकत्रित करके उसने अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया। इसने 16 वर्ष तक राज्य किया और अन्त में वि0 सं0 1128 में परलोक सिधारा। उसके पुत्र का नाम वीर भद्र था।

वीरभद्र भी अपने पिता के समान उद्यमी और पराक्रमी था, उसने पूरे बुन्देलखण्ड से मुगलों को निकालने का निश्चय किया था। इसका सबसे पहला युद्ध भदौरिया राजपूतों से हुआ उनके इसने अन्टेर छीन लिया इसके बाद इसका युद्ध जगम्मनपुर के अफगान सरदार तातार खां के साथ हुआ इस युद्ध में तातॉर खां उसके सरदारों की पराजय हुई इस विजय में उसे तातार खाँ के अधिकार का सारा प्रदेश और कालपी का इलाका मिल गया। इस समय तातार खाँ के अधीन छोटे बड़े 72 सरदार थे।[2]

इसने बनारस के मान सिंह घाट का उद्धार कराया था वर्तमान समय में इस घाट का

---

1. राधाकृष्ण बुंदेली एवं सत्यभाभा बुन्देली : बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन पृ0 77
2. मोतीलाल अशांत : बुन्देलखण्ड दर्शन

नाम मणि कर्णिका है। यह बड़ा ही दानी था। इसकी मृत्यु वि० सं० 1169 में हुई इसके पश्चात् कैनर शाह राजा हुआ। इसने 18 वर्ष तक राज्य किया।

कन्नर शाह के बाद उसका भाई सौनक देव वि० सं० 1187 में राजा हुआ इसका विवाह पृथ्वीपुर के मजबूत सिंह राठौर की कन्या से हुआ। परन्तु इसके कोई सन्तान नहीं हुई। यह 22 वर्ष राज्य कर स्वर्गवासी हुआ।

निःसन्तान होने के कारण सौनक देव का भाई वि० सं०1209 में गद्दी पर बैठा। इसके भी कोई सन्तान नहीं हुई। इसने अपनी मृत्यु के पूर्व अपने भतीजे वीर सिंह के पुत्र मोहन पति को उत्तराधिकारी बनाया।

नानक देव ने वि० सं० 1219 में मोहनपति को नियमानुसार गोद लिया और उसे उत्तराधिकारी बनाया। दुर्भाग्यवश यह भी निःसन्तान रहा। इससे यह उदास हो गया और अपने भाई अभयभूपति को गद्दी देकर तप करने चला गया।

वि० सं० 1254 में अभयभूपति राजा हुआ। इसने 18 वर्ष तक राज्य किया। इसके राज्य में कोई बिशेष उन्नति नहीं हुई। अपने पुत्र अजुर्नपाल को राज्य देकर काशीवास के लिए चला गया। इनका राज्य भी राजाओं की भांति महोनी में ही रहा। अर्जुनपाल सन् 1288 ई. में स्वर्गवासी हुये। उसके बाद सोहनपाल राजा बना।[1]

**सोहनपाल का शासन :**

यह बड़ा साहसी और दृढ़ प्रतिज्ञ था। इसने यह निश्चय किया कि वह एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करेगा। धीरे–धीरे उसने राजपूतों को अपनी और मिलाना प्रारम्भ कर दिया। राजपूत भी ह्रदय से इसके साथ हो गये। इसके पास राजपूतों की एक बड़ी सेना तैयार हो गई। इसने हुरमत सिंह से सहायता माँगी। उसने सहायता देने से इन्कार कर दिया

1. राधाकृष्ण् बुन्देली एवं सत्यभाभा बुन्देली : बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन पृ० 79

इस पर सोहनपाल ने उससे बदला लेने के लिये बेतवा किनारे डेरा डाल दिया। यहां से इसने अपने पुत्र सहजेन्द्र को और अपने पुरोहित की धीर नामक प्रधान के साथ हुरमत सिंह के पास दुबारा भेजा। इस बार उसने अपने साहुकार विष्णु पाण्डेय के कहने पर सहायता देना स्वीकार कर लिया परन्तु उसने अपनी कन्या का विवाह राजकुमार के साथ करने का वचन लेना चाहा। सोहनपाल असससे दुःखित हुआ और उसने वि0 सं0 1314 में गढ़कुडार में चढ़ाई कर दी इस युद्ध में सोहनपाल का साथ केवल परमार और घघेरों ने दिया। इसके अतिरिक्त चौहान कछवाहों शिलिगों और तोमरों ने उसको कोई सहायता नहीं दी। गढ़कुण्डार में सोहनपाल की जीत हुई और हुरमत सिंह हार गया। जिन क्षत्रियों ने सोहनपाल की युद्ध में मदद नही की थी सोहनपाल ने उनके साथ वैवाहिक संबंध करा दिये।इन वैवाहिक संबधों के कारण परमारों और धंधेरों से इनकी मित्रता हो गई थी। गढ़कुण्डार को इसने अपनी राजधानी बनाया। कुछ समय बाद इसने जैतपुर को जीत लिया।इसने केवल 8 वर्ष राज्य किया वि0 सं0 1316 में यह स्वर्गवासी हो गया।

## वीर सिंह देव एवं मुगलों से संबंध :

वीर सिंह देव मधुकर भाह के पुत्र थे। इन्हे बरोरी की जागीर मिली थी और का राज्य रामशाह को मिला था। रामशाह शक्तिहीन होने के कारण अपने अधनस्थ जागीरदारों को नियंत्रण में न रख सका। इससे राज्य की स्थिति और अनुशासन बिगड़ गया वीर सिंह देव को बरोनी की जागीर मिली थी इालिए उनका वहाँ पहुचना अनिवार्य था। वहां पर पुराने लोग उदण्ड और अनुशासनहीन थे। वीर सिंह देव की इनसे नहीं पटी उन्होने उनको वहाँ से मार भगाया। बाद में इन्होने अपनी सेना पवाया भेजी और उसे अपने आधीन कर लिया। थोड़े दिनों पश्चात् तोमरगढ़ भी इनके आधीन हो गया। धीरे–धीरे इनका प्रभाव चारों तरफ बढ़ने लगा

लोग इनसे भयभीत रहने लगे । नरवर (ननपुरा)और कोलरस की जनता भी इनसे भय खाने लगी। इसके बाद इन्होने मेना और नटों को हराया कुछ दिनो के पश्चात् बरेछा करेहटा और हथनोरा पर आक्रमण किया। यहाँ के शासक बाघजंग जाँगड़ा को रणक्षेत्र में मार डाला। इनकी वीरता से आतंकित होकर भांड़ेर का मुगल सरदार हसन समय खां भाग गया इस प्रकार भाँडेर भी उनके हाथ में लग गया। कुछ समय पश्चात् इन्होने ईची खां से एरच भी छीन लिया इस प्रकार ग्वालियर क्षेत्र का अधिकांश भाग वीर सिंह के कब्जे में आ गया।

वीर सिंह की वीरता देखकर अकबर बादशाह ने ओरछा के राजा रामशाह और ग्वालियर के राजा आसकरन के साथ मुगल सेना भेजकर उस पर आक्रमण कर दिया। यह सेना चाँदपुर में इकट्ठी हुई पर वह जगमन की शाही सेना के साथ मिल गयी। इसके अतिरिक्त हसन खां पठान हर धोर पवार और राजाराम पवार भी मुगल सेना के साथ थे। आसकरन ने मुगल सेनाके पूर्व में राजाराम पंवार हसन खां को रखा। उत्तर की और आसकरन और जगम्मगन रहे इस समय वीर सिंह के पास इतनी सेना नहीं थी कि वह मुगल सेना का मुकाबला कर पाते इसलिए उन्होने छापामार युद्ध पद्धति से इन्द्रजीत और प्रतापराव को तंग करना प्रारम्भ कर दिया। बाद में युद्ध हुआ जिसमें रामशाहर के पुरोहित मायाराम और उसके भाई मारे गये इस कारण से रामशाहर और आसमरन वापिस आ गये।

वि0 सं0 1656 में अकबर के पुत्र शाह मुराद का दक्षिण भारत में स्वर्गवास हो गया। इससे अबकर को महान दुःख हुआ। उसने दक्षिण भारत जाने की तैयारी की वह आगार से धौलपुर होता हुआ ग्वालियर आया। उसने यहाँ से राजाराम कछवाहा को महाराजा वीर सिंह के पास बरोनी भेजा महाराजा ने इसका अच्छा स्वागता किया और इसके सलाह भी ली। अकबर यहां से मांडव जाने के लिया नरवर चला आया। यहां पर उसकी मुलाकात

रामशाह बुन्देला से हुई और राजाराम कछ–वाहा भी वापिस आ गया। वि0 सं0 1657 में अब्दुल्ला खां ने रामशाह के पुत्र सग्राम भााह को बरोनी दे दी थी। वीर सिंह को देखकर बरोनी पर अधिकार करने का साहस वह न कर सका। उसने मौका हाथ से न जाने दिया। बरोनी पर आक्रमण करके उसने अकबर बाद भााह से मदद मांगी अकबर यही चाहता था उसने रामशाह के साथ राज सिंह को एक बड़ी सेना के साथ भेज दिया। इसी समय वीर सिंह की सहायता के लिए राव प्रताप स्वयं आये और रतन शाह के लड़के इन्द्रजीत ने सेना भेजा। राम सिंह चाहता था कि वीर सिंह सन्धि कर ले कितू वीर सिंह ने ऐसा नहीं किया। अन्त में भाई हरवंश, आनन्दी, पुरोहित देव पायक आदि के समझाने पर ईश्वर को साक्षी बनाकर सन्धि कर ली और उन्होने बरोनी छोड़ दी। जैसे ही इन्होने बरोनी छोड़ी राज सिंह ने अपने वचन के विपरीत बरोनी में आग लगवा दी वीर सिंह को यह बात बहुत बुरी लगी उनहोनें अपने कुछ चुने हुये सामन्तों बक्सराय प्रधान, केशवराय, चंपतराय, मुकुट गोड और बलवन्त यादब की सहायता से बरोनी में रातो रात आकमण कर दिया। इधर सेना ने वीर सिंह के आने की खबर राजा को दी। रामसिंह ने अपने लड़के के साथ मुकाबले के लिए बड़ी सेना भेजी और दामोदर को उसके साथ भेजा दोनों और से धमासान युद्ध हुआ।[1] महराज के चुने हुये सिपाहियों और सामन्तो ने राम सिंह की सेना की परास्त किया। यदि रामसिंह ग्वालियर न भाग जाता तो मारा जाता।

महाराजा वीर सिंह अकबर की सेना से लड़ते–लड़ते तंग आ गये। अकबर के तीन पुत्रों में मुराद की मृत्यु हो गई थी।सलीम को अकबर का प्रेम उपलब्ध नहीं था। अकबर के अन्य पुत्रों से सलीम भात्रता रखता वि0 सं0 1656 में वह भाग निकला और इसके अवध कड़ा और मानिकपुर के सूबे अपने अधिकार में कर लिये। इधर वीर सिंह ने यादव गोड़

1. मोतीलाल अशांत : बुन्देलखण्ड का इतिहास

सेनापति की सलाह से अकबर से भेट करने का निश्चय किया इसीलिये बे प्रयाग की और रवाना हुई। वीर सिंह का पहला मुकाम राहशादपुर में हुआ। दूसरे दिन यहां से रवाना होकर कई दिन बाद प्रयाग पहुॅचे। वे जितने बहादुर थे उतने धर्म प्रेमी भी थे। पहले उन्होने गंगा में स्नान किया फिर शहजादा सलीम से भेट की। शहजादे ने महाराज का उचित स्वागत सत्कार किया और उन्हे अपने पक्ष में मिला लिया। महाराज ने अपनी भावी उन्नति को देखते हुये अबुल फजल को मारने का वचन दे दिया राज विद्रोह करने पर सलीम का परास्त करने की इच्छा से अकबर ने वि0 सं0 1659 में अबुल फजल को दक्षिण से बुला लिया। इस समय वीर सिंह देव सैयद मुजफ्फर के साथ प्रयाग से बरोनी आ गये। यहां आने पर उन्हें यह मालुम हुआ कि अबुल फजल नरवर पहुॅच गया। अबुल फजल ने सिन्धु नदी को पार कर अंतारी के पास नाराईधो नामक गॉव में डेरा डाला उसी समय प्रातः कूच करते समय वीर सिंह जू देव ने इसे आ घेरा दोनों में घमासान युद्ध हुआ इसमें वीर सिंह जू देव की काफी सेना मारी गई। महाराज अबुल फजल का सिर काटकर बरोनी ले आये और यहॉ से चंपतराय के संरक्षण में उसका सिर सलीम के पास भेज दिया। इसे देखकर सलीम फूला न समाया उसनें वीर सिंह देव के तिलक के लिये चपतराय के साथ एक ब्राम्हण भेजा और साथ में एक रतन जटित तलवार। ध्वज, चंवर, डंका भेजा। यह राजतिलक बरोनी में हुआ।[1]

वि0 सं0 1659 में अकबर को जैसे ही यह खबर मिली कि वीर सिंह जू देव ने अबुलफजल का वध कर दिया है इससे अकबर को महान दुःख हुआ उसने दो दिन तक भोजन नहीं किया।

शाहजादा सलीम के आगरा चले जाने के बाद जिन स्थानों पर वीर सिंह देव के भागते रहने के कारण शाही झंडा फहराने लगा था वहाँ से शाही सेना वापिस चली गई वीर

---

1. राधाकृष्ण् बुन्देली एवं सत्यभाभा बुन्देली : बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन

सिंह जू देव ने बची सेना को भेड़ बकरी की तरह काट डाला और अपना राज्य स्थापित कर लिया। यहाँ पर पहले संग्राम शाह माडेर पर अपना अधिकार जमाया बाद में हरसिंह देव ने मसमेछ को आधीन करना चाहा। यहाँ पर खड़गराय से युद्ध हुआ। हरसिंह देव वीरता पूर्वक लड़ते हुये वीर गति को प्राप्त हुये। भाई की मृत्यु से वीर सिंह जू देव को बड़ा दुःख हुआ कुछ समय पश्चात वीरसिंह जू देव और संग्रामशाह से मित्रता हो गई। इन्होने वीर सिंह जू देव को माडेर दे दिया। इन्होने इसके बदले में गढ़ देने की प्रतिज्ञा की इसके बाद वीर सिंह जू देव इमलोटा चले गये। यहाँ पर इनका युद्ध खड़ग राय से हुआ। यहां सपरिवार मारा गया। कछपुरा लेकर उन्होनें संग्राम शाह को दे दिया खड़गराय का सिर काटकर शाहजादा सलीम के पास भेज दिया। इससे शाहजादा बहुत खुश हुआ। परन्तु अकबर को महान दुःख हुआ बाद में उसने रामदास कछवाहे को सलीम के पास भेजा परन्तु सलीम ने अकबर की सलाह नहीं मानी और वीर सिंह जू देव से मित्रता नहीं तोड़ी। इसके कारण अकबर और सलीम आगार छोड़कर प्रयाग चला गया। खड़गराय के मरने पर इसके छोटे भाई इन्द्रजीत ने बाद ाह से फरयाद की रामदास कछवाहे के समझाने पर बादशाह के कुछ भातों के साथ ओरछा देना मंजूर लिया परन्तु उसने ओरछा लेना स्वीकार नहीं किया वि0 सं0 1661 में सलीम की माता जोधा बाई का स्वर्गवास हो गया। शाहजादा सलीम को अपनी मां की मृत्यु का बहुत दुःख हुआ इसी दुःख में वह कई दिनो तक बाहर नहीं निकला अन्त में समझाने और वीर सिंह जू देव के आग्रह पर वह आगरा आ गया। यहाँ पर अकबर ने उसे बहुत कष्ट दिया इसलिये वह फिर यहां से भाग गया। खड़गराय की मृत्यु का उसे महान दुःख हुआ था। उसने वीर सिंह को पकड़ने के लिये अब्दुल्ला खाँ के सेनापतित्व में सेना भेजी, परन्तु वीर सिंह इस समय सलीम से मिलने के लिए प्रयाग गये थे। यहाँ से वापिस जाने के बाद संग्राम भााह के सहयोग से

उन्होने ओरछा पर अधिकार कर लिया। इस समय अब्दुल्ला खां अपनी सेना सहित खम्बरौली में आ गया था महाराज वीरसिंह देव इन्द्रजीत, संग्रार भााह, रावप्रताप, केशवदास आदि सामंतो के साथ युद्ध के लिए निकले। एक मील चलने पर दोनो सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ इस युद्ध में राज सिंह और अब्दुल्ला खां को प्राण बचाना मुशिकल हो गया। मुगल सेना हार गई और वीर सिंह जू देव की विजय हुई। इन्होने शाही सेना से शाही मरातब छीन लिया। यह देखकर राज सिंह ओरछा छोड़कर कठोली चला गया। युद्ध की हार से अकबर दुःखी हुआ उसने वीर सिंह के विरूद्ध फिर सेना भेजने का निश्चय किया इस समय इसके पुत्र दानियाल की भी मृत्यु हो गई। अकबर स्वतः वि0 सं0 1662 में स्वर्गवासी हो गया उसके पश्चात सलीम जहाँगीर के नाम से गद्दी पर बैठा।[1]

वि0 सं0 1680 में शाहजादा खुसरो और जहांगीर में वैमनस्य हो गया इसलिए खुसरो आगरा से भाग गया। बादशाह ने उसका पीछा किया परन्तु वह न मिल सका। इसी समय महाराज वीर सिंह जूदेव ने इन्द्रजीत के साथ अपने पुत्र को राजा रामशाह के पास मिलने के लिए भेजा इस प्रकार वीर सिंह और रामशाह में मित्रता हो गई। बाद में राजा रामशाह ने अपने नाती संग्रामशाह के पुत्र भारतशाह को बरेठी भेजा इस प्रकार सन्धि का वातावरण बना और रामशाह के मंत्रियों ने भारतशाह को वीर सिंह जूदेव के पास रहने दिया। जब इन्द्रजीत वापिस आ गया तो रामशाह ओरछा चला गया यहां उसने अंगद, प्रेमा और केशवदास को स्थाई संधि के लिये भेजा। परन्तु अंगद ने संधि के स्थान पर विग्रह करा दिया। इन दोनो ने राजा और रानी कल्याण देवी को गुमराह कर दिया जिससे उन्होने भारतशाह को बरेठी बुला लिया यही से बुन्देलों का पतन प्रारम्भ हो गया।

---

1. मोतीलाल अंशात : बुन्देलखण्ड दर्शन

भारतशाह के चले जाने पर वीर सिहं जूदेव वि0 सं0 1663 में बरेठी से वीरगढ़ चले गये। इस प्रकार उन्होने बबीना पर अधिकार कर लिया।[1] भारतशाह के वापिस आ जाने पर रामशाह भी युद्ध की तैयारी करने लगा। केशवदास ने इन्हे काफी समझाया परन्तु ये नही माने इसी कारण वीर सिंह देव नेओरछा पर आक्रमण करने की तैयारी आरम्भ कर दी। इसी समय जहांगीर बादशाह ने कालपी के सूबेदार अब्दुल्ला खां को ओरछा पर आक्रमण करने के लिए भेज दिया। मुगल सेना का मुकाबला करने के लिए रामशाह के दोनो पुत्रों इन्द्रजीत और राव भूपाल को मुगलों से युद्ध करने के लिये भेज दिया दोनो सेनाओ के मध्य घोर युद्ध हुआ मुगल सेना परास्त होकर भागने वाली थी कि इसी समय वीर सिंह जूदेव वहाँ आ गये। इनके आते ही राव भूपाल शाँकित हो गये और इन्द्रजीत जो घायल हो गये थे मूर्छित हो गये। इससे इनके साथी इन्हें रणभूमि से उठा ले गये। वीरसिंह के साथ होने के कारण मुगल सेना दुगने उत्साह से लड़ने लगी और राव भूपाल के भी पैर उखड़ गये कुल का विनाश देखकर वीरसिंह जूदेव ने अपने सामंत सुन्दर प्रधान को रामशाह के पास संधि करने के लिये भेजा। रामशाह वीरसिंह जू देव से नहीं मिलें बल्कि सीधे अब्दुल्ला खां से मिले। अब्दुल्ला खाँ रामशाह को कैद करके दिल्ली की ओर चला गया। वीर सिंह को रामशाह के कैद होने का महान दु:ख हुआ। उन्होने ओरछा का प्रबन्ध भार हरि को दिया राव भूपाल को बीहर इन्द्रजीत को गढ़कुण्डार और प्रतापराव को बन्ध की जागीर देकर वे रामशाह को छुड़ाने के लिये आगरा चले गये। इनके जाते ही देव राय ने भारतशाह को साथ लेकर पठानी पर अधिकार कर लिया और बेतवा किनारे के कई गाँव जला डाले। जैसे ही वीर सिंह आगरा पहुँचे जहांगीर ने इन्हे मधुकर शाह का सारा राज्य दे दिया और रामशाह को चदेरी और वानपुर का राज्य देकर दोनो में मेल करा दिया। बाद में जब उन्हें ओरछा के आस पास की घटनाओं का समाचार मिला तो वे आगरा से वापिस आ गये। उनके आते ही यहाँ भाान्ति हो गई।

2. ठा0 लक्ष्मण सिंह गौर : ओरछा का इतिहास

वि0 सं0 1682 में इन्होने अपने पुत्र भगवन्तराय को महावत खां की कैद से जहांगीर को छुड़ाने के लिए भेजा यहाँ कुछ विलम्ब से पहुँच फिर भी बादशाह इनसे खुश हुआ। वीर सिंह देव ने अपने रियासत की आय अपनी वीरता से दो करोड़ रुपया वार्षिक कर ली थी। इसमें 81 परगने और 1 लाख 25 हजार ग्राम थे। इन्होने ओरछा का नवीनीकरण किया और उसका नाम जहांगीरपुर रखा।एक महल बनवाया उसका नाम भी जहांगीर महल रखा। यहां पर एक फूलबाग बनवाया गया तथा एक चर्तुभुज भगवान का मन्दिर बनवाया। इन्होने वीरपुर नामक ग्राम बसाया व तालास बनवाया। ये जितने वीर थे उतने ही दानी थे। इन्होने मथुरा में 81 मन सोने का तुलादान किया था। जिसकी तुला आज तक विश्रामघाट में सुरक्षित है। यह तुलादान वि0 सं0 1681 में किया गया।[1]

## चंपतराय का शासन

बुन्देलखण्ड के पन्ना राज्य के संस्थापक बुन्देलखण्ड केसरी छत्रसाल के जनक चंपतराय का जन्म चेत्र सुदी एकादशी रविवार को मध्यान्ह काल के समय पुष्पा नक्षत्र में संबत् 1640 वि0 में मोरन गांव में हुआ था।[2] मोरन गांव व मोर पहाड़ियां महेवा से लगभग 4 मील दक्षिण ओरछा राज्य के अन्तर्गत हैं। भागवत राय के जयेष्ठ पुत्र होने के नाते चंपतराय यहां की जागीर के मालिक हुये। चंपतराय के जन्म के समय ओरछा के राजा मंधुकरशाह थे। इन्हें युद्ध की शिक्षा अपने पूर्वजों के अनुकूल प्राप्त हुई थी। ये बचपन से ही निर्भीक थे। उन्होंने समस्त बुन्देलखण्ड का भ्रमण किया था। ये प्रारम्भ से ही आध्यात्मिक प्रवृत्ति के थे। हिन्दू धर्म पर इनकी विशेष आस्था थी। इन्होंने भारतवर्ष में हिन्दू राज्य की कल्पना की थी। जब शाहजहां बुन्देलों से नहीं जीत सका तो उसने संधि की। चंपतराय को कोंच की जागरी प्रदान की गई जो महेबा की जागीर से काफी बड़ी थी।[3] दारा के प्रभाव से पहाड़ सिंह ने इसे

1. राधाकृष्ण् बुन्देली एवं सत्यभाभा बुन्देली : बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन
2. कुँ0 कन्हैया जू : बुन्देलखण्ड केसरी छत्रसाल
3. राधाकृष्ण बुन्देली एवं सत्यभाभा बुन्देली : बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन पृ0 93

चंपतराय से वापिस लेना चाहा। पहाड़ सिंह ने दारा को यह प्रलोभन दिया कि मैं इस जागीर से तीन लाख रूपया मुगल दरबार को दूंगा और जागीर की व्यवस्था चंपतराय से अच्छी करूंगा। दारा के कहने पर यह जागीर पहाड़ सिंह को दे दी गई। उसने दारा के कृत्य को निन्दा मुगल दरबार में की। बुन्देलों में चंपतराय के बराबर बहादुर कोई नहीं था। औरंगजेब जो दारा से वैमनस्य रखता था उसे एक अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। चंपतराय को भी दारा से बदला लेने का मौका मिल गया। शाहजहां की इच्छा थी कि वह दारा को ही उत्तराधिकारी बनायें। बहुत से मुगल सरदार भी दारा के पक्ष में थे। औरंगजेब इस समय दक्षिण का सूबेदार था। वह शासन से दारा का प्रभाव कम करना चाहता था। इसलिए उसने दारा के विरूद्ध चंपतराय से सहायता मांगी जिसे चंपतय ने देना स्वीकार कर लिया।

वि० सं० 1714 में शाहजहां के सभी पुत्रों को यह सूचना मिली कि बादशाह बीमार है। उसके पुत्र चाहते थे कि वह शीघ्र मर जाये इसलिए उन्होंने उत्तराधिकार के लिए युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया। चंपतराय ने दारा से बदला लेने के उद्देश्य से और बुन्देलखण्ड से मुसलमानों से मुक्त करने के उद्देश्य से औरंगजेब की सहायता करना स्वीकार कर लिया था। दारा के पास शाही सेना की कमी नहीं थी। इसने अपने पुत्र सुलेमान शिकोह माध्यम से शुजा को बंगाल से आने पर हराया औरंगजेब का सामना करने के लिये उसने धौलपुर के समीप चम्बल नदी का घाट रोक लिया औरंगजेब इस समय गुजरात में था इतिहासकारों के मतानुसार वह स्वार्थी और दगाबाज था। उसने अपने भाई मुराद से यह बहाना किया कि मैं तो फकीर बनने जा रहा हूं, तम्हीं बादशाह होंगे इस प्रकार उसने उसे अपनी ओर मिला लिया और उसने उज्जैन पर चढ़ाई कर दी। यहां का सूबेदार समय मुकुन्द सिंह हॉडा था वह इस युद्ध में हारा और मारा गया। औरंगजेब उज्जेन होकर नरवर आया। उसने चंपतराय को बुलाने

के लिये अब्दुल्ला खां को भेजा। चंपतराय अपनी प्रतिज्ञानुसार औरंगजेब की सहायता के लिये आ गया। चूंकि चम्बल का मुख्य घाट रोक लिया गया था इसलिये इनकी सेना ने दूसरे घाट से नदी पार की। आगरा के समीप वि सं0 1775 में समोरगढ़ में दारा और औरंगजैब का मुकाबला हुआ। इस समय दारा की सेना के सेनापति बूंदी नरेश छत्रसाल हाड़ा थे। ये बुद्धिमान और बहादुर थे। परन्तु चंपतराय के सामने उनकी एक न चली।[1] ये युद्ध में हार गये। औरंगजेब ने मुराद को शराब पिलाकर ग्वालियर के किले में कैद कर लिया और स्वतः बादशाह हो गया बाद में उसने अपने पिता शाहजहां तथा भाई दारा को भी कैद कर लिया। औरंगजेब को बादशाह बनाने में चंपतरा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। औरगंजेब ने चपंतराय को यमुना से ओरछा तक का प्रदेश दिया और उन्हें दिल्ली दरबार में उमराव समझा गया तथा 12 हजारी मनसबदारी पद दिया गया।[2]

यद्यपि दिल्ली दरबार में चंपतराय को पर्याप्त आदर मिला था फिर भी कई कारणों से चंपतराय औरंगजैब से न पटी। दारा की लड़ाई में चंपतराय ने बहादुर खां का एक शानदार घोड़ा पकड़ लिया था। औरगंजैब को यह बात बुरी लगी। इसके अतिरिक्त औरंगजैब ने चंपतराय को यह आज्ञा दी कि वह शुजा से लड़ने इलाहाबाद जाये क्योंकि शुजा एक बड़ी फौज लेकर इलाहाबाद में लड़ने आया था। चंपतराय वहां नहीं गये। औरंगजेब और शुजा का युद्ध भी समाप्त नहीं हुआ इसी अवसर का लाभ चम्पतराय स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने में लगे हुये थे।

औरंगजैब मजबूर होकर चंपतराय का सम्मान करता था। परन्तु वह हर बहाने से चंपतराय को दी हुर्द जागीर वापिस लेना चाहता था। चंपतराय भी यह बात अच्छी तरह जानते थे। कुछ समय बाद चंपतराय ने औरंगजेब को दी हुई सनदे वापिस कर दी और उसकी अधीनता में रहना अस्वीकार कर दिया।[3] वह स्वतंत्रता का नारा लेकर बुन्देलखण्ड में आयें

1. रीता अवस्थी : मध्यकालीन बुन्देलखण्ड
2. ज्ञान प्रकाश गुप्त : युगलकालीन बुन्देलखण्ड
3. अपर्णा मिश्र : बुन्देलखण्ड का मुगलों से संबंध

इनकी वीरता से सम्पूर्ण देश परिचित था। सैन्य संगठन करके उन्होंने अपनी वीरता से एक के बाद एक किले जीतना प्रारम्भ कर दिया। आरंगजेब यह जानता था कोई भी मुस्लिम सेनापति चंपतराय के आगे नहीं टिक सकता इसलिए औरंगजेब ने दतिया के राजा शुभकरण को दिल्ली का बादशाह की ओर से बुन्देलखण्ड का सूबेदार नियुक्त किया था और सेनापति भी बनाया था। शुभकरण बुन्देलखण्ड के प्रत्येक भाग से परिचित था। पहले भी लूटमार करता रहता था। चंपतराय और शुभकरण सेना से कई युद्ध हुए। परन्तु आक्रमण चंपतराय को हरा न सका अन्त में औरंगजेब एक बड़ी सेना लेकर बुन्देलखण्ड पर चढ़ आया और चंपतराय को घेरने का प्रयत्न करने लगा। धैर्य और साहस के साथ वे मुगलों की सेना से युद्ध करने के लिये तैयार गये। चंपतराय से मुकाबला करने के लिए औरंगजेब ने बुन्देलखण्ड में सैनिक भरती किये। शुभकरण  की सहायता से औरंगजेब को बुन्देलखण्ड के सभी मार्ग मालुम होते गये। चंपतराय के पास यद्यपि बड़ी सेना नहीं थी। फिर भी वह वीरता और धीरता से औरंगजेब का मुकाबला करता रहां। धीरे–धीरें चंपतराय की सेना में काफी कमी आती रही चंपतराय और पहाड़सिंह की शत्रुता ने भी चंपतराय को हानि पहुंचाई।[1] पहाड़सिंह की मृत्यु उपरांत उनकी पत्नी ने अपनी पति के शत्रु चंपतराय को हराने के लिए चंपतराय के मित्र सरदार सुजानराय को वेदपुर में धीरे से मरवा डाला। इस मृत्यु से चंपतराय को बहुत दुःख हुआ। चंपतराय के पुत्रों ने भी उन्हें काफी सहायता दी। फौज कम हो जाने के बाद वे सेहरा के जागीरदार इन्द्रमणि के पास गये। इन्द्रमणि चम्पतराय के पुराने मित्र थे वे घर पर नहीं थे फिर भी साहब सिंह धधेरे ने उनका स्वागत किया। इसके पश्चात् चम्पतराय ने छत्रसाल को थानसिंह के पास भेज दिया। ये छत्रसाल के बहनोई थे। इस अवसर पर छत्रसाल को बहन और बहनोई ने अपमानित किया। चम्पतराय ने सेहरा में रहना उचित न समझा और बीमारी की हालत में वे अपनी रानी लाल कुंवर को ले जाने के लिये तैयार हुये। साहब सिंह धंधेरे ने अपने दो सिपाही

1. गोरेलाल तिवारी : बुन्देलखण्ड का इतिहास

महाराज की रक्षा के लिये लगा दिये। सेहरा से 14 मील चलने के बाद सिपाहियों ने चम्पतराय के साथ विश्वासघात करना चाहा। वे उन्हें जान से खत्म करना चाहते थे महारानी लाल कुंअर और महाराज ने सिपाहियों से मरने की अपेक्षा आत्महत्या अधिक उत्तम समझा। दोनों ने अपने पेट में कटारे मार ली और स्वर्गवासी हो गये।[1]

## विशाल बुन्देली राज्य के संस्थापक छत्रसाल तत्कालीन भारतीय राजनीति

छत्रसाल के स्वर्गीय पिता चम्पतराय का समय और औरंगजेब से संघर्ष करते हुये बीता चम्पतराय को जो जागीर प्राप्त हुई थी उसकी आय केवल 350 रूपया वार्षिक थी। चंपतराय ने अपने पौरूष से धन और नाम कराया। चम्पराय का युद्ध शाहजहां के सरदार बाकी खां से हुआ था। उसनो चम्पतराय के 14 वर्षीय पुत्र शालिवाहन को घेरकर मार डाला था। इस सम्बन्ध में एक किवदन्ती हैं, कि इनकी माता ने स्वप्न देखा कि शालिवाहन कह रहा है, कि मैं तुम्हारे गर्भ में दुबारा आऊंगा मां के गर्भवती होने पर उसे यह विश्वास हुआ कि शालिवाहन उसके गर्भ में आया है। अन्य क्षत्राणियों की भांति भी चंपतराय की रानियां भी युद्धों में उनके साथ रहा करती थी जिस समय युद्ध हो रहा था चंपतराय की रानी ककर बनिए की पहाड़ी में गर्भावस्था में थी। अपनी पत्नी की इस स्थिति को देखकर चंपतराय वहां से चले गये। बुन्देलों की सेना ने इस पर आश्चर्य प्रगट किया। ठीक छः माह पश्चात् कटेरा नामक ग्राम से तीन कोस दूर मोर पहाड़ी के जंगल में बुन्देलखण्ड के सुप्रसिद्ध योद्धा छत्रसाला का जन्म हुआ। छत्रसाल का जन्म जयेष्ठ शुक्ल तीज शुक्रवार संबत् 1705 विक्रमी बिलंबी नामक संवत् सर में हुआ।

छत्रसाल के जन्म के समय चंपतराय का युद्ध मुगलों से चल रहा था। इसलिये छत्रसाल का जन्म जंगल में हुआ था। यहां भी मुगल सैनिक उन्हें घेरने का प्रयास कर रहे थे। बचपन से ही उन्हें कष्ट झेलने को मिले। प्रकृति की गोद सोने को मिली 6 माह की आयु तक वे संघर्ष के बीच रहे।[2]

---

1. राधाकृष्ण् बुन्देली एवं सत्यभाभा बुन्देली : बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन पृ0 97
2. कृष्ण दास पंडित : बुन्देलों का इतिहास (छत्रसाल)

जब छत्रसाल 7 माह के थे। तो चंपतराय उनकी रानी और कुछ सैनिक जंगल में भोजन बना रहे थे अचानक मुगल सेना ने उन्हें घेर लिया सारे सैनिक रानी और चंपतराय भागे परन्तु छत्रसाल यही छूट गये। मुगल सैनिक चंपतराय को न पाकर वापिस चले गये। बालक छत्रसाल यहीं पड़ें रहे। सैनिकों द्वारा छत्रसाल की खोज की गई और उनका एक सिपाही छत्रसाल को वापिस लाया। छत्रसाल को लेकर उनकी पत्नी मायके चली गई। यहां पर छत्रसाल 4 वर्ष की अवस्था तक रहे। इन्हें किसी प्रकार का भय नहीं था। इन्होंने बचपन से ही तलवारों से खेलना प्रारम्भ कर दिया था। बचपन से ही इनकी महानता दृष्टिगोचर होने लगी थी। उनका नाम उनके गुणों के अनुरूप था। चंपतराय जिस प्रकार अपने सरदारों का आदर सत्कार करते थे। उसी प्रकार का व्यवहार छत्रसाल भी करने लगे। ये बचपन से ही चित्र बनाने के शौकीन थे। धार्मिक भावनाओं में रूचि रखते थे। नियमानुसार मन्दिर जाते थे। महाभारत की कथाओं को बड़े ही उत्साह से सुनते थे। छत्रसाल का विद्या अध्ययन मामा के घर में 7 वर्ष की अवस्था में प्रारम्भ हुआ। विद्याध्ययन के साथ–साथ इन्हें सैनिक शिक्षा भी प्रदान की गई। बचपन से ही इनके हृदय में कवि के गुण विद्यमान थे। 10 वर्ष की आयु में ही इन्हें बर्छी तीर चलाना और घोड़े की सवारी करना सीख लिया था। इन्हें अध्ययन का बहुत शौक था। **केशव** की **रामचन्द्रिका** इन्हें बहुत प्रिय लगती थी।

चंपतराय की मृत्यु का समाचार इन्हें उस वक्त मालुम हुआ। जब ये सेहरा नामक ग्राम में थे। यह समाचार उन्हें एक ऐसे सैनिक के द्वारा मिला जिसने सारी घटना अपने नेत्रों से देखी थी। उन्हें अपने पिता की मृत्यु का गहरा दुःख था। उनके उत्साह और धैर्य ने उन्हें यह प्रेरणा दी कि वे सैनिकों का संगठन करें।[1] चंपतराय के एक वयोवृद्ध सैनिक ने उनका समुचित सत्कार किया। यहां से छत्रसाल अपने काका सुजानराय के पास गये। सुजानराय

1. भगवानदास श्रीवास्तव : बुन्देलों का इतिहास

छत्रसाल के बड़े भाईयों को जानते थे। परन्तु उन्होंने छत्रसाल को पहले कभी नहीं देखा था। परिचय पाकर सुजानराय ने छत्रसाल का स्वागत सत्कार किया। कुछ दिनों के लिये छत्रसाल यही रूक गये। छत्रसाल को यहां भी अपना पौरूष दिखाने की आवश्यकता पड़ी। ये मुगलों से युद्ध करना चाहते थे परन्तु इनके काका ने उन्हें ऐसा करने से मना कर दिया। यहां से अपने भाई अंगदराय के पास चले गये। इस समय अंगदराय देवगढ़ में थे। महेबा जागीर की आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण सब भाई अलग–अलग रहकर नौकरी करते थे। अंगदराय ने छत्रसाल के स्वतंत्र राज्य की उद्देश्य को समझा और वे इससे बहुत खुश हुये।[1] अंगदर्रय ने उन्हें यह सलाह दी कि इस सम्बन्ध में उन्हें सोच समझकर कदम उठाने की आवश्यकता है। इस समय चंपतराय के द्वारा अधिकृत बुन्देलखण्ड पुनः मुगलों के कब्जे में आ गया था। सैन्य संगठन के लिये धन की आवश्यकता थी। 'देबल बारा' नाम ग्राम में इनकी मां के जेवर रखे थे। उन्होंने इन जेवरों को बेच दिया और एक छोटी सेना तैयार की। वि0सं0 1727 में छिंदबाड़ा जनपद स्थित देवगढ़ में परम कत्प (कोक शाह) का राज्य था। राजपूतों की सेना को लेकर इसने मुगलों की सेना से युद्ध करने का निश्चय किया। मुगल सेना की ओर से जयंसिंह अथवा जसंबत सिंह सेनापति थे। इस समय छत्रसाल और अंगदराय ने जयसिंह को सहायता देने का वचन दिया। जयसिंह ने इन दोनों को समुचित आदर किया और इनकी सहायता स्वीकार की। बाद में दिल्ली से यह आदेश प्राप्त हुआ कि जयसिंह अपना कार्य बहादुर खां के हाथ सुपुर्द कर दें। बहादुर खां और चंपतराय पहले मित्र थे। दोनों में पगड़ी बदल हुई थी। बहादुर खां ने भी अंगदराय और छत्रसाल के साथ अच्छा व्यवहार किया। छत्रसाल की वीरता के कारण मुगल सेना का उत्साह बढ़ा और परम कल्प की सेना पीछे हटी। अन्त में देवगढ़ जीत लिया गया। इसी समय छत्रसाल के गले में एक तलवार

---

1. कृष्णदास पंडित : बुन्देलों का इतिहास (छत्रसाल)

लगी। इनके गले में बिछुआ होने के कारण छत्रसाल जीवित बच गये। फिर भी रणक्षेत्र में वे घायल हुये और उनके विश्वासी घोड़ें ने उनकी रक्षा की।[1] मुगलों ने देवगढ़ विजय की खुशियां मनाई। कुछ दिनों में छत्रसाल ठीक हो गये। परन्तु मुगलों का यह व्यवहार उन्हें ठीक न लगा।

दिल्ली पहुंचने पर बहादुर खां को मनसबदारी मिली। परन्तु छत्रसाल को कोई सम्मान नहीं प्राप्त हुआ। दिल्ली का बादशाह हिन्दू धर्म का कट्टर विरोधी था। जजिया कर के अतिरिक्त नाना प्रकार के कर उसने हिन्दुओं पर लगाये। हिन्दू त्योहारें पर विमानों का निकलना उसने बन्द करवा दिया। धार्मिक स्थलों में मन्दिरों को गिरवाकर मस्जिदें बनबाई। मूर्तियों को पैरों के नीचे कुचलवाया। हिन्दू जनता औरंगजेब से बहुत नाराज थी। दक्षिण में शिवाजी और उत्तर में छत्रसाल ही हिन्दू धर्म के रक्षक रह गये।

## छत्रसाल की शिवाजी से भेट

शिवाजी की ख्याति सुनकर छत्रसाल महाराज ने यह निश्चय किया वे शिवाजी से मिलकर हिन्दू राज्य स्थापना की दिशा में कदम उठायेंगे। छत्रसाल की सहायता अंगदरायने भी की। दोनों भाई पहले देहलबारे गये यहां छत्रसाल ने अपना विवाह परी के परमारों की बेटी देव कुंअर के साथ किया। यह सगाई चंपतराय के समय में हुई थी। विवाह करना आवश्यक भी था। वे अपनी पत्नी देवकुंअर और भाई अंगदराय के साथ पूना के लिए रवाना हुये। दक्षिण जाने का मार्ग इस समय बहुत कठिन था। मार्ग में शिवाजी की जांच चौकियां थी। छत्रसाल महाराज किसी प्रकार शिवाजी के साम्राज्य में पहुंचे। छत्रसाल से उनकी मुलाकात भीमा नदी के किनारे जंगल में हुई। इसके पहले दोनों ने एक दूसरे को नहीं देखा था। दोनों वीर मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुये। शिवाजी ने इन्हें बहुत सुन्दर आदेश दिया। उन्हें राष्ट्र के प्रति चेतना प्रदान की।[2]

---

1. बृज रत्न दास : बुन्देलों का इतिहास
2. गोरे लाल तिवारी : बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास पृ० 176

## छत्रसाल द्वारा बुन्देलों के एकीकरण का प्रयास

मुसलमानी शासन तंत्र से अपने को स्वतंत्र करने के लिये बुन्देलों की एकता परम आवश्यक थी। ओरछा राज्य के राजा मुगल शासकों के अधीन थे। इन्होंने चंपतराय के साथ युद्ध में मुगलों का साथ दिया। इसी प्रकार दतिया के राजा शुभकरण ने भी चंपतराय के साथ युद्ध किया था। बुन्देलों की एकता का ध्यान में रख कर छत्रसाल ने दतिया नेश शुभकरण से मिलने का निश्चय किय क्योंकि देवगढ़ के युद्ध में छत्रसाल ने मुगलों का साथ दिया था। इसलिये इस समय मुगलों से कोई शत्रुता नहीं थी। रिश्ते में काका लगने के कारण शुभकरण ने छत्रसाल का समुचित स्वागत सत्कार किया। शुभकरण ने उन्हें सलाह दी कि वे मुगलों के नौकर हो जायें। छत्रसाल को यह अनुचित लगा। छत्रसाल की इच्छा एक स्वतंत्र राज्य कायम करने की थी। उन्होंने शुभकरण से यह भी कहा कि मुसलमान हिन्दुओं की भलाई कभी नहीं सोचते। इस पर शुभकरण ने उन्हें राज्यद्रोही माना और अपनेराज्य से बिदा कर दिया।

शुभकरण से निराशा होने के पश्चात छत्रसाल अपने चचेरे भाई बलदीवान के पास औंरगाबाद गये। औंरगाबाद पहुचने पर तद्युगीन राजनैतिक परिस्थितियों पर दोनों भाईयों में विस्तृत चर्चा हुई। मुसलमानों के राज्य को समाप्त करने के उद्देश्य से बलदीवान प्रभावित हुआ। उसने छत्रसाल को यह आश्वासन दिया कि वह छत्रसाल की सहायता करेगा।[1]

छत्रसाल ने वि0 सं0 1728 में मोर पहाड़ी के निकट सैन्य संगठन प्रारम्भ कर दिया। यह समाचार किसी प्रकार औरंगजेब के पास पहुंचा। उसने ग्वालियर के सूबेदार खिदाई खां को बुन्देलों को दबाने के लिये हुक्म दिया। इस समय ओरछा रियासद खिदाई खां के अधीन थी। औरंगजेब के हुक्म में यह भी था कि हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनाया जाय या फिर उन्हें मार दिया जाय। मन्दिरों को तोड़कर मूर्तियों को नष्ट कर दिया जाय। इसी

---

1. कृष्ण कवि : बुन्देलखण्ड का इतिहास पृ0 32

समय में हिन्दू साम्राज्य की स्थिति ठीक नहीं थी। आदेश पाकर खिदाई खां ने ओरछा के राजा सुजानसिंह को एक पत्र लिखा कि मन्दिरों को गिराने और मूर्तियों को तोड़ने में बादशाह की सहायता करें। सुजानराय को जब यह मालूम हुआ कि छत्रसाल हिन्दुओं की रक्षा के लिये मोर पहाड़ी के निकट सैन्य संगठन कर रहे हैं। तो वे प्रसन्न हुये उनके मन्त्रियों ने भी उन्हें छत्रसाल से सहायता लेने की सलाह दी। रतिराम नाम का एक दरबारी सुजान सिंह का एक पत्र लेकर छत्रसाल के पास पहुंचा। छत्रसाल पिछली दुश्मनी को भूलकर पत्र पाने के दूसरे दिन ही अंगदराय और बलदीवान के साथ ओरछा चल दिये। अन्त में छत्रसाल और सुजान सिह ने रामराजा मन्दिर में एक दूसरे को सहायता देने की प्रतिज्ञा की। छत्रसाल के सैन्य संगठन में चंपतराय के मित्रों और छत्रसाल के मित्रों ने बहुत सहयोग दिया। स्वाधीनता प्राप्त करने के लिये चार सिद्धान्तों का सृजन किया गया।[1]

अ. क्षत्रियों का धर्म पालन करना।

ब. देश और जाति की रक्षा करने का प्रयत्न करना।

स. धर्म के विरूद्ध आचरण करने वाले और प्रज्ञा को कष्ट देने वाले यवनों का नाश करना।

द. उन राजाओं या सूबेदारों को उचित दण्ड देना विजातियों यवनों से मिलकर हिन्दुओं पर अत्याचार करते हैं।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये छत्रसाल का दिग्विजय अभियान चालू हुआ। इसी समय धमोनी का जागीरदार मुगलों के आधीन था। चंपतराय के आक्रमण के समय इसने मुगलों का साथ दिया था। पिता के शत्रु को नीचा दिखाने के लिये छत्रसाल ने यहां आक्रमण किया। 8 दिन तक युद्ध होने के पश्चात् उसने छत्रसाल की आधीनता स्वीकार कर ली और

---

1. के. वी. वर्मा : सोर्सेज आफ हिस्ट्री आफ बुंदेलखण्ड

छत्रसाल को चौथ देने का वचन दिया। धमोनी के पश्चात छत्रसाल ने उसकी ओर से उसकी मां जागीर देख रेख करती थी। इसकी सेना का सेनापति माधव सिंह गूजर था। 12 दिन तक युद्ध होने के बाद छत्रसाल ने माधवसिंह गूजर को हरा दिया 3000 हजार रूपया वार्षिक कर देने की शर्त पर उसे छोड़ दिया। इस समय जागीरदार भी अपनी सेना रखते थे।

छत्रसाल के शौर्य को बढ़ते देखकर मुगल सैनिक उन्हें हराने का प्रयास कर रहे थे। एक बार मुगल सेनापति बहादुर खां ने उन्हें आ घेरा।यह सेनापति ग्वालियर के.सूबेदार के आधीन था। छत्रसाल के पास इस समय सेना नहीं थी। इसलिये उसने इस समय मुकाबला नहीं किया और चालाकी से बच निकले। वे अपने स्थान पर पहुंचे, वहां उन्होंने ग्वालियर प्रान्त पर आक्रमण कर दिया। पंवाया नाम ग्राम को लूटने के बाद धूमघाट नामक स्थान पर अपना डेरा डाला। ग्वालियर का सूबेदार मूनौवर खां छत्रसाल से मुकाबला करन के लिये एक बड़ी सेना साथ यहां लाया। उसकी सेना से छत्रसाल का युद्ध हुआ। मुगल सेना हारकर पीछा हटी और ग्वालियर के किले में घुस गई। छत्रसाल ने उसका पीछा किया ग्वालियर को इन्होंने लूटा लगभग 125 करोड़ रूपया और कीमती रत्न इनके हाथ लगे। परन्तु वे ग्वालियर का किला नहीं जीते सके। इसी समय सिरोंज का थानेदार मुहम्मतद हासिम फौज सहित यहां आ गया। कुछ फौज ग्वालियर से भी आई। आनन्द राय चौधरी नामक व्यक्ति भी अपनी फौज लेकर मुसलमानों की सहायता के लिये पहुंचा। इस समय छत्रसाल का पड़ाव कटिया के जंगलों में था। तीन ओर से आक्रमण होने पर भी बुन्देले तनिक भी नहीं डरे अपने युद्ध कौशल के कारण ये विजयी हुये। इसके पश्चात् छत्रसाल मऊ आये और यहां पर उन्होंने महेवा नाम एक दूसरा गांव बसाया। यह स्थान सुरक्षित न होने कारण रनिवास के लिये पन्ना उपयुक्त रहा। आगे चलकर पन्ना छत्रसाल की राजधानी बनी। परन्तु छत्रसाल की सेना मऊ में ही रही। छत्रसाल की वीरता से बुन्देले ठाकुर प्रोत्साहित होते रहे और उन्हें अपना समर्थन देते रहे।[1]

---

1. राजमल बोरा : जुझौत बुन्देलों की शौर्य कथायें

**मुगलों से छत्रसाल के युद्ध :**

औरंगजैब की ओर से नियुक्त मुगलों का सूबेदार मुनौअर खां जो ग्वालियर में तैनात था। छत्रसाल से युद्ध में हार गया था। औरंगजेब को इस समाचार से बहुत आश्चर्य हुआ। उसने छत्रसाल को दबाने की तैयारियां प्रारम्भ कर दी। इस समय औरंगजेब तीनों ओर से परेशान था।

दक्षिण भारत में उसके शासन विरोधी शिवाजी महाराज कर रहे थे। मध्य भारत में छत्रसाल बुन्देला अपना राज्य चलाने का प्रयास कर रहे थे। बूंदी के राजा छत्रसाल हांडा भी अपने शासन काल में औरंगजेब को बहुत तंग करते रहे। बूंदी के राजा छत्रसाल होंडा रावरतन के नाती थे। रावरतन को मुगल़ बादशाह शाहजहां ने राजा बनाया था। रावरतन के मरने के बाद छात्रसाल हाडा बूंदी के राजा बने। औरंगजेब की बादशाही के विरूद्ध छत्रसाल हाड़ा औरंगजेब से लड़े थे। यह आखिर तक औरंगजेब से लड़ते रहे। औरंगजेब इन दोनों छत्रसालों से भयभीत था। कवि **भूषण** में दोनों छत्रसालों कावर्णन इस प्रकार किया है

**"इक हाड़ा बूंदी धनी मरद महेबा बाल।**
**सालत औरंगजेब को ये दोनों छत्रसाल।।**
**वे देखो छत्ता पता वे देखो छत्रसाल।**
**ये दिल्ली की ढाल ये दिल्ली ढाहनवाल।।**[1]

बून्दी के राजा छत्रसाल हांडा वि0 सं0 1715 में स्वर्गवासी हो गये उनके पश्चात उनके पुत्र औरंगजेब से लड़ते रहे। पन्ना के राजा छत्रसाल के विरूद्ध दिल्ली दरबार के बाइस बजीरों और आठ सरदारों को सेना तैयार करने का हुक्म दिया गया। इस सेना का सेनापति रण दूल्हा खां था। छत्रसाल ने भी एक बड़ी सेना तैयार की जिसमें आस पास के

---

1. कवि भूषण : 'छत्रसाल दशक'

बहत्तर सरदारों ने अपनी सेना छत्रसाल के नेतृत्व में एकत्रित की। छत्रसाल से युद्ध करने के लिये रणदूला खां अपनी बड़ी सेना लकर दक्षिण बुन्लेदखण्ड में तीस हजार सैनिकों सहित आ गया। इसकी सेना मे तोपें भी थी दु:ख का विषय है, कि ओरछा, सिरोंज, कोंच, धमौनी और चंदेरी के बुन्देले ठाकुर छत्रसाल के विरूद्ध मुगलों का साथ दे रहे थे।

जब छत्रसाल को मुगलों की सेना के आक्रमण का समचार मिला वे मऊ से चलकर गढ़ाकोआ पहुंचे। यहां मुगलों की थोड़ी सेना थी। इन्होंने इस किले पर अधिकार कर लिया और अपने मंत्री बल दीवान को यही छोड़कर सेना सहित युद्ध के लिये तैयार हो गये मुसलमानों की सेना तेजी से बढ़ रही थी शाहगढ़ के समीप एक पहाड़ी से छत्रसाल की सेना ने गोले बरसाने प्रारम्भ कर दिये। परिणाम स्वरूप मुगल सेना का पांचवा भाग यही नष्ट हो गया। जैसे ही मुगलों की सेना ने पहाड़ी पर चढ़ने का प्रयास किया। छत्रसाल सेना सहित दूसरी जगह चले गये। मुसलमानों की सेना जैसे ही गढ़ाकोटा के पास पहुंची छत्रसाल की सेना ने एक ओर से उस पर आक्रमण कर दिया और किले के अन्दर से छत्रसाल के मंत्री बलदीवान ने मुगल सेना पर आक्रमण किया। औरंगजेब की सेना दोहरी मार न सह सकी रण दूल्हा खां सागर की ओर भाग गया। इस युद्ध में रण दूल्हां खां के दस सरदार और सात सौ सिपाही मारे गये दस तोपें छत्रसाल के हाथ लगी। रण दूल्हा खां का छत्रसाल ने पीछा किया। वे उसे खदेड़ते हुये ललितपुर से नरवर आ गये। मार्ग में मुसलमानें के कई गांव लूटे गये। यहां उन्हें पता चला कि मुगलों का खजाना इस ओर आ रहा है। रास्ता राक कर उन्होंने खजाना लूट लिया।[1]

रण दूल्हा खां की हार और खजाना लूटे जाने का औरंगजेब बादशाह को बड़ा दु:ख हुआ। उसने छत्रसाल के विरूद्ध तुर्क सेना की पूरी तैयारी के साथ भेजा। इस सेना ने

---

1. ज्ञान प्रकाश गुप्त : मुगल कालीन बुन्देलखण्ड

बसिया के पास छत्रसाल की सेना का आ घेरा। सेना की कमी होने के कारण छत्रसाल ने मुकाबला न किया और पीछे हट गये। छत्रसाल के विश्वास पात्र व्यक्ति ने तुर्की सेना के तोपखाने में आग लगा दी। इसी समय छत्रसाल की सेना ने मुसलमानी सेना पर आक्रमण कर दिया और वे जीत गये। छत्रसाल जीतने के बाद जिगनी आये। जहां के जागीरदार सिंह जूं परिहार ने स्वागत किया। और अपनी पुत्री भगवान कुमारी का विवाह छत्रसाल के साथ कर दिया।

वसिया की हार का समाचार जब औरंगजेब को पता चला तो वह बहुत चिन्तित हो चला उसे भय हो गया कि कहीं छत्रसाल दिल्ली न लूट ले। उसने अपनी कूटनीतिज्ञ सरदार तेहवर खां को बुन्देलों को हरवाने के लिये नियुक्त किया। इसने छत्रसाल से खुले मैदान में लड़ना ठीक न समझा। इस समय छत्रसाल मऊ से अपनी बारात लेकर संडवा बाजने में अपना व्याह करने आये। भांवरो के समय तेहवर खां ने फौज सहित छत्रसाल को घेर लिया। थोड़े से व्यक्तियों को युद्ध में लगाकर छत्रसाल वहां से बच निकले। तेहवर खां दिल्ली वापस चला गया। छत्रसाल संडवा बाजने से मऊ आ गये।

चार मास बरसात के व्यतीत करने के बाद इन्होंने सेना सहित कालिंजर में धावा बोल दिया। मुसलमानों की एक बड़ी सेना इस किलें में रहती थी। यहां के किलेदार का नाम इलाही था। छत्रसाल ने चारों ओर से किला घेर लिया। इस समयस इनकी सेना का नेतृत्व बल दीवान कर रहे थे। किले के अन्दर गोले और बारूद की कोई कमी न थी। नुकसान सहकर भी बुन्देलों ने अपना घेरा न तोड़ा। यह युद्ध 18 दिनों तक होता रहा। रसद समाप्त हो जाने के पश्चात् मुगल सैनिक बाहर निकले। उसी द्वार को रोक कर बुन्देले किले के अन्दर पहुंच गये और उस पर अपना अधिकार कर लिया।[1] यह युद्ध बड़ा ही भयंकर युद्ध था। इस

1. अपर्णा मिश्र : बुन्देलों का मुगलों से संबंध

युद्ध में दोनों ओर के सैकड़ों सैनिक मारे गये। नन्दनछीपी, श्री कृपाराय चन्देल, बोधराज परिहार आदि दस बुन्देले सरदार मारे गये और 27 घायल हुये। परन्तु विजय छत्रसाल की हुई। छत्रसाल ने यहां पर मान्धाता चौबे को किलेदार बनाया और पन्ना होते हुए मऊ आ गये। चौबे वंश अंग्रेजों के समय तक यहां के किलेदार रहे।

मऊ के समीप एक जंगल में छत्रसाल की भेंट गुरू प्राणनाथ से हुई। छत्रसाल ने उन्हें अपना गुरू माना था। उन्हें यहां पर आर्शीवाद प्राप्त हुआ और देश धर्म रक्षा का प्रण छत्रसाल ने किया।[1] गुरू **प्राणनाथ** के ये वचन बहुत प्रसिद्ध हैः–

**"छत्ता तेरे राज्य धक–धक धरती हौय।**

**जित–जि घोड़ा मुख करें, तित्–तित् हीरा होय।।**

छत्रसाल ने विक्रमी संबत 1742 में सागर पर अधिकार कर लिया यह शहर इस समय मुगल बादशाह के अधीन थ। इसके पश्चात छत्रसाल ने दमोह और बरहटा के राजा को अपने अधिकार में कर लिया। इसके पश्चात् ऐरच मे आक्रमण किया और जलालपुर पर अधिकार किया। लूटमार में प्रजा को कष्ट न होता था। छत्रसाल बांदा की ओर आया। बांदा के निवासियों ने छत्रसाल का स्वागत किया। मोदहा, मुस्करा आदि अठारह गांव के जमींदारों ने छत्रसाल को रोकना चाहा। छत्रसान ने उन्हें दण्डित कर महोबा, राठ और पनबाड़ी पर अपने सैनिक नियुक्त किया। अजनर के जमींदारों ने छत्रसाल का विरोध किया तो उनको सजा दी। छत्रसाल यहां से कालपी की ओर चले यहां के सरदार दुर्जन सिंह परिहार ने छत्रसाल की अधीनता को स्वीकार कर लिया। छत्रसाल ने उन्हें क्षमा कर दिया।

छत्रसाल के समय ओरछा में राजा भगवंत सिंह का राज्य था। राजा यशवंत सिंह का स्वर्गवास विक्रमी संबत् 1741 में हो गया था। इस समय भगवत सिंह बालक थे। इनके

---

1. गुरू प्राणनाथ : आशीर्वादात्मनम्

शासन का संचालन मंत्रियों के द्वारा होता था इनकी माता जी शासन कार्य में इनकी मदद करती थी। संवत् 1742 में कालपी जाते समय ओरछा रूकने का निश्चय किया। यह समाचार सुनकर भगवंत सिंह की मां अमर कुंवरि धसान नदी के किनारे मिली। उन्होंने छत्रसाल से अनुरोध किया कि यह ओरछा पर आक्रमण न करें उन्होंने धसान नदी के पूर्व का भाग छत्रसाल को दे दिया और वे अपने साथ छत्रसाल को ओरछा ले गई। यहां छत्रसाल का समुचित स्वागत सत्कार किया गया।[1]

छत्रसाल ने ग्वालियर पर चढ़ाई की। यहां के सूबेदार तेहवर खां पहले ही छत्रसाल से हार गया था, छत्रसाल को देखकर उसे अपनी जान बचाने की पड़ी 20 हजार रूपया नकद देकर उसने अपने प्रजा की रक्षा की और भविष्य में छत्रसाल को चौथ देने का निश्चय किया।

छत्रसाल ने यहां से भेलसा अथवा विदिशा के किलेदार को बुन्देलों की अधीनता स्वीकार करने और चौथ देने के लिये पत्र मिला। कोई उत्तर न आने पर छत्रसाला ने भेलसा पर आक्रमण कर दिया। इस किले को ख़ाली करा लिया और उस पर छत्रसाल का अधिकार हो गया।

ग्वालियर के सूबेदार तेहवर खां ने छत्रसाल के आक्रमण का हाल दिल्ली दरबार में भेजा और बुन्देला को चौथ देने से इन्कार कर दिया। इसी प्रकार कालपी का किलेदार दिल्ली दरबार में पहुंचा। उसने बादशाह से कालपी का किला वापिस लेने के लिये फौजी सहायता मांगी। औरंगजैब यह समाचार सुनकर क्रोधित हुआ। उसने छत्रसाल के विरूद्ध अनवार खां नामक वीर सरदार को बुन्देलों से युद्ध करने के लिये 12 हजार घोड़े, कई हजार पैदल बहुत से हाथी और ऊंट गोला बारूद लेकर भेजा। छत्रसाल इस मसय भेलसा से लौट

---

1. डब्लू. आर. पारसन : हिस्ट्री आफ बुन्देलखण्ड

रहे थे। अनवर खां ने इन्हें मार्ग में रोकने का निश्चय किया। मुगलों को इनती बड़ी सेना देख कर बुन्देलों ने लड़ने का निर्णय लिया। बुन्देले छोटा सा झुण्ड बनाकर मुगल सेना पर आक्रमण करते थे। मुगल उनका पीछा करते थे फिर पहाड़ियों में स्थित बुन्देली सेना इनका मुकाबला करती थी। इस तरह मुगल सेना हार गई। अनवर खां को कैद कर लिया। उसने कैद से छूटने के लिये सवा लाख रूपया बुन्देलों को दिया। औरंगजेब को इस हार पर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने भरे दरबार में अनवर खां का बेइज्जती की और उसकी सरदारी छीन ली।[1]

मुगल छत्रसाल से लगातार हारते रहें औरंगजेब इससे बहुत दुःखी हुआ। उसने दरबार लगाया उस दरबार में मिर्जा सदरूद्दीन ने छत्रसाल को गिरफ्तार करने का बीणा उठाया। औरंगजैब ने उसे बहुत बड़ी सेना दी उसे यथोचित सम्मान दिया और धमोनी का सूबेदार बनाया। धमोनी मुगलों को बुन्देल खण्ड स्थिति राजधानी थी। यहां के सागर, दमोह का शासन चलाया जाता था। मिर्जा सदरूद्दीन ने छत्रसाल से मित्रता करने के उद्देश्य से एक दूत भेजा उसके द्वारा यह संदेशा भेजा कि वह औरंगजैब से संधि कर लें। छत्रसाल को सदरूद्दीन की बाज उचित प्रतीत नहीं हुई। उन्होंने मुगलों के आधीन रहना अस्वीकार कर दिया। छत्रसाल कई बार मुगल सेनापतियों को हरा चुके थे परन्तु बे सदरूद्दीन से मैदानी युद्ध करने में असमर्थ थे। उसकी असंख्या सेना ने छत्रसाल पर आक्रमण कर दिया। बहुत से वीर योद्धा इस रण में मारे गये। बुन्देलों ने धैर्य और वीरता नहीं त्यागी। छत्रसाल की ओर से परशुराम, नारायणदास, अजीतराम, बालकृष्ण, गंगाराम, मेघराज आदि सरदारों ने काफी वीरता का प्रदर्शन किया। अन्त में विजय बुन्देलों की हुई। मुगल सेना हार कर भागी। मिर्जा सदरूद्दीन और उनके कई सरदार छत्रसाल के द्वारा बन्दी बनाये गये। सदरूद्दीन से चौथ

1. भवानदास गुप्त : मुगलों के अन्तर्गत बुन्देलखण्ड सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक इतिहास

देने के वचन पर छत्रसाल ने उसे मुक्त कर दिया।

औरंगजेब ने बुन्देलखण्ड जीतने का पुनः प्रयास किया। उसने अपने सेनापति शाहकुली को एक बड़ी सेना के साथ भेजा, वह बुन्देलखण्ड में घुसकर चुरहट, कोटरा, जलालपुर जीतता हुआ नौली के मुकाम पर रूका। उसका समाचार पाकर छत्रसाल मऊ से और बलदीवान अपनी सारी सेना सहित शाहकुली से युद्ध करने पहुंचे। इसी समय असमद खां नाम का दूसरा मुसलमान सरदार शाहकुली की सहायता के लिये आ गया। दोनों सेनाओं ने छत्रसाल को घेर लिया। यहां बड़ा भंयकर युद्ध हुआ। छत्रसाल की सेना का बड़ा नुकसान हुआ। छत्रसाल ने युद्ध करने के लिये बुन्देलों को उत्साहित किया, पुनः घमासान युद्ध हुआ। अन्त में विजय बुन्देलों की हुई असमद खां कैद कर लिया गया।[1] छत्रसाल ने उसे जुर्माना लेकर छोड़ दिया। शाहकुली अलग रह गया था। उसने दिल्ली से और सेना मंगवाई। बादशाह के आदेशानुसार नंदराम नाम का एक सरदार आठ सौ सरदार सहित शाहकुली के पास पहुंचा। शाहकुली ने मऊ सानिया पर आक्रमण किया। यहां पर छत्रसाल ने शाहकुली को हरा दिया और कैद कर लिया। बहुत सा दण्ड, वसूल कर उसे छोड़ दिया।

**<u>दिल्ली में सत्ता परिवर्तन</u> :**

शाहकुली की पराजय के बाद छत्रसाल को फिर किसी ने परेशान नहीं किया। छत्रसाल से दिल्ली दरबार की अप्रसन्नता समाप्त हो गई। ओरंगजेब का स्वर्गवास विक्रमी संबत् 1764 में अहमद नगर मे हुआ। उसके तीन पुत्र थे, जिनके नाम मोअज्जम, आजमशाह औश्र कामवक्श थे। इसमें मोअज्जम सबसे बड़ा था जो काबुल में रहता था। अवसर पाकर आजमशाह बादशान बन गया उसने कामबख्श को दक्षिण का राज्य देने का वचन देकर अपनी ओर मिला लिया –परन्तु राज्य का वा स्तविक अधिकारी मोअज्म था। वह एक बडी सेना लेकर

---

1. कार्वर : हिस्ट्री आफ बुन्देलखण्ड

काबुल से भारत आया,इस समय कोई भी हिन्दू राजा औरंगजेब से प्रसन्न नहीं रहते थे । मोअज्म ने देशी राजाओं को अपनी ओर मिला लिया और उनसे सहायता ली। उन्होंने साहु महाराज को कैद से छुटकारा दे दिया। थे उसे समय दिल्ली में कैद थे, और यही शिवाजी के राज्य के उत्तराधिकारी थे। मुअज्जम ने अपने बजीर खान–खाना को छत्रसाल से मित्रता करने के लिये भेजा। खान–खाना ने छत्र साल की वीरता की तारीफ की और लोहागढ़ फतह करने के लिये छत्रसाल से सहायता मांगी। छत्रसाल ने मुअज्जम की सहायता की ओर विक्रमी संबत 1768 में लोहागढ़ का किला मुगलों को दे दिया। उसने छत्रसाल की स्वंतत्र सत्ता स्वीकार की और बराबरी का बर्त्ताव करने लगा। उसने छत्रसाल को मनसबदारी देने का प्रयास किया, परन्तु छत्रसाल ने उसे स्वीकार नहीं किया। मुअज्जम ने अपना नाम बदलकर बहादुर शाह रखा। इसी समय छत्रसाल ने पन्ना में अपा राज्य जमा लिया।

**छत्रसाल व मराठों में सम्बन्ध :**

औरंगजेब के बाद मुगल सल्तनत दिनों दित पतित होती गई। बुन्देलखण्ड में छत्रसाल स्वतंत्र होते गये ओर दक्षिण मे महाराज साहू की स्वतंत्र सत्ता स्थापित हुई। दोनों राजा हिन्दू धर्म के रक्षक थे, इनके समय मे प्रजा बहुत सुखी थी। इसी समय बहादुर शाह की मृत्यु विक्रमी सम्बत 1749 में हुई। इसकी मृत्यु के पश्चात अब्दुल्ला और हुसैन अली की सलाह से बादशाह चलते थे। इन्हे सैयद बन्धु के नाम से पुकारा जाता था।[1] परन्तु सैयद बन्धु ने मराठों की सहायता से दिल्ली के बादशाह को अपने बस मे करने का प्रयास किया। फरूखसियर से इनका युद्ध हुआ। फर्रूखसियर कैद कर लिया गया। विक्रमी संबत् 1776 मे उनका युद्ध हुआ और विक्रमी संबत् 1778 मे वह मारा गया, इसे पश्चात् सैयद बन्धुओं ने रफीउद्धाराजात और रफीउद्दोला नामक बालकों को बादशाह बनाया। छः मास के आदर

1. ज्ञान प्रकाश गुप्त : मुगल कालीन बुन्देलखण्ड

उनका स्वर्गवास हो गया। बाद में रोशन अख्तर बादशाह बना। इसने अपना नाम मुहम्मदशाह रखा। इस समय दक्षिण में मराठों की ओर से बाजीराव पेशवा शासन का बंदोबस्त करता था। जब बादशाह मुहम्मदशाह की सैयद बन्धुओं से न पटी तो मुहम्मद बंगस ने मुहम्मद शाह को सहायता दी थी, इसलिये बादशाह ने मुहम्मद खां बंगस को सात हजारी मनसबदार बनाया और उसे सात लाख रूपया इनाम दिया। जब सैयद भाइयों का पतन हुआ........... तब मुहम्मद बंगस को सात हजारी मनसबदारी बनाया गया और नफरजग की उपाधि दी गई। फर्रूखाबाद के समीप भोजपुर और शमशाबाद परगने उसे जागीर मे दिये गये। कुछ समय बाद 25 दिसम्बर सन 1720 में बंगस को इलाहाबाद का सूबेदार नियुक्त किया गया। बंगस ने सैयद भाइयों के इशारे से इलाहाबाद में भूरे खां ऐरच, कालपी तथा भाड़ेर में दिलेर खां शियपुरी जालौन में कमाल खां को नियुक्त किया।

1721 में इलाहाबाद में रहकर मुहम्मद खां बंगस ने आस–पास के कई राजाओं को अपने अधिकार में कर लिया। यह बड़ा ही योग्य शासक था। राजा छत्रसाल ने कालपी में मुहम्मद बंगस के सरदार पीर खां को निकाल दिया। मुहम्मद बंगस को यह बात बर्दाश्त नहीं हुई। जिन परगनों का बाद सूबेदार था उनमें से कई छत्रसाल के अधिकार में थे। उसने अपने नायब सूबेदारो को सेना एकत्रित करके बुन्देलखण्ड पर आक्रमण करने का हुक्म दिया। मुहम्मद बंगस की सहायता दलले खां कर रहा था। पहले वह हिन्दू राजपूत था। बाद में उसे बंगस ने मुसलमान बना दिया। छत्रसाल इससे दुःखी हुये । उन्होंने दलेल खां को एक पत्र लिखा कि वह मुगलो का पक्ष न लेकर छत्रसाल की सहायता करें। परन्तु दलेल खां ने ऐसा नहीं किया। मुहममद बंगस ने युद्ध की तैयारियां प्रारम्भ की। दिल्ली दरबार से भी सहायता मांगी गई। अमीर–उल उमरा खां दौरान ने बहुत सी सेना बंगस को सहायता के लिये भेजी।

इस सेना के बलबूते पर बंगस ने बुन्देलखण्ड पर आक्रमण किया। बांदा और सेंहुढ़ा पर उसने कई आक्रमण किये। इसी समय मराठों ने ग्वालियर पर आक्रमण कर दिया। उस आक्रमण को रोकने के लिये बंगस को ग्वालियर जाना पड़ा। इसी मौके पर छत्रसाल ने बंगस के प्रदेशों पर आक्रमण कर दिया। इसलिये बंगस को ग्वालियर से इलाहाबाद लौटना पड़ा। बंगस को दिल्ली दरबार से सेना की व्यवस्था के लिये दो लाख रूपया महावार मिलता था। इस धन से उसने अपने सैनिको की तनक्ष्वाह बढा दी और अपने पुत्र आजाद खां के साथ एक बड़ी सेना यमुना नदी के दक्षिण में भेज दी।

मुहम्मद बंगस ने कई बुन्देला सरदारों की सहायता की थी। इस समय ओरछा मे हरदौल के प्रपौत्र उदैत सिंह का राज्य था विक्रमी सं0 1746 में इसे गोद लेकर उत्तराधिकारी बनाया गया था। इसने मुगलों को आधीनता स्वीकार कर ली थी। यह छत्रसाल के विरूद्ध मुगलों की सहायता कर रहा था। दतिया इस समय ओरछा राज्य की जागीर थी परन्तु अब मुगलों के आधीन थी। दतिया के राजा इस समय राय रामचन्द्र थे। ये भी मुसलमानों के सहायक थे। चन्देरी के राजा दुर्जन सिंह भी मुसलमानों की सहायता कर रहे थे। चौदहा के जागीरदार जब सिंह ने भी छत्रसाल के विरूद्ध लड़ना स्वीकार कर लिया। इस समय हिन्दू संगठन कमजोर था। दिल्ली बादशाह के प्रसिद्ध सरदार नजीमुद्दीन, अली खां, साबित खां, जानिसार खां, बशारद अली खां अपनी सेना लाकर अपनी सेना लाकर मुहमम्द बंगस की सहायता कर रहे थे।

इस समय मालवा के सूबेदार मुहम्मद बंगस ने यह संदेशा भेजा था कि वह मुगलों के अधीन हो जाये। छत्रसाल ने मना कर दिया। इस समय बुन्देलखण्ड के लिये संकट का समय था। मुगलों के अतिरिक्त बहुत के बुन्देले राजा छत्रसाल के विरूद्ध थे। छत्रसाल

के पुत्र वीर और पराक्रमी के उन्होंने अपने पिता के आदेशानुसार मुगलों से लड़ने का निश्चय कर लिया था। मुहम्मद बंगस की असंख्य सेना ने बुन्देलखण्ड पर आक्रमण कर दिया। बुन्देलों की मुसलमानों से कई लड़ाइयां हुई राजा छत्रसाल के पुत्रों ने वीरता का प्रदर्शन किया, परन्तु उन्हें पीछे हटना पड़ा। एक वर्ष तक वह युद्ध चलता रहा। परन्तु किसी भी बुन्देलों ने हिम्मत न हारी। मुहम्मद खां के पास बहुत सा धन था। वह नई सेना को भर्ती करता उनके भोजन की व्यवस्था करता इस समय बुन्देलों ने गौड़वाना के जागीरदारों से सहायता मांगी। यह सेना जैतपुर में इकट्ठी हुई। वही दक्षिणी भाग में भयंकर युद्ध हुआ। महाराजा छत्रसाल का मुहम्मद बंगस के हाथियों से समाना हो गया। उसने अपनी बर्छी छत्रसाल को फेंक कर मारी जिससे छत्रसाल मूर्छित हो गये। इससे बुन्देलों को निराशा हुई । महावत छत्रसाल को सुरक्षित स्थान पर ले गया। मूर्छा हटने पर महाराज छत्रसाल ने पुनः समरांगण मे जाने का उद्देश्य बतलाया। परन्तु घाव गम्भीर होने के कारण उन्हें वहां नहीं ले जाया गया। इस समय कई युद्ध छत्रसाल और मुसलमानों से हुये। देश को संकट में जानकर उन्होंने मराठों से सहायता लेने का निश्चय किया। उन्होंने एक पत्र बाजीराव पेशवा को दोहे में लिखा यह दोहा निम्नलिखित है–

**"जो गति भई गजेन्द्र की, से गति पहुंची आज,**
**बाजी जात बुन्देल की, राखों बाजी लाज।"[1]**

छत्रसाल का यह पत्र एक दूत द्वारा बाजीराव पेशवा को गढ़ा नामक स्थान पर प्राप्त हुआ। यह पत्र उसे फरवरी 1729 में प्राप्त हुआ। उन्होंने इस संदर्भ में चिमना जी को एक पत्र लिखा कि मैं छत्रसाल की सहायतार्थ जा रहा हूं। आप जैसा उचित समझे अपनी स्वतंत्र व्यवस्था करें। यह सेना 12 मार्च को महोबा पहुंच गई। यहां पर छत्रसाल के पुत्र

---

1. गोरे लाल तिवारी : बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास पृ0 24

जगतराय ने उसका स्वागत किया। छत्रसाल भी बंगस के घेरे को तोड़कर उपहारों सहित बाजीराव पेशवा से मिले। बाजीराव ने अपना अभियान बंगस के विरूद्ध प्रारम्भ किया और कई स्थानों पर मुहम्मद बंगस को परास्त किया। मु0 बंगस ने भी वीरता पूर्वक छत्रसाल का सामना किया। फौजी मदद के लिये उसने मुगल सम्राट को भी लिखा। उसने अपने पुत्र कायम खां को फौज सहित अपने पास बुला भेजा बाजीराव को जब यह ज्ञात हुआ कि कायम खां फौज सहित आ रहा है तो उसने पिता पुत्र को एक साथ न मिलने देने के लिये कायम खां के विरूद्ध अभियान किया। जैतपुर (बेलाताल) के निकट कायम खां परास्त हुआ अपने थोड़े से अनुचरों सहित भाग निकला। उसने मुश्किल से अपने प्राणों की रक्षा की। रण मुहम्मद बंगस को परास्त करने के पश्चात् उससे यह प्रतिज्ञा कराई गई कि वह दुबारा बुन्देलखण्ड में आक्रमण नहीं करेगा। इसके पश्चात उसे सकुशल लौट जाने दिया।[1]

छत्रसाल के जीवन के यह अन्तिम दिन थे। कुछ दिनों पश्चात् छत्रसाल का शान्ति पूर्ण और यशस्वी जीवन समाप्त होने वाला था। उसने बाजीराव पेशवा का यथोचित सम्मान किया। उसे बहुत सा धन दिया। उसके सम्मान में जैतपुर में खुले दरबार का आयोजन किया। हृदय शाह और जगतराय को पेशवा के सामने उपस्थित कर दिया और बाजीराव के ऊपर उनकी रक्षा का भार सौंप दिय साथि ही अपने राज्य का 1/3 भाग जागीर के रूप में उसे प्रदान किया उसने बाजीराव को अपना तृतीय पुत्र अथवा दामाद माना। छत्रसाल ने बाजीराव पेशवा का उसी प्रकार सम्मान किया जैसा कि उच्च पद प्राप्त व्यक्तियों का किया जाता हैं, क्योंकि बाजीराव पेशवा ने छत्रसाल को सर्वनाश से बचाया था।[2]

23 मई सन् 1729 को बाजीराव ने जैतपुर से पूना के लिये प्रस्थान किया। इसके ठीक दो वर्ष बाद 17 दिसम्बर 1931 में बृद्ध छत्रसाल का स्वर्गवास हो गया। छत्रसाल को

1. अनिल कुमार शर्मा : बुन्देला मराठा संबंध
2. भगवान दास गुप्त : हिस्ट्री आफ बुन्देलखण्ड अंडर मराठाज

मृत्यु के समय उन्हें पूर्ण संतोष था कि मराठे उसको सहयोग करत रहेंगे। शिवाजी और छत्रसाल से अन्य राजपूतों को प्रेरणा मिलती रही। पूरे महाराष्ट्र मे बाजीराव की प्रशंसा हुई परन्तु साहू जी की भावना इसके विपरीत रही। उसने बाजीराव को यह आदेश दिया कि वह सेना सहित उनके सम्मुख उपस्थित हो यह आदेश उन्हें 12 अप्रैल 1931 में प्राप्त हो गया था। बुन्देलखण्ड विजय पर विशेष प्रोत्साहन साहू जी ने नहीं दिया। छत्रसाल की मृत्यु के बाद राज्य का जो भाग छत्रसाल ने जो बाजीराव पेशवा को दिया था। उसकी व्यवस्था क़े लिये चिमना जी आपा बुन्देलखण्ड आये और उन्होंने इस क्षेत्र का भार संभाल लिया तथा गोविन्द पन्त खरे को यहां का प्रबन्धकर्ता नियुक्त किया गया। बाद में गोविन्द पंडित बुन्देले के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके अधिकार में झांसी, कालपी, हटा, सागर, सिरोज, कोंच, गढ़ाकोटा तथा हृदय नगर थे। बांदा और कर्वी का भाग उसके आधीन था। बाद में इसे मस्तानी के पुत्र शमशेर बहादुर और उनके वंशजों को सौंप दिया गया। इन लोगों ने बांदा को शासन का केन्द्र बनाया, इस राज्य से इन्हें 33 लाख रूपया वार्षिक आय थी।

झगड़ों का निपटारा हो जाने के बाद वि0 सं0 1867 में रतनसिंह चरचारी के राजा हुये। एक वर्ष बाद अंग्रेजी सरकार ने इन्हें मान्यता दी। वि0 सं0 1904 में लक्ष्मण सिंह की मृत्यु के बाद भानुप्रताप गद्दी पर बैठे।

**<u>बुन्देली शासन में सभ्यता व संस्कृति</u> :**

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में बुन्देलों का राज्य ईसा की 12 वीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है। पंचम सिंह इसके संस्थापक माने जाते हैं। इनका राज्य सर्व प्रथम मिर्जापुर के आस–पास स्थापित हुआ इसके बाद बुन्देलों ने अपना राज्य ओरछा के आस पास स्थापित किया। बुन्देलों में यह राज्य खगांरों से लड़कर प्राप्त किया था। खगांरों की राजधानी इस समय गढ़कुंडार में थी और बुन्देलों के राजा सोहन पाल थे।

बुन्देले ठाकुर अपने को श्री रामचन्द्र जी का वंशज मानते हैं। वे अपनी उत्पत्ति लव से मानते हैं। ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर बुन्देले ठाकुर गहरवार वंश के थे। इनके पूर्वज बनारस या काशी में बहुत दिनों तक राज्य करते रहे। एक देवी के ऊपर रक्त चढ़ाने के कारण उनका नाम बुन्देला पड़ा यह मात्र किबदंती है। इसका कोई एतिहासिक साक्ष्य नहीं मिलता। बुन्देलों ने कुछ समय तक अपनी राजधानी गुढ़कुडार को बनाए रखा। इसके पश्चात् इन्होंने ओरछा को अपनी राजधानी बनाया। ओरछा के पश्चात दतिया में भी अपना राज्य स्थापित किया। इसी वंश के वीर सिह बुन्देला ने मुगलों के जमाने में अकबर बादशाह के दांत खट्ठे किये और राज्य विस्तार किया। इसी वंश के राजा हरदौल के त्याग की कहानी पूरे हिन्दूस्तान में बड़ी श्रद्धा के साथ गाई जाती है। ये बुन्देलखण्ड में देवता के रूप में पूजे जाते हैं। इसी वंश के महाराजा चम्पतराय ने और उनके पुत्र छत्रसाल ने मुगलों से लोहा लिया और अपने राज्य का विस्तार किया। उसी समय से इय क्षेत्र को बुन्देलखण्ड के नाम से पुकारा जाता है। इस राज्य का जितना विस्तार छत्रसाल ने किया था उसी विस्तृत क्षेत्र को बुन्देलखण्ड का नाम दिया जाता है।

छत्रसाल का संबंध दक्षिण के राजा शिवाजी से था। उन्हीं की नीति के अनुसार इन्होंने भी सम्पूर्ण भारत में हिन्दू राज्य की कल्पना की थी। इन दोनों महापुरूषों को काफी सीमा तक सफलता प्राप्त हुई इसके पश्चात बुन्देलों के वंश में ऐसा कोई राजा नहीं रहा जिसे छत्रसाल के समान शक्तिशाली कहा जा सके। छत्रसाल के समय में ही बुन्देलखण्ड छोटी छोटी रियासतों में विभाजित हो चुका था। जहां छत्रसाल के वंशज ही राज्य करते थे। बाजीराव की सहातया प्रसन्न होकर छत्रसाल ने अपने राज्य का 1/3 भाग बाजीराव पेशवा

को दिया था। राज्य का शेष भाग अपने दो पुत्रों हृदयशाह और जगतराय में बांट दिया था। धीरे–धीरे ये बुन्देले छोटी–छोटी रियासतों में बटे और स्वतंत्र हो गए।

बुन्देलों राजाओं के समय में हिन्दू कला संस्कृति की काफी उन्नति हुई। ओरछा, टीकमगढ़, दतिया, पन्ना, छतरपुर, विजावर एवं अन्य स्थानों में सुन्दरतम इमारतों का निर्माण किया गया। महल बनवाए गए तथा तालाब खुदवाए गए। जैतपुर का बेलाताल इसी समय का है यहां पर राजा छत्रसाल ने बहुत से महलों का निर्माण करवाया ओरछा का राम राजा मन्दिर और पन्ना का जुगुलकिशोर मन्दिर इसी समय का है। पन्ना का गुरू प्राणनाथ का मन्दिर विजावर का किला, राजमहल एवं मन्दिर इसी काल में निर्मित हुए थे। चरखारी, गौरिहार, बांदा, अजयगढ़, जस्सो, अलीपुरा, श्रीनगर आदि के राजाओं ने महल एवं मन्दिरों का निर्माण कराया। मन्दिर एवं महल आज भी दर्शनीय है। उसी प्रकार छतरपुर के राजा ने मन्दिर एवं महलों का निर्माण करवाया। इनमें आज भी कुछ दर्शनीय हैं बुन्देले राजा किसी धर्म विशेष से क्षुब्ध नहीं रहते थे इसलिए मुसलमानों को भी उन्होंने मस्जिदें बनबाने की इजाजत दी और पने यहां विशेषज्ञ पदो पर नियुक्त किया। छत्रसाल की सेना में कुछ मुसलमान सरदार अच्छे पद पर थे।[1]

इनके समय में कला और साहित्य को काफी उन्नति हुई केशवदास राय प्रवीण, बिहारी लाल, पद्माकर भाट, भूषण लाल एवं अन्य बहुत से कवि इस काल में हुए। छत्रसाल स्वतः एक महान कवि थे उन्होंने अपने राज्य मे कवियों को आश्रय दिया और भरण पोषण के लिए जागीरें प्रदान की। रियासती पुस्तकालयों मे इन कवियों की हस्तलिखित पुस्तकें काफी मात्रा में विद्यमान हैं। इस समय बुन्देलखण्ड की सभ्यता संस्कृति हर दृष्टि से उन्नतिशील थी। परन्तु बुन्देले राजाओं के आपस में लड़ने झगड़ने के कारण इसमें कमी आई। यदि ये सभी

---

1. राधाकृष्ण बुन्देली एवं सत्यभामा बुन्देली : बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन पृ0 130

छत्रसाल की भांति एक रहते तो सम्भावतः यहां की स्थिति कुछ और रहती।

सामन्त काल में किसी भी राजा महाराजा ने जनहित का कोई भी कार्य नहीं किया। रियासती जमाने की कोई भी ऐसी कला दृष्टिगोचर नहीं होती जिससे जनहित का पता लगे। बुन्देले राजा हरदौल अपने त्याग के लिए प्रसिद्ध हुए राजा वीर सिंह जूदेव बहादुरी के लिए प्रसिद्ध हुए। राजा छत्रसाल ने एक तालाब जैतपुर में बनबाया था। सिमें पानी न आने के कारण उन्होंने उस तालाब में नव विवाहित पुत्र एवं पुत्र वधू का बलिदान कर दिया। इस संबंध में बुन्देलखण्ड मे कई लोकगीत प्रचलित है। इसी प्रकार राजा चरखारी की दान वीरता की कहानियां प्रसिद्ध हैं। इस समय ईश्वरी नाम का एक प्रसिद्ध साहित्यकार हुआ था। जिसने मनोरंजन के लिए विभिन्न फागों की रचना की। राजा महाराजाओं से दबे व्यक्तियों की, मानसिकता गुलामों जैसी थी। व्यक्ति अपनी इच्छा को दबाकर रखता था। महल बाग, बगीचे किले इत्यादि राजाओं मे अपने लाभ के लिए बनवाए थे फिर भी बुन्देले राजाओं के समय में बुन्देलखण्ड की एक विशिष्ट संस्कृति का विकास हुआ। यह संस्कृति पहनावे खानपान रीति रिवाज और बोलचाल में देखी जा सकती है।

## बुन्देलों और मराठों का सम्बन्ध

बुन्देला स्वातन्त्रय युद्ध के प्रथम और अमर सेनानी बुन्देलखण्ड केसरी छत्रसाल बुन्देला पेशवा बाजीराव को मुहम्मद बंगश से युद्ध करने के लिए सहयोग प्रदान करने के कारण अपना दत्तक पुत्र घोषित कर राज्य का तिहाई भाग का उततराधिकारी बनाया। इसी अलौकिक घटना के कारण बुन्देलों और मराठों के सम्बन्ध सुदढ़ हो गये और बुन्देलखण्ड में मराठा शासन का सूत्रपात हुआ।[1]

---

अलौकिक बुन्देलखण्ड की पुण्य पावन बसुन्धरा पर मराठों के चरण पड़ने लगे। इनका राज्य दक्षिण में सिरोंज से लेकर उत्तर की ओर यमुना नदी तक था। छत्रसाल के पुत्र हृदयशाह और जगतराज सन्धि के अनुसार बाजीराव पेशवा को अपना अमूल्य सहयोग देते रहे। वि0 सं0 1792 में बाजीराव पेशवा के एक सरदार मल्हाराव होल्कर ने मुजफ्फर खां तथा खान दोरान को पराजित कर बहुत सा क्षेत्र अपने अधिकार में ले लिया। वि0 सं0 1783 मे जगतराज हृदयशाह के सहयोग से मराठों ने मथुरा, इलाहाबाद, इटावा पर आक्रमण किया। इस प्रकार जगतराज से बदला लेने के लिए मुहम्मद बंगश के नेतृत्व में एक विशाल सेना बुन्देलखण्ड पर आक्रमण करने आई। बाजीराव पेशवा बुन्देलों की सहायता के लिये एक विशाल सेना लेकर आया। जगतराज भी युद्ध क लिए तैयार हुआ। वि0 सं0 1793 में जैतपुर के समीप युद्ध हुआ और युद्ध में मुहम्मद बंगश को पराजय हुई। इसप्रकार हम देखते है। कि बुन्देलखण्ड में मराठों का प्रभुत्व धीरे–धीरे बढ़ने लगा। जगतराज ने युद्ध में विजय पर अत्यधिक प्रसन्नता प्रगट की उसने कई लाख रूपये और राज्य की चौथ देना स्वीकार किया मराठों की शान बढ़ गई और उसका प्रभुत्व सुदृढ़ हो गया।

पेशवा ने सहायता के बदले बुन्देलखण्ड पर अपना अधिकार सुदृढ़ कर लिया। उन्होंने बुन्देलखण्ड के सूबे अपने सरदारों को शासन करने के लिये विभक्त कर दिये । मराठों और बुन्देलों के सम्बन्ध ठोस और सुदृढ़ होते गये और बुन्देलखण्ड में मराठों का प्रभुत्व अत्यधिक रूप से जमने लगा। पेशवा ने गोविन्द बल्लभ खेर को सागर और जालौन का प्रबन्ध सौंपा। हीर विठुल डिंगठाकर को कालपी और हमीरपुर और कृष्णा अनंत तबिको बांदा और हमीरपुर का शेष भाग तथा जगतराय को चौथ वसूल करने का अधिकार घोषित किया। बाद

1. वी. आंर. आंध्रे : बुन्देलखण्ड अंडर मराठाज

में होलकर सिंधिया तथा पवार नर्मदा तथा यमुना के प्रदेश के बीच में रक्षार्थ नियुक्त किये गये।[1] ओरछा और चन्देरी के लिए मराठे अपने अधिकार मे चाहते थे और जैतपुर तथा कालिंजर को भी अपने अधिकार बने रहना चाहते थे। झांसी के किले को निमार्ण वीरसिंह देव प्रथम ने कराया था। झांसी मराठों के लिये युद्ध की दृष्टि से महत्वपूर्ण था। इसी बीच एक घटना घटी। चौथ बसूल करने मराठी सेना ओरछा पहुंची। मराठा शिविर पर धावा बोल दिया और सेना के कुछ लोग मारे गये तथा कुछ को सम्पत्ति छीन ली गई। पेशवा यह समाचार सुनकर आग बबूला हो गया और उसने नारीशंकर को ओरछा से बदला लेने के लिए भेजा। वीरसिंह देव गिरफ्तार कर लिया गया और झांसी के किले में बंन्द कर दिया गया और ओरछा को जलाकर नष्ट कर दिया गया।

मराठों को प्रमुख एवं महत्वपूर्ण शक्ति गोबिन्दराव पंत के व्यक्तित्व में अर्न्तनिहित थी। मराठों की एक विशाल सेना का निर्माण किया गया। जिसमे गोपालराव बरचे अन्नजी काणकेश्वर, बिट्ठ शिवदेव, विचन्नकर थे। मराठों के प्रसिद्ध सरदार मल्हार राव होल्कर, गंगाधर यंशबत, नारीशंकर आदि थे। गोबिन्दराव पन्त ने बुन्देलखण्ड में अपनी प्रतिष्ठा स्थापित कर अपने पुत्रों को भी बुन्देलखण्ड में अधिकार दिये।[2] सागर और उसके आसपास का प्रान्त बालाजी गोविन्द को दिया गया। इसके पश्चात् गोविन्द राव पन्त ने अपने कनिष्ठ पुत्र के साथ यमुना पार कर रूहेलों को परास्त किया। मानिकपुर और खुरजा इनके अधिकार मे आ गये। मराठों ने मुसलमानों को पराजित कर कोड़ा, जहांनाबाद और इलाहाबाद पर अपना अधिकार कर लिया। गोबिन्दराव पंत ने होल्कर और सिंधिया के सहयोग से इटावा, फफूंद, सपूराबाद पर अपना अधिकार कर लिया। विजय के बाद सिंधिया को फफूंद और होल्कर को सपूराबाद मिला। इटावा का शासक मोरोपंत नियुक्त किया गया।

1. अनिल कुमार वर्मा : बुन्देला मराठा संबंध
2. वी. आर. आन्ध्रे : बुन्देलखण्ड अंडर द मराठाज

इस प्रकार यह स्पष्टतया प्रतीत होता है कि बुन्देलखण्ड पर मराठों के प्रभुत्व की पृष्ठभूमि में गोविन्दराव पन्त का पराक्रम शौर्य से भरा हुआ व्यक्तित्व छिपा हुआ है। उसके व्यक्तित्व में अनेकों गुण विद्यमान थे। वह चतुर पराक्रमी और कुशल राजनीतिज्ञ था और यही कारण था कि उसका बुन्देलखण्ड में बोलबाला था। जहां गोविन्दराय पन्त पन्ना के शासकों पर आक्रमण कर पराजित करता था, वहां वह पनना शासकों की बुरे समय पर धन आदि से सहायता भी करता था। मुगलों को शासन व्यवस्था ठीक न होने के कारण रूहेले, राजपूत और स्वतन्त्र रूप से आपस  में इस प्रकार हम देखते है कि बुन्देलखण्ड में मराठों का प्रभाव बढ़ता ही गया। सबसे महत्वपूर्ण वातावरण मराठों के पक्ष में बना और नारीशंकर ने झांसी किले के समीप एक नगर बसाया। झांसी मराठों का महत्वपूर्ण उपनिवेदश बन गया जो मराठों को विजय का केन्द्र बिन्दु बनाया। बुन्देलों के पारस्परिक संघर्ष का लाभ मराठों ने उठाया और अपनी अत्यधिक शक्ति बढ़ा ली।[1]

बाजीराव पेशवा के निधन के पश्चात उनके पुत्र नाना साहब बालाजी बाजीराव उत्तराधिकारी बने। इस समय बुन्देलखण्ड में सत्ता के लिये संघर्ष चल रहा था। पन्ना राज्य के राजा हृदयशाह के निधन के पश्चात् उनके दो पुत्रों समाजीत सिंह और पृथ्वीराज में सत्ता के लिए संघर्ष उठ खड़ा हुआ और दोनों में युद्ध के आसार उठ खड़े हुए। पृथ्वीराज ने अपने पक्ष को मजबूत करने के लिए मराठों से सहायता की प्रार्थना की। मराठा दरबार के प्रमुख व्यक्ति गोविन्दपन्त ने पृथ्वीराज की सहायता हेतु सेना के साथ आये और युद्ध हुआ। युद्ध में समाजीत सिंह पराजित हुआ और इसके बदले में समाजीतसिंह ने पृथ्वीराज को शाहगढ़ और गढ़ाकोटा के क्षेत्र हवाले कर दिये।

सत्ता के प्रलोभन में बुन्देलों के संघर्ष से मराठों की निरन्तर शक्ति बढ़ने लगी।

---

1. रमेश चन्द्र श्रीवास्तव : हिस्ट्री आफ बुन्देलखण्ड

मराठों ने पृथ्वीराज से चौथ लोन प्रारम्भ किया। पन्ना के हीरों की तीसरा भाग भी समाजीत सिंह द्वारा मराठों को मिलन प्रारम्भ हो गया। महाराज जगतराज से भी समाजीतसिंह की सहायता करने के कारण हमीरपुर और कालपी के परगने मराठों ने ले लिए। इस प्रकार गोविन्द पन्त की सुदृढ़ शक्ति से बुन्देलखण्ड में मराठों की ठोस प्रगति होने लगी और मराठों की अधिकारिक शक्ति को वृद्धि हाने लगी। गोविन्दपन्त का मराठों में अधिक प्रभाव और सम्मान बढ़ने लगा। वे संघर्ष करने लगे थे। यही कारण था कि मराठों का प्रभुत्व समस्त भारत में छा गया था। नाना साहअ पेशबा गोविन्दराव पन्त को बहुत चाहते थे गढ़ाकोटा के राजा पृथ्वीसिंह मराठों के अच्छे मित्र थे। मराठा इतिहासकारों ने अपने ग्रन्थों में पृथ्वीराजसिंह की प्रशंसा की है। बुन्देलखण्ड के पराक्रमी वीर पृथ्वीराजसिंह ने मराठों का कई युद्धों में सहायता प्रदान की और मराठा सेना का नेतृत्व भी किया।[1]

इस प्रकार बुन्देलों और मराठों के सम्बन्ध समय समय पर स्नेह और सहयोग के प्रतीक बने तो कभी कभी कटुता और शत्रुता के प्रतीक रहे। शक्ति एवं प्रबुत्व में बाधक यदि कोई वस्तु है तो वह गृहकलह तथा पारस्परिक संघर्ष है। मराठों की शक्तिभी गृहकलह और पारस्परिक संघर्ष के कारण क्षीण और दुर्बल होने लगी। मराठों की आपसी फूट का लाभ मुसलमानों ने उठाया। नादिरशाह का दिल्ली पर आक्रमण हुआ और भंयकर लूटपाट हुई। बाद में अहमदशाह अब्दाली का भयंकर और आक्रमण हुआ और मराठों की भयंकर पराजय हुई। रघुनाथ राव के ऊपर निजाम पर दृष्टि रख्ने का काम सौंप कर पेशबा ने मालवा पर प्रवेश दिकया। पेशवा को एक पत्र प्राप्त हुआ जिसमें संकेत था:– "दो मोती गल गये हैं, पच्चीस सोने की मुहरें खो गई और चांदी और तांबे की कोई गिनती नहीं।"[1] पेशवा के हृदय पर दुःख समाचार से ठेस लगी। वास्तव मे यह समाचार पतन का प्रतीक था। अब मराठों की शक्ति का ह्रास होने लगा। पराजित सेना वापिस आने लगी। मराठों की शक्ति का वातावरण निराशा

1. मोतीलाल त्रिपाठी 'अशांत' : बुन्देलखण्ड का इतिहास पृ0 102

और अंधकार में डूब गया। युद्ध में मराठा सेना को भयंकर हानि पहुंची। सेना टोलियों मे विभाजित होकर निराश लौटने लगी। वातावरण में घोर निराशा का प्रवेश होने लगा। बहुत से मराठा सरदार घायल हुए और गोविन्दराव पन्त मारे गये और पेशवा के पुत्र विश्वास राव का युद्ध मे निधन हो गया। पेशवा बीमार हो गए। और सिरोंज चले गये। मराठा सेना ने एक बार फिर मराठा सम्मान के प्रतिष्ठित करने का बीड़ा उठाया और जयपुर के राजपूत शासक माधव सिंह को मगरोल नामक स्थान पर 30 नवम्बर 1761 में पराजित किया। इस प्रकार मराठा साम्राजय की प्रतिष्ठा फिर से स्थापित हुई।

= = = =0= = = =

1. मोतीलाल त्रिपाठी 'अशांत' : बुन्देखण्ड का इतिहास पृ0 103

# अध्याय—3

# प्रथम स्वाधीनता संग्राम में बुन्देलखण्ड का योगदान (1801—1857)

(i) बुन्देलखण्ड की तत्कालीन स्थिति

(ii) 1857 की क्रांति की पृष्ठभूमि

(iii) क्रांति का स्वरूप

(iv) क्रांति का परिणाम

बाजीराव पेशवा के बुन्देलखण्ड क्षेत्र में आने के बाद और छत्रसाल को सहायता देने के पश्चात बुन्देलखण्ड में मराठों का राज्य स्थापित हुआ। इनका राज्य दक्षिण में सिरोंज से लेकर उत्तर की ओर यमुना नदी तक चला गया है। बल्कि इस राज्य की सीमायें यमुना नदी को पार कर गई थी। इनकी विशाल वाहिनी को देखकर मुगल भी कांपने लगे थे। मल्हारराव होल्कर बाजीराव पेशवा के एक सरदार थे वि0 सं0 1792 में इन्होंने बुन्देलखण्ड से आगे तक धावा मारा और मुजफ्फर खाँ तथा खान दौरान को हराकर बहुत सा क्षेत्र अपने अधिकार में कर लिया। इनके आक्रमणों से छत्रसाल के पुत्र जगतराज और हृदयशाह सहायता देते रहे। इनकी सहायता से वि0 सं01783 में मराठों ने मथुरा, इलाहाबाद इटावा आदि स्थानों पर आक्रमण किया। इस कार्य में जगतराय का विशेष सहयोग था। इसीलिये दिल्ली दरबार ने मुहम्मद बंगस को जगतराय से युद्ध करने का आदेश प्रदान किया आदेश पाते ही मुहम्मद बंगस एक भारी सेना लेकर बुन्देलखण्ड पर आक्रमण करने आया। जगतराय भी उस सेना का मुकाबला करने को तैयार हुआ।इस युद्ध में बाजीराव पेशवा भी अपनी बड़ी सेना के साथ बुन्देलों की सहायता के लिये आया। वि0 सं0 1793 में जैतपुर के समीप युद्ध हुआ इस युद्ध में मुहम्मद बंगस दुबारा हारा। जगतराय ने प्रसन्न होकर पेशवा को कई लाख रूपये और अपने राज्य की चौथ देना स्वीकार किया। बाजीराव पेशवा का कर्तव्य था । इस बार उन्हें सहायता के बदले बहुत सा ध ान प्राप्त हुआ।[1] साथ ही कई स्थानों की चौथ मिलने लगी। इसलिये पेशवा ने बुन्देलखण्ड के सूबे अपनेसरदारों को शासन करने के लिये बांट दिये। गोविन्द बल्लाल खेर जो सबसे बहादुर थे पेशवा ने उन्हें सागर और जालौन का प्रबंध सि0 सं0 1792 में अपने भतीजे की ओर से सौंपा हृदयशाह ने हीरे की खदान मं काम करने की अनुमति प्रदान कर दी थी। गोविन्द बल्लाल खेर

1. भगवान दास गुप्त : हिस्ट्री आफ बुन्देलखण्ड अंडर द मराठाज

इस काम को देखता था। हीर बिट्ठल डिंगठाकर को कालपी और हमीरपुर के कुछ परगने और कृष्णा जी अनंत तांबे को बांदा और हमीरपुर का शेष भाग तथा जगतराय के राज्य की चौथ वसूल करने का अधिकार दिया गया। इस प्रकार मराठों का अधिकार एवं प्रभाव पूरे बुन्देलखण्ड में बढ़ गया। बुन्देलों के आपसी संघर्षों का लाभ मराठों ने उठाया। मराठे एवं बुन्देले दोनों ही मुगलों के विरूद्ध थे इसलिये उत्तर की ओर से मुगलों के आक्रमणों की कोई संभावना नहीं रही। हरि विट्ठल डिंगठाकर और कृष्णा जी अनंत तांबे ने कुछ दिन बुन्देलखण्ड पर शासन किया परंतु इनमें आपसी संघर्ष होने के कारण ये सारे प्रांत गोविंद बल्लाल खेर के हाथ में आ गये इसी बीच बाजीराव पेशवा ने होल्कर सिंधिया तथा पंवार को स्थाई रूप से नर्मदा तथा यमुना प्रदेश के बीच रक्षार्थ नियुक्त कर दिया था। क्योंकि यहाँ से बुन्देलखण्ड के पश्चिम में राजपूतों पर नियंत्रण रखा जा सकता था। यहाँ से उत्तर की ओर दोआब तथा अवध में प्रवेश सम्भव था तथा पूर्व में वाराणसी तथा बंगाल तक धावे बोले जा सकते थे। बुन्देलखण्ड में स्थाई नियुक्ति से सेना को आवश्यकतानुसार कहीं भी भेजा जा सकता था। ये चाहते थे कि ओरछा और चंदेरी के प्राचीन गढ़ पर इनका अधिकार हो जाने तथा जैतपुर तथा कालिंजर इनके अधिकार में बने रहे। इनके लिये बुन्देलखण्ड में पहुंचने के दो रास्ते थे पहला रास्ता उज्जैन से था, दूसरा रास्ता नर्मदा के तट से। झांसी का पुराना नाम बलवंत नगर था जहाँ पर एक छोटी सी पहाड़ी पर वीर सिंह जू देव ने एक गढ़ बनाया था।[1] यहां भी मराठों के लिये सामरिक महत्व का था। 1742 ईस्वी में ओरछा नरेश के पास चौथ वसूल करने के लिये मराठा सेना गई। एक अंधेरी रात में राजा वीर सिंह जूं देव ने मराठा शिविर में आक्रमण कर दिया कुछ लोगों को मार डाला और इनकी सम्पत्ति छीन ली इसलिये बाद में नारी शंकर को पेशवा ने बदला लेने को भेजा। वीर सिंह जूं देव पकड़ा गया। हथकड़ी,

---

1. राधाकृष्ण बुन्देली सत्यभामा : बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन पृ0 133

बेड़ी, डालकर उसे झांसी के किले में कैद कर लिया गया तथा ओरछा को जलाकर मिट्टी में मिला दिया गया। बाद में संधिवार्ता होने पर उसे मुक्त कर दिया गया। ओरछा तो उसे वापिस मिला परन्तु झांसी, मराठों को मिल गई। कुछ समय पश्चात् झांसी, मराठों का मुख्य स्थान बन गई। नारीशंकर यहां का प्रथम सूबेदार बनाया गया। सन् 1756 ईस्वी तक यह यहां का सूबेदार रहा। कुछ समय बाद उसने चरी भी जीत ली। ओरछा पूर्णरूपेण नष्ट हो जाने के पश्चात वीर सिंह जूं देव ने टेहरी अर्थात् टीकमगढ़ को अपनी नई राजधानी बनवाया। नारीशंकर ने झांसी में किले के निकट एक नगर बसाया और यह मराठों का उपनिवेश हो गया।[1]

बाजीराव पेशवा के मरने के पश्चात् उनके पुत्र नाना साहब बाला जी बाजीराव के नाम से प्रसिद्ध हुये इनके समय महाराज छत्रसाल के पुत्र हृदयशाह की मृत्यु हो गई थी। उनके दो पुत्र सभा सिंह और पृथ्वीराज राज्य के लिये आपस में लड़ रहे थे। पृथ्वीराज ने अपने पक्ष में मराठों की सहायता मांगी। गोविन्दपंत पृथ्वीराज को सहायता करने के लिये आये। पन्ना के समीप युद्ध हुआ जिसमें सभा सिंह परास्त हुआ। हारने के बाद सभा सिंह ने शाहगढ़ और गढ़ा कोटा का क्षेत्र पृथ्वीराज को दे दिया और अपने राज्य का चौथ देने का वचन दिया। पृथ्वीराज भी अपने राज्य का चौथ मराठों को देने लगे। सभा सिंह ने पन्ना के हीरों का तीसरा भाग भी मराठों को देने का वचन दिया। जैतपुर के राजा जगत राय ने सभा सिंह की सहायता की थी इसलिये मराठों ने उससे भी कूद भाग मांगा। बुन्देलों में एकता न होने के कारण मराठे को कहते थे उन्हें मानना पड़ता था। मजबूरन जगतराय ने अपने राज्य के हमीरपुर और कालपी के परगने मराठों को दे दिये। गोविन्द पंत की सहायता से मराठों का अधिकार बुन्देलखण्ड में बढ़ता चला गया। इसलिये गोविन्द पंत का मान मराठा दरबार में बढ़ गया। इसलिये गोविन्द

1. राधाकृष्ण बुन्देली सत्यभामा : बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन पृ0 134

पंत का मान मराठा दरबार में बढ़ गया। इस समय मराठों ने एक बड़ी सेना तैयार कर ली इस सेना में गोपालराव बरवे, अन्ना जी काणकेश्वर विट्ठल शिवदेव, विंचन्कर थे। मल्हार राव होल्कर गंगाधर यशवंत और नारीशंकर मराठों के प्रसिद्ध सरदार थे।

गोविन्द राव पन्त ने सागर और उसके आस–पास का प्रान्त अपने लड़के बालाजी गोविन्द के अधिकार में कर दिया। इनकी सहायता के लिये रामराव गोविन्द, केशव शंकर कान्हेरे भी काजीराम करकरे, रामचन्द्र गोविन्द, चॉदोरकर आदि कर्मचारी रखे गये। सागर का प्रबन्ध इनके ऊपर सौंपकर गोविन्द राव पन्त अपने छोटे लड़के गंगाधर गोविन्द को साथ लेकर कालपी के समीप यमुना पार का अवर्तेद में एक बड़ी सेना के साथ पहुंचे। इस समय यहां रोहेला लोगों का राज्य था। गोविन्द राव पन्त ने रूहेलों को हराया। मानिकपुर और खुरजा को अपने अधिकार में कर लिया। कोड़ा जहांनाबाद और इलाहाबाद पर भी मराठे अपना अधिकार जमाना चाहते थे, परन्तु वहां पर मुसलमानों ने उन्हें रोका। मराठों ने मुसलमनों की सेना को हरा दिया और उन प्रान्तों में मराठों का अधिकार हो गया। सिंधिया और होल्कर ने इस अभियान में कोई सहायता नहीं की। अगले वर्ष गोविन्द राव पंत ने होल्कर और सिंधिया से सहायता ली। इस वर्ष इन्होंने इटावा, फफूंद, सपूराबाद जीत लिया। इसमें फफूंद सिंधिया को मिला और सपूराबाद होल्कर को मिला, बाकी भाग पर गोविंद पंत का अधिकार रहा। इटावा में इनकी ओर से मोरोपत (मोरो विश्वनाथ दिंगणकर) शासक नियुक्त हुआ। मोरोपंत के सहायक कृष्णा जी रामलंघाटे थे। मोरोपत बाजीराव पेशवा के विश्वासपात्र सेना नायक थे। गौड़ राजाओं को जीतने में इसका विशेष सहयोग था। इन्होंने गौड़ राजा के हाथी से एक बहुमूल्य झूल ले ली थी जो बाद में अंग्रेज गर्वनर जनरल इन्दौर के पास पहुंच गई।

नाना साहब पेशवा गोविन्द राव पंत को बहुत चाहते थे। जब उन्हें कर्नाटक पर

आक्रमण करना था, उस समय उन्होंने गोविन्द राव पंत से सहायता मांगी थी। गोविन्द राव पंत ने उन्हें 96 लाख रूपया प्रदान किये। रूपाया पाकर नाना साहब अत्यन्त प्रसन्न हुये। गढ़ाकोटा के राजा पृथ्वीसिंह इनके परम मित्रों में थे, सभासिंह को पराजित कर मराठों ने उन्हें पन्ना राज्य से पृथक राज्य दिलाया था। मराठा इतिहासकरों ने पृथ्वीराज सिंह की बहुत प्रशंसा की है। परन्तु सभासिंह की जनता उससे बहुत प्रसन्न थी। पृथ्वीराज मराठा दरबार में कभी–कभी जाया करते थे। एक बार ये तीन वर्ष्ज्ञ तक मराठा दरबार में रहे कई युद्धों में इन्होंने मराठों की सहायता कर इन्होंने मराठों की सेना का नेतृत्व भी किया।[1]

गोविन्द राव पन्त पराक्रमी होने के साथ–साथ चतुर राजनैतिक एवं धनीमानी व्यक्ति थे। वे पन्ना शासकों की असमय पर मदद करते थे। झांसी, कालपी आदि स्थानों में पर्याप्त मात्रा में साहूकार थे, आवश्यकता पड़ने पर इन साहूकारों से धन लेकर पन्ना भेजा करते थे। दिल्ली में मुगल शासन की कुव्यवस्था होने के कारण उत्तर में रूहेले, राजस्थान में राजपूत और भरतपुर में जाट स्वतंत्र हो गये थे। आपसी संघर्ष में इन लोगों की शक्ति क्षीण हो गई थी। सिक्खों का राज्य भी अभी कायम नहीं हो पाया था। इसी कारण से मराठा शक्ति पूरे भारतवर्ष में छा रही थी। मराठा इनकी वीरता से अभारी थे। मराठों के विस्तृत साम्राज्य की देखभाल अलग–अलग मराठे सरदार करते थे। बरार में इनके शासन की व्यवस्था राधव जी भेसले के हाथ में थी, मालवा की व्यवस्था राणा जी सिंधिया के हाथ में थी, तथा मल्हार राव होल्कर भी इन्दौर में रहकर व्यवस्था सम्भालते थे।

विभिन्न समयों में आपसी गृह कलह के कारण मराठों की शक्ति धीरे–धीरे कमजोर होने लगी। इन्हीं दिनों दिल्ली में नादिरशाह का आक्रमण हुआ नादिर शाह को भयंकर लूटपाट

1. वी. आर. आन्धे : बुन्देलखण्ड अंडर द मराठाज

के उपरान्त अहमदशाह अब्दाली का आक्रमण हुआ। इस युद्ध में मराठों की भीषण पराजय हुई। पेशवा भी यही से परिस्थिति पर दृष्टि रखे था। रघुनाथ राव के ऊपर निजाम पर दृष्टि रखने का काम सौंप कर पेशवा ने मालवा पर प्रवेश किया। उन्होंने सदाशिव भाऊ को एक पत्र लिखा कि मेरे आने तक अहमद शाह अब्दाली को रोके रहो। वह चाहता था कि अफगान सेना को दोनों ओर से मराठा सेना कुचल दे परन्तु उसी समय घटना चक्र बदल गया। इस आशय का एक पत्र पेशवा के पास भेजा गया जिसमें कहा गया था–''दो मोती गल गये हैं पच्चीस सोने की मुहरें खो गई तथा चाँदी और ताबें की कोई गिनती नहीं हो सकती है। पेशवा इस समाचार से बहुत दुःखी हुआ। धीरे–धीरे हारी हुई सेकना टोलियों में वापिस आ गईं कुछ दिनों तक घोर निराशा छायी रही। इसमें पेशवा के पुत्र विश्वास राय की मृत्यु हो हुई, गोविन्द राव पन्त भी मारे गये बहुत से सरदार घायल हुये। पेशवा स्वतः बीमार हो गया। नारोशकर तथा मल्हार राव विषम परिस्थितियों में दिल्ली से भाग गये। पेशवा भेलसा से उत्तर की ओर चल पड़ा और बत्तीस मील दूर पिछोर तक आ गया। कुछ समय रूक कर वह पुनः दक्षिण की ओर लोट पड़ा फिर वह इन्दौर होता हुआ सिरोंज में आकर दो मास रहा। चूंकि पेशवा के सरदार बुद्धिमान और वीर थे। उन्होंने चरमराते हुये मराठा साम्राज्य को पुनः सुदृढ़ किया। कुछ दिनों तक नारी शंकर और मल्हार राव से कठोरता का व्यवहार किया गया। इउनके अधिकृत सूत्रों को छीन लिया गया। परनतु साधारण परिस्थिति आने पर इनके राज्य इन्हें पुनः वापिस कर दिये गये। मल्हार राव नें मराठा सत्ता के सम्मान को दुबारा प्रतिष्ठित करने का बीड़ा उठाया। इस समय राजपूत शासक जयपुर का माधव सिंह था। मराठों ने उससे कर मांगा, माधव सिंह ने कर देने से इन्कार कर दिया जिससे मंगरोल नामक स्थान पर 29, 30 नवम्बर

1961 में घोर संग्राम हुआ। इस युद्ध में माधव सिंह की पराजय हुई और मराठा साम्राज्य पुनः प्रतिष्ठा को प्राप्त हुआ।

## बुन्देलखण्ड में अंग्रेजों का प्रवेश

बुन्देलखण्ड की स्थिति समय अत्यन्त सोचनीय थी इसके दक्षिण में गौड़ लोगों का राज्य था जो धीरे–धीरे संकुचित होता जाता था। मराठों और गौड़ राजाओं से अधिकतर युद्ध होते थे। पेशवा ने महाराज शाह पर आक्रमण किया उसे हराया अन्त में वह युद्ध में मारा भी गया। महाराजशाह के पुत्र शिवराजशाह ने मराठों से सुलह कर ली और चार लाख रूपया सलाना कर देना स्वीकार कर लिया। यह चौथ सागर के मराठों को मिलती थी। कुछ समय बाद नागपुर के भोंसले भी लालच में आकर गौड़ राजाओं से चौथ मागने लगे। परन्तु गौड़ राजा न तो उन्हें चौथ दे सकता था और न लड़ ही सकता था इसलिये उसने अपने राज्य के गढ़ भोंसले को दे दिये। शिवराज शाह के मरने पर उसका पुत्र दुर्जन शाह वि0 सं0 1806 में गद्दी पर बैठा इससे प्रजा अंसुष्ट थी। इसलिये इसके काका निजामशाह ने इसे मरवा डाला और राजा बन गया निजामशाह का शासन प्रबन्ध अच्छा था। उसने मराठों को चौथ देना बंद कर दिया। सागर वालों ने निजामशाह पर आक्रमण कर दिया उसे हराकर उसके भतीजे नरहरशाह को यहां का राजा बनाया। इसी समय नागपुर वालों ने निजामशाह के पुत्र सुमेरशाह का पक्ष लेकर नरहरशाह को गद्दी से उतार दिया और सुमेरशाह को राजा बनाया। इसी समय सागर वालों ने गढ़ा पर चढ़ाई की सुमेर शाह को कैद कर लिया और नरहरशाह को दुबारा राजा बनाया। नरहरशाह नाम मात्र का राजा था। गढ़ा में मराठा सेना रहती थी और शासन में हस्तक्षेप करती थी। नरहरशाह अपने मंत्री गिरि की सहायता से मराठों से स्वतंत्र होने का प्रयास कर रहा था।[1]

---

1. रमेश चन्द्र श्रीवास्तव : हिस्ट्री आफ बुन्देलखण्ड

इस समय बुन्देले राजाओं में भी सत्ता संघर्ष चल रहा था। गुमान सिंह, खुमान सिंह के अतिरिक्त पन्ना राज्य में भी उत्तराधिकार के लिये संघर्ष हो रहे थे। वि0 सं0 1834 में हिन्दू पति स्वर्गवासी हुये। इनके बड़े पुत्र सरमेद सिंह को राजा बनाकर अनुरूद्ध सिंह को राजा बनाया गया। इन दोनों का पक्ष लेकर पन्ना राज्य के दो दीवान कायम जी चौबे और बेनी हुजुर में संघर्ष हुआ। इसी प्रकार के अन्य अंग्रेजों ने उठाया इस समय अंग्रेजों का विचार कालपी पर अधिकार कर लेने का था। कालपी की गिनती प्रधान नगरों में थी। इस नगर से चारों ओर आक्रमण करना आसान था। मुसलमानों ने भी इससे पहले बंगाल में आक्रमण करने के पूर्व कालपी पर अधिकार करना चाहते थे। बुन्देलखण्ड के मराठे जोरधोवा के विरूद्ध थे। उन्होंने अंग्रेजों को आगे बढ़ने से रोकना चाहा। इस समय कालपी में गंगाधर गोविन्द का अधिकार था। कलकत्ता से जो सेना मध्य भारत के लिये रवाना हुई उसका नेतृत्व कर्नर बेली कर रहे थे। उन्होंने गंगाधर गोविन्द से मध्य भारत होते हुये आगे बढ़ने की अनुमति मांगी। गंगाधर गोविन्द ने यह अनुमति प्रदान नहीं कि इसलिये उन्होंने वि0 सं0 1835 में कालपी पर आक्रमण किया और उस पर अधिकार कर लिया। मराठों ने किसी प्रकार का धेय नहीं छोड़ा और अंग्रेजों को कालपी से आगे न बढ़ने दिया। चार माह तक अंग्रेज कालपी में रूके और आगे नहीं बढ़ सके।

अंग्रेजों का गवर्नर वारेन हेस्टिंग बहुत कूटनीतिज्ञ था। उसने नागपुर के भोंसले से एक गुप्त सन्धि की जिसके अनुसार भोंसले ने अंगेजी सेना को न रोकने का वचन दिया।[1] भोपाल के नबाव को भी अंग्रेजों ने मिला लिया था अब अंग्रेजों को भय मात्र विन्ध्याचल पर्वत और गंगाधार गोविन्द वाले क्षेत्र से था। अंग्रेजों ने दूसरा उपाय सोचा। इनके सेनापति गार्ड ने

---

1. के. पी. त्रिपाठी : हिस्ट्री आफ बुन्देलखण्ड

कांलिजर के किलेदार कायम जी चौबे को अपनी ओर मिलाया और केन नदी के किनारों से अंग्रेजों को अगे बढ़ने की अनुमति थी। कर्नल गार्ड के नेतृत्व में अंग्रेजी सेना मिलासा, भेलसा और होशंगाबद होती हुई दक्षिण पहुंची। गार्डस का सिंधिया से युद्ध हुआ। उसे परास्त करता हुआ वह महाराष्ट्र में पहुंच गया और वहाँ मराठों से युद्ध हुआ। यह युद्ध विक्रमी संवत 1839 में समाप्त हुआ।

इसी समय अंग्रेजों और मराठों में संधि हो गई। राधोवा को पेशवा न बना कर नारायण राव के पुत्र माधव नारायण को पेशवा बनाया गया। इस तरह नाना फड़नवीस की इच्छा पूरी हुयी। बुन्देलखण्ड से अंग्रेजों के निकलने से राज्य में अव्यवस्था फैली। परन्तु अंग्रेजों के चले जाने के बाद कालपी में मराठों का दुबारा अधिकार हो गया। इधर अंग्रेजों ने कायम जी चौबे को बेनी हुजूर के विरूद्ध सहायता देने का वचन दिया था। जब दोनों का युद्ध हुआ तो उन्होंने कोई सहायता न की।

कायमजी चौबे ने सरभेद सिंह का पक्ष लिया बांदा के राजा गुमान सिंह ने अपने प्रसिद्ध सेनापति नोने अर्जुन सिंह को सरभेद सिंह की सहायता के लिये भेजा। यह युद्ध बहुत भयंकर था। बहुत से इतिहासकार इसे बुन्देलखण्ड का महाभारत कहते हैं। यह युद्ध गठेवरा में विक्रमी सं0 1840 में हुआ। इस युद्ध में कई वीर मारे गये। सारा बुन्देलखण्ड वीरों से खाली हो गया। लड़ते हुये नौने अर्जुन सिंह के शरीर में 18 घाव लगे। नौने अर्जुन सिंह की विजय हुई। बेनी हुजूरी युद्ध में मारा गया। पन्ना का राज्य सरभेद सिंह को मिल गया। अंग्रेजी सेना को कालपी से गुजरते समय बुन्देलखण्ड की परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान हो गया था। उन्होंने यह समझ लिया था कि आपसी फूट का फायदा उठाकर बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी शासन स्थापित किया जा सकता है।[1]

1. राधाकृष्ण बुन्देली सत्यभामा बुन्देली : बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन पृ0 139

भारत के विभिन्न राज्यों में संघर्षो के कारण अंग्रेजी शासन की प्रगति के मार्ग खुल गये। राजस्थान में जयपुर और जोधपुर के राजाओं का युद्ध जो उदयपुर की राजकुमारी कृष्णकुमारी को लेकर हुआ था। वह राजकुमारी की आत्म हत्या करने के बाद समाप्त हुआ। पंजाब में रणजीत सिंह का शासन अच्छा था। इसलिये वहां कोई अशान्ति नहीं थी।

मराठों ने अंग्रेजों की सत्ता उखाड़ने के कई प्रयत्न किये। इसमें बाजीराव पेशवा ओर सिंधिया तथा होल्कर ने प्रमुख भूमिका निभाई। लार्ड मिंटो के बाद लार्ड हेस्टिंग्स कम्पनी के गर्वनर जनरल हुये। 1817 में जो दूसरी संधि हुई उसके अन्तर्गत बुन्देलखण्ड का बहुत सा भाग अंग्रेजों के आधीन हो गया। इसी प्रकार की एक संधि मराठों की ओर से सन् 1806 में बुन्देलखण्ड के प्रशासक गोविन्द राव ने की थी। इस संधि के कारण बुन्देलखण्ड के 57 ग्रामों में अंग्रेजों का अधिकार हो गया था। जब दुबारा अंग्रेजों और मरहठों का संघर्ष हुआ उस समय पूना के पेशवा अंग्रेजों के आधीन हो गए और बुन्देलखण्ड क्षेत्र पर पेशवा दरबार का अधिकार समाप्त हुआ। इस समय बाजीराव द्वितीय ने अंग्रेजों से स्वतंत्र होने का प्रयास किया। इस समय अंग्रेजी सेना का एक रेजीडेंट पूना में रहता था उसे जब यह हाल मालुम हुआ तो वह भाग कर किरंकी पहुंचा। पेशवा ने उस पर आक्रमण किया। परन्तु रेजीडेंट को अंग्रेजी सहायता मिल जाने के कारण उसने पेशवा को हरा दिया और बन्दी बना लिया। इस समय नागपुर के भोंसले ने भी आक्रमण किया परन्तु वे हार गए। सन् 1818 में अंग्रेजों ने बाजीराव पेशवा के सभी प्रदेश अपने अधिकार में कर लिए। बाजीराव पेशवा कानपुर के पास बिठूर में रहने लगे। उनके खर्च के वास्ते 8 लाख रूपया वार्षिक पेंशन बांधी गई। इस प्रकार मराठों को हराकर अंग्रेज भारतवर्ष के शक्तिशाली शाासक बन गये। यह देखकर अन्य राजाओं ने भी इनसे संधियाँ कर ली।[1]

जालौन के नाना साहब की संधि होने के पश्चात् बुन्देलखण्ड पर अंग्रेजों का प्रभाव

---

1. राजकुमार भाटिया : बुन्देखण्ड में अंग्रेजों का प्रथम प्रवेश पृ0 102

बढ़ गया। सागर के विनायकराव चांदोरकर ने भोंसले और पिंडारियों को सहायता दी थी इसलिये अंग्रेजों ने इनका राज्य भी छीन लिया और 2 लाख 50 हजार रूपया वार्षिक पेंशन दे दी। इसी समय रूकमाबाई ने बलवंतराव उर्फ बाबा साहब को गोद लिया था। इसलिये इन्हें भी 5 हजार रूपया वार्षिक पेंशन दे दी गई और इनके वंशजों को जबलपुर में बसा दिया गया।

झाँसी में रघुनाथ हरि की मृत्यु के पश्चात् उनके भाई शिवराव भाऊ सूबेदार बने। उनके अल्प वयस्क पुत्र का नाम रामचन्द्रराव था। उनकी ओर से उनकी माता सखूबाई राज्य का कार्य देखती थी। उन्होंने एक बार अपने पुत्र को मारने का षड़यंत्र रचा इसलिये इन्हें कैद कर लिया गया और रामचन्द्र राव को सूबेदारी करने के लिये स्वतंत्र छोड़ दिया गया। जब अंग्रेजों ने पेशवा राज्य पर अधिकार कर लिया उस समय रामचन्द्र राव से सीपरी छावनी में अंग्रेजों से एक संधि हुई। इस संधि के अनुसार रामचन्द्र राव का अधिकार अंग्रेजों ने स्वीकार कर लिया। यह संधि 1817 में हुई जब 1818 में पेशवा से दूसरी संधि हुई उस समय गोविंदराव का अधिकार जालौन और गुरूसंराय में था।[1]

इस समय सागर जिले का धमौनी परगना भोंसले के हाथ में था। अंग्रेजों से संधि हो जाने के कारण यह इलाका सन् 1818 में अंग्रेजों को मिल गया गढ़ाकोटा मालथौन देवरी, गैरझामर और नाहर मऊ जो अर्जुन सिंह ने सिंधिया को दिये थे क्षेत्र अंग्रेजों को सौंप दिये। इस प्रकार दमोह और सागर का क्षेत्र अंग्रेजों के हाथ में आ गया।

## बुन्देलखण्ड की तत्कालीन स्थिति

1857 की क्रान्ति से पहले बुन्देलखण्ड विषम परिस्थितियों से गुजर रहा था। जालौन के नाना गोविन्द राव की मृत्यु सन् 1812 में हो गई थी। इसके पश्चात् इनके पुत्र बाला जी गोविन्द जालौन के शासक नियुक्त हुये। अंग्रेजों के पालटिकल एजेन्ट ने इनका

1. राजकुमार भाटिया : बुन्देखण्ड में अंग्रेजों का प्रथम प्रवेश पृ0 103

उत्तराधिकार स्वीकार कर लिया। नाना साहब की मृत्यु पर बुन्देलखण्ड के कई राजाओं ने शोक प्रगट किया। इनके समय में जालौन का शासन नारो भास्कर देखते थे। और गुरसंराय का प्रबन्ध दिनकर राव अन्ना देखते थे। बालाजी गोविन्द के शासन से प्रजा बहुत सुखी थी। इनके दरबार में **राजाराम** नाम के एक कवि रहते थे जिन्होंने इनकी बड़ी प्रशंसा की है, जैसे–

**जनक ज्यों ज्ञानिन में जामवंत स्वापद में**

**ध्रुव जिमि ध्यानिन में सुन्दर विराजा है।**

**परसुराम वीरन में राम रनधीरन में**

**गग जल नीरन में सिद्ध करत काजा है।**[1]

कुछ समय बाद जब बाला जी गोविन्द की मृत्यु हो गई नारो भास्कर और दिनकर राव अन्ना में मनमुटाव हो गया। इसका कारण यह था कि बालाजी गोविन्द की विधवा ने शिवराज गोविन्द राव नाम के एक पुत्र को गोद लिया। उस समय दिनकर राव अन्ना को यह बात अच्छी नहीं लगी। अंग्रेजों ने मध्यस्थता करके दोनों में समझौता कराया और गोविन्द राव को गोद लेने की अनुमति दे दी। इस प्रकार गोविन्द राव जालौन के अधिकारी हो गये। यहां की राज्य व्यवस्था इनकी माता लक्ष्मीबाई देखती थी। नारी शंकर को यह बात ठीक न लगी और वह अलग रहने लगा और धोखे से मारा गया। गोविन्द राव राज्य व्यवस्था देखने में असमर्थ था। इसलिये सन् 1838 में जालौन सूबे में महोबा, रामपुर, मुहम्मदाबाद आदि परगने थे। दो वर्ष बाद गोविन्द राव की मृत्यु हो गई इसके कोई संतान नहीं थी इसलिये इस राज्य पर बालाजी गोविन्द की बहन और दिनकर राव अन्ना के पुत्र केशवराव ने अपना दावा किया। न्याय के अनुसार दिनकर राव अन्ना गोविन्द पंत के पौत्र थे इसलिये केशवराव का अधिकार था। परंतु अंग्रेजी सरकार ने किसी की न सुनी और जालौन को अपने अधिकार में कर लिया।

1. राधाकृष्ण बुन्देली एवं सत्यभामा बुंदेली : बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन पृ0 142

गुरसरांय भी छत्रसाल और बाजीराव के समय से मराठों के अधीन हो गया था। यहां का शासन भी गोविन्दपंत देखते थे उन्होंने अपनी ओर से दिनकर राव अन्ना को नियुक्त किया था। इनकी राज्य व्यवस्था बहुत अच्छी थी। इनके बड़े पुत्र बालकृष्ण भाऊ का स्वर्गवास जल्दी हो जाने के कारण इनके दूसरे पुत्र केशव राव उत्तराधिकारी हुये। अंग्रेजों ने इन्हें गुरसरांय का शासक माना। सन् 1857 की राज्य क्रांति में इन्होंने अंग्रेजों की बहुत सहायता की थी।

सन् 1817 की संधि के अनुसार रामचन्द्र राव को सदैव के लिये झांसी का राज्य मिल गया था। इनका स्वर्गवास सन् 1835 में हुआ ये निःसंतान थे इसलिये इनकी विधवा ने अपनी ननद के पुत्र कृष्णराव चंदोरकर दो गोद लिया। यह सागर के सूबेदार विनायक चंदारेकर का नाती था। अंग्रेजी सरकार ने इस गोद नामे को स्वीकार नहीं किया इसलिये शिवराम भाऊ के दूसरे पुत्र रघुनाथ राव राज्य के मालिक हुये। ये चरित्रहीन और दुर्व्यसनी थे इसलिये अंग्रेजों ने झांसी राज्य अपने अधिकार में ले लिया। रघुनाथ राव का स्वर्गवास सन् 1838 में हुआ। रघुनाथ राव की पत्नी स्वयं रानी होना चाहती थीं इसके अतिरिक्त चार व्यक्तियों ने अपने दावे प्रस्तुत किये। रघुनाथ राव की गजरा दासी से उत्पन्न पुत्र अली बहादुर भी उत्तराधिकारी होने के लिये अपना दाव पेश करता था। बहुत से लोग इस अली बहादुर के बांदा नबाव समझ बैठते हैं, परन्तु ऐसा वास्तव में नहीं है। इसी समय शिवराम भाऊ के पुत्र गंगाधर ने भी अपना दावा प्रस्तुत किया। रामचन्द्र राव के गोद लिये पुत्र कृष्णराव ने भी अपना दावा पेश किया। इन दावों का निर्णय करने के लिये अंग्रेज सरकार ने एक समिति बनाई जिनके सदस्य ग्वालियर के रेजीडेंस, स्पेयर्स तथा दो अन्य अंग्रेज थे। उन्होंने गंगाधर राव के पक्ष में अपना निर्णय दिया और गंगाधर राव झांसी के राजा हुये।

1. सुन्दर लाल : भारत में अंग्रेजी राज

गंगाधर राव की राज्य व्यवस्था बहुत अच्छी थी उन्होंने झाँसी राज्य का कर अदा किया और इसी आय बढ़ाई। ये धार्मिक प्रकृति के व्यक्ति थे। तीर्थाटन में इनकी रूचि थी। इनकी पत्नी का नाम **महारानी लक्ष्मीबाई** था।[1] इनके एक पुत्र भी हुआ जिसका स्वर्गवास तीन माह की आयु में हो गया। सन् 1843 में गंगाधर राव का स्वास्थ्य गिर गया। उस समय उन्होंने वासुदेव नेबालकर के पुत्र दामोदर राव को गोद लिया और उसका नाम दामोदर राव गंगाधर राव रखा।

कुछ दिनों पश्चात् गंगाधर राव का स्वर्गवास हो गया। इस समय महारानी लक्ष्मीबाई की अवस्था केवल 18 वर्ष की थी। सन् 1835 में आगरा और इलाहाबाद क्षेत्र को मिलाकर अंग्रेजों ने एक नये प्रान्त का गठन किया इस प्रदेश का नाम पश्चिमोत्तर प्रदेश रखा गया। इसमें बुन्देलखण्ड के वे सब भाग आ गये जो अंग्रेजों के अधीन थे। जालैन, हमीरपुर, बांदा, सागर इसके अन्तर्गत थे। इसकी राजधानी आगरा थीं। बुन्देलखण्ड के राजाओं को निमंत्रित करने के लिये संधियों के अनुसार फौज रखी गयी और उनकी व्यवस्था के लिये पालिटिकल ऐजेंटों की नियुक्ति की गई सन् 1835 में एक लेफ्टीनेंट गवर्नर की नियुक्ति की गई। चार वर्षो बाद सागर ओर दमोह जिले इस प्रान्त से अलग कर दिये गये। इन्हें देखने के लिये एक कमिश्नर अधिकृत किया गया। यह कमिश्नर झांसी के पालिटिकल एजेंट के आधीन था बाद में नये गांव छावनी चला गया और बुन्देलखण्ड के ग्वालियर रेंजीडेंस के अधीन कर दिया गया। सन् 1854 मध्य भारत अथवा सेंट्रल इण्डिया के नाम से जाना जाने लगा। सन् 1857 की क्रांति के पश्चात् 1888 में खनियां धान की रियासत में यह ग्वालियर रेंजीडेंस में मिला दी गई। सन् 1896 में कालिंजर के चौबे की जागीरें और बरौधा रियासत बघेलखण्ड के पॉलीटिकल एजेंट के आधीन कर दी गई।[1]

---

1. रामस्वरूप ढेक्रला : बुन्देलखण्ड का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक अनुशीलन पृ0 122

इस समय ओरछा, दतिया, समथर, बुन्देलखण्ड की महत्वपूर्ण रियासतें थी। ओरछा राज्य की राजधानी टीकमगढ़ हो गई थी। यहां के राजा 4 हजार 500 रूपया कर झांसी राज्य को दिया करते थे। जब झांसी राज्य अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया तो यह रकम अंग्रेजी सरकार को मिलने लगी 1857 की क्रांति में टीकमगढ़ नरेश ने अंग्रेजों की सहायता की थी। इसलिये अंग्रेजों ने यह कर माफ कर दिया। इनसे और अंग्रेजों से बराबरी की संधि हुई। समथर और दतिया से भी इसी प्रकार की संधियां हुई इसलिये इनकी शासन व्यवस्था में अंग्रेजों ने कोई हस्तक्षेप नहीं किया।

जिन राज्यों से संधियां न होकर केवल मान्यतायें थी अंग्रेजों को उन राज्यों में हस्तक्षेप करने का पूर्ण अधिकार था। अली बहादुर (बांदा) की हार के पश्चात् अंग्रेजी सरकार ने उसके अधीन राजाओं को सत्ता से नहीं हटाया। मान्यता देकर अपने अधीन कर लिया। इस प्रकार के राज्य दो प्रकार के थे प्रथम वे जिन्हें दीवानी और फौजदारी अधिकार प्राप्त थे परन्तु हत्या के मामले में इन्हें पॉलीटिकल एजेंटों से परामर्श लेना पड़ता था। इन राज्यों में पन्ना, चरखारी, अजयगढ़, बिजावर बावनी आदि थे। दूसरे प्रकार के राज्यों की फौजदारी के पूरे अधिकार प्राप्त नहीं थे। इनके बड़े मुकदमों को पॉलीटिकल एजेंट करता था। इन राज्यों में सरीला, धुरबई, बिजना, टौड़ी, फतेहपुर, बांदा पहाड़ी जिगंनी, लुगासी, बीहट, बेरी, अलीपुरा, गौरिहार, गरौली और नौगांव रिबई थे। सन् 1841–42 में अंग्रेज सरकार के विरोध में कई स्थानों में विद्रोह हुये। इस समय चिरगांव के राव बखत सिंह ने बगावत की। उसने फौज एकत्र करके अंग्रेजों की सहायता की इसलिये राव बखत सिंह हमीरपुर जिले में पनवाड़ी नामक स्थान में अंग्रेजी फौज के हाथों मारा गया और चिरगांव पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। परन्तु बखत सिंह के पुत्र राव रघुनाथ सिंह ने 1857 की क्रांति में अंग्रेजों का साथ दिया

1. काशीराम मिश्र : बुन्देलखण्ड का साँगोपाग एवं विस्तृत इतिहास पृ0 130

था इसलिये अंग्रेजों ने इन्हें 4500 रूपया पेंशन बांध दी। इसके पश्चात् यह पेंशन आधी होकर 2253 रूपये इनके पुत्र दिलीप सिंह को मिलती रही।[1]

सन् 1842 में सागर में अंग्रेजों के विरूद्ध विद्रोह हुआ। इस समय चन्द्रापुर के बुन्देला ठाकुर जवाहर सिंह और मालथौन के समीप नराटघाटी के मधुकर शाह और गणेशजू पर सागर की दीवानी अदालतों की डिग्रियां तामील की गई, इससे लोग क्रोधित हुये और लोगों ने पुलिस वालों का मार डाला तत्पश्चात् बहुत से विद्रोहियों के साथ खिमलासा, खुरई, नरियावली, घमौनी और विनयका को लूट लिया। इसी समय नरसिंहपुर के जीमंदार ढोलनशाह गौड़ ने अंग्रेजों से विद्रोह करके दवेरी और उसके आसपास के इलाकों को लूट लिया। यह उपद्रव पूरे एक वर्ष चला। अन्त में मधुकर शाह और गणेशजू मानपुर में पकड़े गये। मधुकर शाह को फांसी दी गई और गणेशजू को काला पानी की सजा हुई। इस उपद्रव के कारण अशांति फैली और किसी प्रकार का कोई कर वसूल नहीं हो पाया।

## 1857 की क्रांति का पृष्ठभूमि

बुन्देलखण्ड में स्वतंत्रता संग्राम की पृष्ठभूमि 1857 के लगभग 15–20 वर्ष पूर्व प्रारम्भ हो चुकी थी। परन्तु इस चिनगारी ने भयंकर ज्वाला का स्वरूप सन् 1857 में ही धारण किया था। कतिपय इतिहासकारों के अनुसार लार्ड डलहौजी की राज्य विस्तार नीति और देशी राजाओं से विश्वासघात ही इस क्रांति का **प्रमुख कारण** है। विनायक दामोदर सावरकर के अनुसार विश्वासघात, घात, अत्याचार इत्यादि माध्यमों से छोटे राज्य मिटाये जाने लगे। सेना में देशी सैनिकों का अपमान किया जाने लगा। उन्यादित फिरंगी अधिकारी इन पर चाबुकों से प्रहार करते थे।[1] **मेजिनी** के अनुसार स्वतंत्रता प्रत्येक का नैसर्गिक अधिकारी है। यदि इसे प्राप्त करने के लिये भारतीयों ने संघर्ष किया तो कोई अन्याय नहीं किया शोले का यह कथन कि

---

1. विनायक दामोदर सावरकर : 1857 का स्वातंत्र्य समर पृ0 14

अंग्रेजों का हिन्दुस्तान से सम्बंध होना एक नैसर्गिक चेष्टा थी। नितान्त असत्य है, क्योंकि उनका देश, धर्म और संस्कृति हमसे पूरी तरह भिन्न है। श्री निवास बालाजी हार्डिकर के अनुसार क्रांति का प्रमुख कारण बाजीराव पेशवा द्वितीय के दत्तक पुत्र नाना साहब के ऊपर अंग्रेजों का अत्याचार है। जिसके अनुसार उनकी 8 लाख रूपया पेंशन बन्द कर दी गई और उनके राजनैतिक अधिकार समाप्त कर दिये गये। वे कहते हैं कि अंग्रेजों ने भारतीयों को धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा नैतिक भावनाओं पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। विधवा विवाह वैध घोषित किया गया। सती प्रथा पर रोक लगाई गई, बहु विवाह प्रथा को समाप्त करने का प्रयत्न किया गया। धर्मान्तर करने पर वारसी अधिकार प्रदान करने के कानन बनने लगे। तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार तथा अंग्रेजों पर पूर्ण अविश्वास होने के कारण ये सामाजिक सुधार भी देश के ईसाई बनाने के प्रयत्न माने गये।[1] इस प्रकार देश के सभी वर्ग चाहे राजा हो अथवा नबाव, जमींदार हो अथवा व्यापारी सैनिक हो या साधारण जनता अंग्रेजी सरकार से असन्तुष्ट हो गये। इस देश व्यापी असंतोष ने सारे देश में शीघ्र ही अंग्रेजी सरकार को उलट देने वाले भयंकर विप्लव का रूप धारण कर लिया।[2]

एक अंग्रेज विद्वान सर जॉन लारेन्स का विचार था कि गदर का मूल कारण सेना तथा चर्बी वाले कारतूसों का किसी षड़यंत्र से संबन्ध नहीं था। परन्तु आंट्र के अनुसार "विद्रोह ऐसे मुस्लिम षड़यन्त्र का परिणाम था जिसमें हिन्दुओं के कष्टों से लाभ उठाया गया था। कारतूसों की घटना तो एक पूर्ववर्ती घटना मात्र थी।" भारत के राष्ट्रीय लोगों ने इसे स्वतन्त्रता संग्राम माना है। अशोक मेहता ने अपनी पुस्तक में इसकी राष्ट्रीयता विशेषताओं का उल्लेख किया परन्तु वे इस बात को स्वीकार करते हैं, कि यह क्रांति सैनिकों द्वारा ही प्रारम्भ की गई थी।[3] इस विद्रोह में अंग्रेजों का साथ देने वालों का कहीं—कहीं सामाजिक बहिष्कार भी किया

---

1. अजय पाल सिंह चौहान : अंग्रेजी शासनकाल में बुन्देलखण्ड में ईसाई मत पृ0 93
2. डा0 मोहन लाल गुप्त : बुन्देलखण्ड की अमर क्रांति
3. अशोक मेहता : 1857 का एक महान विद्रोह

गया। इसका राष्ट्रीय होने का सबसे बड़ा प्रमाण यह है, कि इसमें हिन्दू, मुस्लिम दोनों ने भेदभाव भुलाकर एक दूसरे का साथ दिया। मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर ने राजपूताने के राजाओं को एक पत्र लिखा था कि यह मेरी हार्दिक इच्छा है, कि मै। किसी भी मूल्य पर भारत से अंग्रेजों को निकलता देखूं। यह मेरी हार्दिक प्रबल इच्छा है, कि सम्पूर्ण भारत वर्ष स्वतन्त्र हो जाये। किन्तु यह राजनैतिक युद्ध तब तक सफल नहीं होगा जब तक एक ऐसा व्यक्ति नेतृत्व के लिये आगे नहीं आता जो आंदोलन के सम्पूर्ण भार को अपने ऊपर ले सकें तथा जाति के विभिन्न वर्गों को संगठित तथा केन्द्रित कर सकें। अंग्रेजों के भारत वर्ष से निकल जाने के पश्चात मुझे राज्य करने की कोई अभिलाषा शेष नहीं। यदि आप सब देशी राजा लोग शत्रु को देश से बाहर करने के लिये अपनी तलवार म्यान में निकालने को तैयार हों तब से मैं इस बात के लिये तैयार हूँ कि अपनी राज्य शक्ति तथा अधिकारों को चुने हुये देशी राजाओं की शक्ति के सुपुर्द कर दूं। प्रो0 पी0 ई0 राबर्टस, जॉन लारेन्स और शोले के दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं थाम्पसन तथा गराट ने इस आंदोलन को राष्ट्रीय आंदोलन बतलाना अनुचित समझा उनके अनुसार यह भारतीय साहस और योग्यता का उपहास है। इस आन्दोलन के राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक कारण कुछ इस प्रकार के थे जिसने यह आन्दोलन प्रारम्भ हुआ और अंग्रेजों के विरूद्ध आन्दोलन में परिवर्तित हुआ।[1]

सन् 1848 में लार्ड डलहौजी यहां के गर्वनर जनरल बने। उन्होंने अंग्रेजी राज्य की सीमाएं बढ़ाने के लिये प्रयत्न प्रारम्भ किये। उनका सर्वप्रथम ध्यान पंजाब की ओर गया जहां रणजीत सिंह के पुत्र दिलीप सिंह का राज्य था। वे अल्प वयस्क थे। इनकी ओर से इनकी माँ महारानी जिन्दा राजकाज देखती थी। लार्ड डलहौजी ने इन्हें अयोग्य बतलाकर इनका राज्य हड़प लिया साथ ही महारानी जिन्दा पर यह आरोप लगाया था कि मुल्तान में अंग्रेजों के

1. आर. सी. अग्रवाल : भारतीय संविधान का विकास एवं राष्ट्रीय आंदोलन

आक्रमण के समय महारानी जिन्दा के कारण अंग्रेजों की हत्या हुई। महारानी काशी में रहने लगी और इनके पुत्र दिलीप सिंह को पेंशन देकर इंग्लैंड भेज दिया गया जब पंजाब में विप्लव हुआ तो अंग्रेजों ने उसे दबाकर पंजाब में पूरा अधिकार कर लिया।

पंजाब का अपहरण करने के बाद लार्ड डलहौजी की दृष्टि महाराज शिवाजी के वंशज प्रताप सिंह के राज्य पर गई, उनके कोई संतान नहीं थी। इसलिये उन्होंने एक दत्तक पुत्र लिया था। इनके ऊपर अंग्रेजों ने यह आरोप लगाया कि ये पुर्तगालियों से मिले हुये हैं। इसलिये इन्हें कैद करके काशी भेज दिया गया। इनका राज्य इनके भाई आपा साहब को दे दिया गया। दुर्भाग्य से इनके भी कोई पुत्र नहीं था। किसी भी राजा को गोद लेने के लिये अंग्रेज सरकार से अनुमति लेना पड़ती थी। अंग्रेज सरकार ने इनके दत्तक पुत्रों को मान्यता नहीं दी और इनके राज्य को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया।

झांसी के महाराजा गंगाधर राव की मृत्यु का समाचार बुन्देलखण्ड के पालिटिकल एजेंट मेजर माल्कम के पास 21 नवम्बर 1853 में पहुंचा यह समाचार एजेंट ने अंग्रेजी सरकार के राष्ट्र सचिव को भेजा। इस समाचार के साथ ही यह भी लिखा गया था कि इन्होंने दामोदर राव को गोद लिया, जब कि झांसी राज्य को गोद लेने का अधिकार नहीं है। उन्होंने महारानी झांसी को 5 हजार रूपया मासिक पेंशन देकर अंग्रेजी राज्य को झांसी में मिलाने की सिफारिश की। पत्र भेजते ही मेजर माल्कम ने झांसी की व्यवस्था अपने हाथ में ले ली। व्यवस्था में कोई वाधा न आवे इस उद्‌देश्य से उसने सिंधिया की काटीजेट पल्टन का एक भाग और बंगाल नेटिव इन्फेन्टरी का एक भाग अपने पास रखा। कुछ सेना झांसी और कटेरा के किलों में रखी गई। इसी समय झांसी के राज दरबार में गंगाधर राव के दत्तक पुत्र दामोदर राव के नाम से शासन चलाने का निश्चय किया। क्योंकि जिस समय दामोदर राव को गोद लिया गया था उस

समय बुन्देलखण्ड के असिस्टेन्ट एजेंट वहां थे। गोद लेने का समाचार अंग्रेजों के पास पहले ही भेज दिया गया था। रामचन्द्र राव के समय में झांसी राज्य को वंशापरम्परागत माना गया था, परन्तु लार्ड डलहौजी झांसी का अंग्रेजी राज्य मिलाना चाहता था। जब माल्कम के पत्र का उत्तर न आया तो झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई ने एक दूसरा पत्र अंग्रेजों को लिखा। एलिस साहब ने यह पत्र अंग्रेज गवर्नर को लिखा परन्तु उनकी भी सलाह नहीं मानी गई। इसी समय उत्तराधिकार के लिये गंगाधर राव के प्राचीन निवास खानदेश में रहने वाले उनके परिवार के एक सदस्य सदाशिव नारायण ने झांसी का उत्ताधिकार पाने के लिये माल्कम साहब को एक पत्र लिखा। माल्कम साहब ने सदाशिव नारायण का समर्थन किया।

इस समय लार्ड डलहौजी सन् 1854 में कलकत्ता पहुंचे। उनके समक्ष झांसी के पत्र पेश किये गये। इनके राष्ट्रसचिव मिस्टर ग्रन्ट ने एक लम्बी फाइल गवर्नर के सम्मुख पेश की जिसमें यह सिद्ध किया गया कि झांसी का राज्य लावारिस है। इसलिये इसे अंग्रेजी राज्य में मिलाने की सहमति की।

झांसी राज्य को अंग्रेजी राज्य में मिलाने का आदेश पहले आ गया यह आदेश आते ही महारानी मूर्च्छित हो गई चेतना आने पर उन्होंने यह कहा कि मैं झांसी अंग्रेजों को नहीं दूंगी।[1] उन्होंने अंग्रेजों की 5 हजार रूपये की पेंशन ठुकरा दी। उन्होंने दामोदर राव की निजी सम्पत्ति लक्ष्मीबाई को दे दी औरअंग्रेजी खजोने से 6 लाख रूपये दामोदर राव के नाम जमा करा दिए। अंग्रेजी राज्य ने झांसी को मिला लिये जाने के बाद रानी लक्ष्मीबाई को यह किला छोड़कर शहर में रहना पड़ा। अंग्रेजी सेना झांसी में रहने लगी। महारानी लक्ष्मीबाई की सेना को 6 माह का अग्रिम वेतन देकर हटा दिया गया। अंग्रेजों की ओर से झांसी से कमिश्नर मेजर स्क्रिन की नियुक्ति की गई परन्तु झांसी की रानी अपना राज्य वापिस पाने के लिये अंग्रेजों

1. श्रवण कुमार त्रिपाठी : बुन्देलखण्ड की अमर क्रांति

से पत्राचार करती रहीं। इन्होंने अपना मुकदमा 'कोर्ट आफ डायेरेक्टस' के सम्मुख प्रस्तुत किया। इनकी ओर से कलकत्ता के उमेशचन्द्र बनर्जी और एक यूरोपियन वकील वकालत कर रहे थे। इन वकीलों को महारानी झांसी ने साठ हजार रूपया पारिश्रमिक दिया था परन्तु इन मुकदमों का कोई परिणाम न निकला और निर्णय पूर्ववत रहा निराश होकर रानी अपना समय धार्मिक कार्यो में व्यतीत करने लगी। जब दामोदर राव के यज्ञोपवीत के लिये उन्हें धन की आवश्यकता हुई तो उन्होंने अंग्रेजों से वे रूपये मांगे जो उन्होंने राव के नाम से जमा किये थे। और एक जमानत नामा अंग्रेजों को लिया दिया कि बड़े होने पर ये राशि वे दामोदर राव को अपने पास से देंगी।[1]

झांसी राज्य हड़पने के पश्चात् अंग्रेजों का ध्यान नागपुर की ओर गया। इन्होंने नागपुर के आपा साहब को गद्दी से उतार दिया और भोंसले वंश की तृतीय रघुजी नामक बालक को नागपुर का उत्तराधिकारी बनाया गया। सन् 1853 में 11 दिसम्बर के दिन रघुजी तृतीय का स्वर्गवास हो गया। इसकी ओर से उसकी रानी बांका बाई नागपुर राज्य देखती थी। रघु जी के मरने के पश्चात् बांका बाई ने दूसरे बालक को गोद लेने की इच्छा प्रकट की और यह कहा कि अहर राव नामक बालक को गोद लिया जायेगा अंग्रेजी सरकार इस सम्बन्ध में मौन रही। आगे चलकर इस बालक का नाम जानो जी भोंसला रखा गया। कुछ समय पश्चात् गोद नामे को नियम विरूद्ध बतलाकर नागपुर को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया। भोंसले की सारी सम्पत्ति को अंग्रेजों ने कब्जे में ले लिया।

सन् 1818 में बाजीराव द्वितीय को पेशवा की गद्दी से उतार दिया गया था और उन्हें 8 लाख रूपया वार्षिक पेंशन देकर बिठूर के निकट बसा दिया गया था। थोड़ी बहुत जागीर भी उन्हें प्रदान की गई थी। बाजीराव निःसंतान होने के कारण एक बालक को गोद

---

1. गोरे लाल तिवारी : बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास पृ0 343

लेना चाहते थे। उन्होंने अंग्रेजों से गोद लेने की अनुमति मांगी परन्तु अंग्रेजों ने संदिग्ध उत्तर दिया इन्होंने तीन पुत्र गोद लिये जिसमें बड़े का नाम धोंड़ेपत नाना साहब था। बाजीराव ने मृत्यु के समय इन्हें अपनी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनाया। इनका स्वर्गवास सन् 1851 में हो गया। अंग्रेजों ने इन्हें बाजीराव की जागीर तो दे दी परन्तु 8 लाख रूपया वार्षिक पेंशन बन्द कर दी। नाना साहब ने इस पेंशन के लिये बहुत लिखा पढ़ा की परन्तु यह पेंशन उन्हें प्राप्त न हो सकी। कुछ समय बाद अंग्रेजों ने लखनऊ के नबाव वाजिद अली शाह का भी राज्य हड़प लिया।[1]

लार्ड डलहौजी की राज्य हड़प नीति के कारण देशी राजाओं में असंतोष फैल गया। साथ ही जहां अंग्रेजी राज्य लागू हुआ वहां प्रजा की सुख सुविधा का कोई ध्यान नहीं दिया गया। उनका उद्देश्य जनता से अधिक से अधिक धन वसूलना था। अंतर्वेद के जमींदारों को भी बड़ा असंतोष हुआ। जब उनके नाम जमींदारी से काटकर कृषकों को लिख दिये गये और उनसे सख्ती से धन वसूल किया गया। इस राज्य क्रांति का प्रमुख कारण जनता का अंग्रेजों के प्रति बढ़ता हुआ असंतोष था, अन्य कारण तो नाम मात्र के थे। इसी समय यह भी अफवाह फैली कि अंग्रेज लोग हिन्दू मुसलमानों का धर्म नष्ट करने के लिये कारतूसों में सुअर और गाय की चर्बी का प्रयोग करते हैं। पं0 गोरेलाल तिवारी ने राज्य हड़प नीति को ही इस क्रांति का सूत्रपात माना है।[2]

## क्रांति का स्वरूप

अजीमउल्ला खाँ जो नाना साहब के वकील होकर इंग्लैंड गये थे, ने फ्रांसिसियों से बातचीत की और फ्रान्सिसियों ने उन्हें सहायता का वचन दिया। इसके पश्चात् वे तुर्किस्तान के खलीफा से मिले लार्ड राबर्टस ने अजीमउल्ला खाँ द्वारा खलीफा को लिखा गया पत्र देखा था। उस पत्र में उन्होंने यह लिखा था कि हिन्दुस्तान से अंग्रेजी सत्ता को उखाड़

---

1. राम स्वरूप ढेगुला : बुन्देलखण्ड का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक अनुशीलन
2. गोरेलाल तिवारी : बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास पृ0 349

फेंकने के लिये उनकी सहायता करें जब अजीमउल्ला खाँ भू मध्य सागर से क्रीट पहुंचे तो उन्हें यह समाचार मिला कि अंग्रेजी और फ्रांसिसियों की संयुक्त सेना को रूसी सेनाओं ने बुरी तरह परास्त कर दिया है। इससे उन्हें यह अन्दाज लगा कि अंग्रेजों को हराया जा सकता है।[1]

भारत आकर उन्होंने नाना साहब को सब कुछ बतलाया उन्होंने यह बातें भ बतलाई जो इंग्लैण्ड में रंगोबाबू और उनके बीच में हुई थी। उन्होंने अंग्रेजों के विरूद्ध सशस्त्र क्रांति की नाना साहब के दरबार में तात्या टोपे, बाबा भट्ट, ज्वाला प्रसाद, अजीम उल्ला खाँ और राव साहब जेसे देशभक्त उपस्थित थे। इस बैठक में क्रांति की योजना तैयार की गई क्रांति के लिये एक नेता और एक झंडा का सिद्धान्त अपनाया गया। मुगल सम्राट के प्रति लोगों की श्रद्धा थी। इसलिये उसे ही नेता माना गया और उसके हर झंडे को क्रांति का ध्वज माना गया। साथ ही साथ यह नारा दिया गया। **"खल्क खुदा का मुल्क बादशाह का दुआ उसकी उस क्षेत्र के क्रान्तिकारी की।"** इस क्रांति के अन्तर्गत जेलों के फाटक खुलवा कर कैदियों को मुक्त करना सरकारी खजानों को लूटना स्थानीय ब्रिटिश सत्ता को समाप्त कर दिल्ली की ओर प्रस्थान करना। क्रांति को सफल बनाने के लिये एक देश व्यापी संगठन बनाया गया इसमें बाबा भट्ट को राजाओं से पत्र व्यवहार करने का काम सौंपा गया। ज्वाला प्रसाद को अग्रेजी सेना में क्रांतिकारी संगठन बनाने का काम दिया गया तथा जन साधारण में क्रांति का वातावरण तैयार करने का काम सौंपा गया। अजीम उल्ला खाँ को इसका संचालक बनाया गया। नाना साहब को इस संगठन का अध्यक्ष बनाया गया और तात्या टोपे को मुख्य सलाहकार माना गया।

जो पत्र देशी राजाओं को लिखे गये उनमें लिखा गया कि फिरंगियों के आक्रमण के कारण उनका देश, उनकी स्वतंत्रता तथा उनका धर्म और उनकी संस्कृति संकट में पड़ गई है। यदि इनकी रक्षा करना है तो यही समय कुछ न कुछ करने का है और अन्त में उन्हें भाषी क्रांति में सम्मिलित होने का आमंत्रण दिया गया।[2]

---

1. कैलाश मड़वैया : बुन्देलखण्ड के इतिहास पुरूष पृ0 40
2. श्री निवास बालाजी हार्डीकर : तात्या टोपे पृ0 36

सन 1856 में अवध का राज्य अचानक अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया। इससे अन्य देशी राजा चौंके, धीरे–धीरे अन्य दरबारों से पत्र के उत्तर आने लगे कई नरेशों ने क्रांति में सक्रिय योगदान देने का वचन दिया दिल्ली के मुगल सम्राट बहादुर शाह तथा साम्राज्ञी जीनत महल, लखनऊ की हजरत महल, झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई बिहार के कुंअर सिंह और फैजाबाद के मौलवी अहमद शाह ने अपने–अपने क्षेत्र में कार्य प्रारम्भ कर दिया। प्रसिद्ध विद्वान **सर जेकब** ने है, **''इस षड़यंत्र का संगठन जिनो गुप्त ढंग से हुआ, जितनी दूर दर्शिता से योजना बनाई गई। जिस सर्तकता से षड़यंत्रकारी केन्द्र काम करते थे, इन केन्द्रों में सामंजस्य स्थापित करने वाले जिस गुप्त नीति से रहते थे, प्रत्येक को उतनी हिदायत दी जाती थी जितनी उनके लिये आवश्यक थी। इन सबका वर्णन करना अत्यंत कठिन है। क्रांति की तारीख 31 मई 1857 निर्धारित की गई।''** इसी अवसर पर जब नाना साहब लखनऊ पहुंचे तो उनका जोरदार स्वागत किया गया और जलूस निकाला गया। ईस प्रान्त के गवर्नर हेडी लारेन्स को नाना साहब पर शक हुआ। उनहोंने कानपुर छावनी के आफीसर जनरल व्हीलर को संविधान रहने के लिये कहा। लखनऊ के बाद वे कालपी और वहां से विहार की ओर चले गये। इस प्रकार क्रांति का सूत्रपात हुआ।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में इस योजना का व्यापक प्रभाव पड़ा सन् 1856 में लार्ड डलहौजी भारत से इंगलैंड चला गया और उसके स्थान पर लार्ड कैंनिग आ गया। उसे यह आभास था कि कभी भी यहां विप्लव हो सकता है। इसी समय अंग्रेजी सेना में कार्य कर रहे भारतीय सैनिकों के मध्य यह खबर फैली कि सुअर और गाय की चर्बी लगाकर अंग्रेज हिन्दु मुसलमानों का धर्म नष्ट कर रहे हैं। इसी कारण से सेना में विद्रोह फैल गया सबसे पहले यह विद्रोह बंगाल में बरहमपुर में फैल गया। इसके पश्चात् मेरठ की सेना ने विद्रोह कर लिया।[2]

---

1. सर जैलब : वैस्टर्न इंडिया
2. श्रवण कुमार त्रिपाठी : बुन्देलखण्ड की अमर क्रांति

मेरठ पर क्रांतिकारियों का अधिकार हो गया फिर दिल्ली में क्रांति हुई। मुगल बादशाह को तख्त पर बैठाला गया। इसके पश्चात् बरेली, मुर्शिदाबाद, लखनऊ इलाहाबाद, बनारस और बांदा में क्रांति होने लगी। अंग्रेज अफसरों ने क्रांति दबाने के लिये कठोर नियम बनाये। परन्तु उनका कोई प्रभाव नहीं हुआ। कानपुर में भी क्रांति के समाचार को पाकर विप्लव प्रारम्भ हुआ। यहां पर यह कार्य अजीमउल्ला खां ने प्रारम्भ किया। कानपुर में नाना साहब को नेता बनाया गया। कानपुर से यह क्रांति झांसी आई।[1]

झाँसी में इस समय अंग्रेजी सेना का नेतृत्व कप्तान डनलप कर रहे थे। पंडित गोरेलाल तिवारी के अनुसार लक्ष्मीबाई का विद्रोहियों से कोई सम्बन्ध नहीं था। वह अपना अधिकांश समय ईश्वर पूजन में खर्च करती थी, परन्तु यहां की देशी पल्टन बागी हो गई जिसका नेतृत्व हवलदार गुरुवख्श कर रहे थे। उसने यहां के गोला बारूद पर अधिकार कर लिया था। इसलिये अंग्रेजों ने किले में रहना छोड़ दिया और सहायता के लिए नौगांव छावनी खबर भेजी इस समय नौगांव और नागोद में अंग्रेजी सेना रहा करती थी। समय पर सेना न आने के कारण यहां पर क्रांतिकारियों का कब्जा हो गया। अंग्रेजों के परिवार किले के बाहर आ गये केवल अंग्रेजी सिपाही किले के अन्दर रह गये जिन्हें क्रान्तिकारियों ने हरा दिया। गार्डन नामक अंग्रेज सेनापति इस युद्ध में मारा गया।[2] क्रांतिकारियों के एक मुखिया ने इनके हथियार रख कर पहले उन्हें छोड़ दिया बाद में उन्हें मरवा डाला। झांसी के कमिश्नर स्क्रीन साहब का वध भी इसी समय हुआ था। अपनी मृत्यु से दो तीन दिन पूर्व मिस्टर गार्डन झांसी की रानी लक्ष्मीबाई से मिले थे, उन्हें पूर्ण विश्वास ाि कि रानी विद्रोह नहीं करेंगी। इसलिये उन्होंने अपने परिवारों को रानी के पास भेजा रानी ने मानवता के नाते उनकी रक्षा की।

वीरांगना लक्ष्मीबाई का जन्म 19 नवम्बर सन् 1835 ईसवी में काशी में हुआ।

---

1. विनायक दामोदर सावरकर : 1857 का स्वातंत्र्य समर
2. डा0 मोहन लाल गुप्त : बुन्देलखण्ड की अमर क्रांति

इनके पिता का नाम मोरोपरान्त तांबे व माता का नाम भागीरथी बाई था। इनके पिता 4 वर्ष की अवस्था में इन्हें लेकर ब्रम्हावर्त में बाजीराव पेशवा के पास आश्रय ग्रहण करने आ गये थे। लक्ष्मीबाई के बचपन का नाम मनु बाई था। इनका बचपन नाना साहब के साथ खेलते बीत गया। इन्हीं के साथ इनकी शिक्षा दीक्षा हुई तथा घोड़े की सवारी करना, युद्ध करने की सम्पूर्ण कलायें इन्होंने नाना के साथ सीखीं। नाना साहब इनसे आयु में 11 वर्ष बड़े थे। लक्ष्मीबाई इन्हें बड़े भाई के समान आदर देती थी। सन् 1842 में उनका विवाह झांसी के महाराजा गंगाधर राव साहब के साथ हुआ। जब क्रांतिकारियों ने उन्हें अपना नेता चुना तो उन्होंने 3 लाख रूपयों के जेवर क्रांतिकारियों को प्रदान किये।[1]

इसी समय सदाशिव नारायण जो अपने को झांसी का उत्तराधिकारी घोषित करता था। एक बड़ी सेना लेकर झांसी के समीप आ गया। उसने करेरा पर आक्रमण करके थानेदार और तहसीलदार को मार भगाया और वहां पर अधिकार कर लिया। उसने अपने आप को झांसी का राजा घोषित किया। समाचार सुनकर महारानी लक्ष्मीबाई सेना लेकर उससे करेरा लड़ने गई। वह वहां से डरकर भाग गया और नरवर पहुंचा यहां पर उसे सिंधिया की सहायता प्राप्त हुयी। परन्तु लक्ष्मीबाई ने उसे नरवर में पकड़ कर झांसी के किले में कैद कर लिया।

ओरछा राज्य में वहां के राजा की ओर से नत्थे खां नामक दीवान था। इसने 20 हजार सैनिकों सहित झांसी पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण को रोकने के लिए महारानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों से सहायता मांगी। इस कार्य के लिये उन्होंने अपना दूत भेजा। दूत को नत्थे खां के सैनिकों ने मार डाला। रानी ने जवाहर सिंह के सेनापति में नत्थे खां से युद्ध किया और नत्थे खां को हरा दिया मिस्टर मार्टिन ने लक्ष्मीबाई की इस कार्य के लिए प्रशंसा की है और टीकमगढ़ राज्य की आलोचना की है।[2] महारानी लक्ष्मीबाई के सहायक का नाम दीवान

---

1. एग्नेस ठाकुर : 1857 का विद्रोह एवं लक्ष्मीबाई
2. पी. सी. ओ. : रानी आफ झाँसी

रघुनाथ सिंह था। ये अंग्रेजों के प्रशासक थे 1857 की क्रांति के पश्चात महारानी विक्टोरिया ने इन्हें पुरूस्कृत भी किया था। सम्भवतः अंग्रेजों को यह भ्रम हो गया था कि महारानी झांसी क्रांतिकारियों से मिली है। इसलिये उन्होंने हयूरोज को झांसी में आक्रमण करने के लिये भेजा। महारानी को अंग्रेजों के इस कृत्य से महान आश्चर्य हुआ। अंग्रेजी सेना में आने से वे सशंकित हो गई उन्होंने वास्तविकता जानने के लिये अपना एक दूत अंग्रजों के पास भेजा। परन्तु वह दूत समय पर अंग्रेजों से नहीं मिल पाया।

अंग्रेज इस बात से क्रोधित थे कि झांसी ने अंग्रेजों की हत्या की गई है। सेना दो भागों में विभक्त थी। इसमें एक सेना बम्बई की थी और दूसरी मद्रास की थी। इसके ठहरने का स्थान मऊ निश्चित किया गया अंग्रेजों की दूसरी सेना जबलपुर में रखी गई जिसका नेतृत्व मिस्टर हैवलाक कर रहे थे। मऊ वाली सेना भी दो भागों में विभक्त हो गई। इसका एक भाग तो मऊ में रहा और दूसरा भाग सीहोर भेजा गया। सीहोर जाते समय इस सेना में भोपाल रियासत की बेगम के द्वारा भेजे गये 800 सिपाही भी शामिल हो गये थे।

## दक्षिण बुन्देलखण्ड में क्रांति

दक्षिणी बुन्देलखण्ड में विप्लव का शुभारम्भ मेरठ दिल्ली और झांसी के उपद्रवों के बाद प्रारम्भ हुआ। इस समय सागर में दो हिन्दुस्तानी पल्टन और एक अंग्रेजी पल्टन रहती थी। झांसी में अंग्रेजों के मारे जाने की खबर जैसे ही सागर पहुंची सागर की 42 नं0 पल्टन बागी हो गई। इधर बानपुर के राजा ठाकुर मर्दन सिंह ने अपनी सेना लकर खुरई में अंग्रेजों की ओर से अहमद बख्या नाम का तहसीलदार था। यह मर्दन सिंह से मिल गया और खुरई में अधिकार करते समय इसने मर्दन सिंह की सहायता की। मर्दन सिंह यहां से अपनी सेना लेकर ललितपुर पहुंचा। तत्पश्चात वह चंदेरी गया। चंदेरी में उसने अंग्रेज आफीसरों को घेर लिया।[1]

1. एस. एन. सिन्हा : द रिवोल्ट आफ 1857 इन बुन्देलखण्ड एण्ड एडज्वायनिंग टेरीटरीज

बुन्देलखण्ड बानपुर के राजा टीकमगढ़ के राजा मधुकर शाह के वंशज थे। ये रामशाह के वंश परम्परा में मोद प्रहलाद के पुत्र थे। कुंअर मोद प्रहलाद के तीन पुत्र थें जिनमें ये सबसे बड़े थे इसलिये इन्हें ही राज्य का उत्तराधिकारी बनाया गया। कुवर मर्दन सिंह ने सन् 1830 में बानपुर को अपनी राजधानी बनाया।[1] इसके पूर्व बानपुर के दुर्ग में चंदेरी राज्य के एक जागीरदार खेत सिंह रहा करते थे। सन् 1842 में राजा मर्दन सिंह के पिता मोद प्रहलाद का स्वर्गवास हो गया। जब इनका राज्यारोहण हुआ तो सिंधिया ने यह आपत्ति की कि उन्हें कर्नल जान वेरिपन्स से अनुमति लेना चाहिये। उन्होंने कहा मेरे लिये इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। इस समय डोंगरा वाले भेले जू, कटेरा के प्रताप सिंह रजवाड़े वाले, दुधारसिंह अंग्रेजी राज्य में जाकर लूटपाट किया करते थे। मर्दन सिंह ने अपनी वीरता और सूझबूझ से इसको नष्ट कर दिया इन्होंने गुढा के गणेश जूं को पकड़वाने में तथा नानकपुर के ठाकुर उमराव सिंह व जवाहर सिंह को दबाने में अंग्रेजी सरकार का साथ दिया था इसलिये अंग्रेजी सरकार इन पर विश्वास करने लगी थी। इसलिये प्रसन्न होकर डिप्टी कमिश्नर हेमिल्टन ने चंदेरी राज्य के कुछ भू भाग अच्छी व्यवस्था करने के लिये मर्दन सिंह को सौप दिया, जिसका समर्थन 13 अक्टूबर सन् 1844 में, झांसी के डिप्टी कमिश्नर ने कर दिया। इसी समय झांसी के तत्कालीन कमिश्नर स्लीमैन ने प्रसन्न होकर 1846 में राजा मर्दन सिंह को मसौरा ग्राम सौंप दिया।

इनकी अंग्रेजों से शत्रुता इसलिये प्रारम्भ हुई क्योंकि उन्होंने ललितपुर के असिस्टेन्ट कमिश्नर आर्टस काइन से मिलने को इन्कार कर दिया और यह कहा कि मै। किसी भी मामले में कमिश्नर से छोटे अधिकारी से बात करना पसन्द नहीं करता। अंग्रेज लोग इससे यह समझ गये थे कि वे कभी भी अंग्रेजों के विरोधी हो सकते हैं। 21 नवम्बर 1853 में जब गंगाधर राव

1. कैलाश मड़तैया : बुन्देलखण्ड का विस्तृत वैभव पृ0 11

का निधन हो गया था उस समय मर्दन सिंह ने ही उन्हें आश्वासन दिया और कई पत्र इन्होंने झांसी की रानी को लिखे तथा झांसी की रानी ने भी इन्हें कई पत्र लिखे थे।

इस समय शाहगढ़ के राजा बख्तवली ने भी अंग्रेजों के विरूद्ध संघर्ष प्रारम्भ कर दिया। इसी प्रकार भोपाल राज्य की आमापानी मामक गढ़ी के नबाव ने कुछ सेना लेकर राहतगढ़ पर अधिकार कर लिया। सागर के विद्रोह का समाचार सुनकर सीहोर की सेना को बानपुर के राजा मर्दन सिंह ने मालथौन के पास रोक लिया। मर्दन सिंह से युद्ध करने के लिये सागर की 31 नवम्बर पल्टन आई। यहां से मर्दन सिंह की सेना को हटना पड़ा और ताल बेहट पर अंग्रेजों का पुनः अधिकार हो गया।[1] सागर की 22 नवम्बर पल्टन बागी हो गई थी। इस पल्टन का नायक शेख रमजान था। उसने सागर में मुगल झंडा खड़ा कर दिया। और सभी सैनिकों को शामिल करने का प्रयास किया। इन सैनिकों ने शेख रमजान को ही अपना नेता चुना। इस पल्टन ने लूटपाट करके 10 हजार रू0 इकट्ठे किये, फिर 31 नवम्बर हिन्दुस्तानी पल्टन पर आक्रमण किया। तत्पश्चात् यहां से शाहगढ़ जाकर वे बखत बली की सेना से मिल गये। समाचार प्राप्त करके बानपुर के राजा मर्दन सिंह ने बखतबली को सहायता करने का निश्चय किया। इन दोनों ने सभी जागीरदारों और जमींदारों से यह अनुरोध किया कि वे क्रांति में शामिल हों। इस सेना का कुछ भाग दमोह पहुंचा। यहां का डिप्टी कमिश्नर जेल के अन्दर खजाने सहित रहने लगा। ये लोग लूटपाट करके वापिस चले आये।

इस समय गढ़ा कोटा में बखत बली की ओर से बोधन दऊबा का अधिकार था।[2] अंग्रेजों ने यहां आकर किले पर गोले बरसाना आरम्भ कर दिये। दऊवा किले के अन्दर से उनका मुकाबला करता रहा किले के अन्दर का सामान समाप्त हो जाने के पश्चात् शाहगढ़ की ओर भाग गया। उसने किला बिलकुल खाली कर दिया। अंग्रेज खाली किले में ही बहुत

---

1. वासुदेव गोस्वामी : राजा मर्दन सिंह पृ0 16
2. दामोदर जैन : क्रांतिवीर राजा बख्तअली पृ0 24

देर तक गोले बरसाते रहे। बाद में इस किले पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। यहां से अंग्रेजी सेना शाहगढ़ बखतबली से लड़ने के लिये आई।[1] उसका अधिकार इस समय मालथौन मदनपुर और धमौनी पर भी था।

ह्यूरोज को झांसी जल्दी पहुंचना था। शहगढ के राजा को बिना हराये वे झांसी नहीं पहुंच सकते थे। यहां पर क्रांतिकारियों की सेना विभिन्न स्थानों में फैली हुई थी। उन्होंने अपनी सेना के कई भाग किये और सेना का एक भाग लेकर मराठे की घाटी की ओर चल पड़े। यहां पर मर्दन सिंह की बहुत बड़ी सेना थी। इसलिये हयूरोज ने मदनपुर होकर जाना चाहा। जब मर्दन सिंह को यह मालुम हुआ कि ह्यूरोज की सेना मदनपुर की ओर आ रही है, तो उसने अपनी सेना उसी ओर भेजी।[2] यह देखते ही ह्यूरोज ने अपनी थोड़ी सेना नराट की घाटी की ओर भेजी और मर्दन सिंह की सेना को वहीं रोक दिया मदनपुर में हयूरोज की सेना ने शाहगढ़ की सेना को हटा दिया। यह यु0 भंयकर था। इस युद्ध में बहुत सी अंग्रेजी सेना मारी गई। सर हयूरोज को भी गोली लगी साथ ही उसका घोड़ा भी मारा गया। अन्तिम विजय अंग्रेजों की हुई। यदि नराट की घाटी में मर्दन सिंह की सेना अंग्रेजों द्वारा न रोकी जाती और वह किसी तरह शाहगढ़ की सेना में मिल जाती तो ह्यूरोज विजयी न होते। इस प्रकार शाहगढ़ अंग्रेजों के हाथ लगा। यहां के राजा बख्तबली भाग गये। कई सरदार अंग्रेजों के हाथ मारे गये। इस समय मर्दनसिंह  नराट की घाटी में अंग्रेजों से लड़ रहे थे। जब उन्हें बख्त अली की हार का हाल मालुम हुआ तो वे भी वहां से भाग गये। इस प्रकार खुरई, नरियावलि और बानपुर पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। यहां से अंग्रेजी सेना तालबेहट पहुंची। इस समय तालबेहट का किला क्रांतिकारियों के हाथ में था। क्रांतिकारियों को भगाकर इस किले में अंग्रेजों ने अधिकार कर लिया। यहां से अंग्रेज चंदेरी गये। यहां भी क्रांतिकारी अंग्रेजों से हारे।[3]

1. दामोदर जैन : रण बाँकुरे राजा वख्तअली (लेख नव चेतना, झाँसी)
2. गुरू शम्भू दयाल : राजा मर्दन सिंह (मध्य प्रदेश संदेश, अंक 2, 1979)
3. राधाकृष्ण बुन्देली एवं सत्यभामा बुन्देली : बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन पृ0 160

चंदेरी से झांसी के लिये अंग्रेजी सेना ने प्रस्थान किया और झांसी में आक्रमण करने की तैयारी प्रारम्भ की यहां से इन्हें यह मालुम हुआ कि तात्या टोपे इस समय चरखारी के राजा रतन सिंह पर चढ़ाई करने गये हैं। यद्यपि रतन सिंह अंग्रेजों के मित्र थे फिर भी हयूरोज झांसी को अधिक महत्व दे रहे थे। इसलिये ने चरखारी पर ध्यान नहीं दे सके। तात्या टोपे महाराष्ट्री ब्राम्हण थे, बचपन से ही बहादुर थे। उनके परिवार के लोग बाजीराव द्वितीय के समय से ही बिठूर में रहते थे। इनकी मृत्यु के पश्चात् नाना साहब के विश्वास पात्र नौकर हो गये। कानपुर की क्रांति में इन्होंने नाना साहब की बहुत सहायता की थी। इनकी शूर वीरता से प्रभावित होकर अंग्रेजों ने उन्हें **"हिन्दू गेरी बाल्डी"** की उपाधि दी थी।[1]

तात्या टोपे का जन्म अहमद नगर के सेवला ग्राम में देशस्त ब्राम्हण के घर में हुआ था। इनके बाबा का नाम त्रिषंक भट्ट था। ये सरदार बिचूरकर के यहां कुल देवता की पूजा करते। इनके पिता पांडुरंग भट्ट कर्मकाण्डी और शास्त्रों के विद्वान थे। इनकी विद्या से प्रभावित होकर बाजीराव पेशवा ने इन्हें अपने पास रख लिया। पांडुरंग भट्ट की पत्नी का नाम रूषमाबाई था। तात्या टोपे इनके ज्येष्ठ पुत्र थे। इनका वास्तविक नाम रामचन्द्र था। इनकी जन्मतिथि सुनिश्चित नहीं है, फिर भी इसे सन् 1814 से 1816 के बीच माना जाता है। जब बाजीराव पेशवा ब्रम्हावर्त्त आये तो उन्हीं के साथ ये भी आ गये। ये आयु में नाना साहब से 10 वर्ष बड़े थे। इनके कार्यों से प्रसन्न होकर इन्हें टोपे की उपाधि दी गई थी। तथा एक रत्न जटित टोपी इन्हें उपहार में दी गई थी।[2]

### झांसी और कालपी में क्रांतिकारियों के अंग्रेजों से युद्ध :

महारानी लक्ष्मीबाई अंग्रेजों से शत्रुता मोल नहीं लेना चाहती थी। परन्तु जब समझौते की कोई आशा नहीं रह गई उस समय इन्हें युद्ध करना पड़ा।[3] महारानी लक्ष्मीबाई ने किले के

---

1. शम्भू दयाल : बुन्देलखण्ड में 1857 का स्वतंत्रता संग्राम पृ0 163
2. श्री निवास बालाजी हार्डीकर : तात्या टोपे
3. गोरेलाल तिवारी : बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास

बचाव के लिये पहले से ही सामान एकत्रित कर लिया था। गोला, बारूद और तोप झांसी में ही तैयार किया गया था। अंग्रेज इतिहासकारों ने इस युद्ध सामग्री की बड़ी प्रशंसा की है।[1]

यह युद्ध 23 मार्च सन् 1858 में प्रारम्भ हुआ। इनके गोले अंग्रेजों के गोलों से अच्छे थे। इनके गोलन्दाज का नाम गुलाम गोस खां था। इनकी बहादुरी ने अंग्रेजों को चकित कर दिया। झांसी में आक्रमण करने के पहले अंग्रेजों ने झांसी से बाहर निकलने वाले सभी मार्ग बन्द कर दिये। आसपास की पहाड़ियों पर अंग्रेजी सेना नियुक्त कर दी गई। पहले तोपों से लड़ाई प्रारम्भ हुई फिर उन्होंने किले के दक्षिणी भाग में आक्रमण प्रारम्भ कर किया। यहां से झांसी की सेना अंग्रेजों का मुकाबला नहीं कर सकी। रानी के गोलन्दाज गुलास गोस खां ने अंग्रेजों के तोपची को मार गिराया। झांसी के किले से जो गोले छूटते थे उनका वज 7 मन था। 7 दिनों तक यह युद्ध होता रहा 18 वें दिन अंग्रेजों की विजय होने की आशा हो गई क्योंकि किला चारों ओर से घिर गया था। समुचित सामग्री होते हुये भी कोई प्रशिक्षित व्यक्ति नहीं था।[2]

इस समय रानी ने नाना साहब पेशवा से सहायता मांगी। पेशवा ने अपने वीर सरदार तात्या टोपे को सहायता के लिये भेजा। तात्या टोपे बीस हजार सैनिक लेकर कालपी से झांसी के लिये रवाना हुआ। तात्या जब झांसी पहुंचा उस समय युद्ध चल रहा था हयूरोज ने इस प्रकार की ब्यूह रचना की थी कि तात्या की सेना झांसी की सेना से नहीं मिल पाई। तात्या इस समय चरखारी जीतकर वापिस आये थे। तात्या की सेना का अंग्रेजों की सेना से मुकाबला हुआ परन्तु सेना के लिये उचित स्थान न मिलने के कारण तात्या की सेना का भीषण नुकसान हुआ। इस युद्ध में तात्या की हार हुई। सेना की सामग्री अंग्रेजों के हाथ लगी। तात्या भाग कर कालपी चले गये। यह युद्ध 1 अप्रैल 1858 में प्रारम्भ हुआ तथा 3 अप्रैल 1858 को समाप्त हुआ।[3]

1. जै. फ्रैकलिन : मौम्वायर्स आफ बुंदेलखण्ड
2. राधाकृष्ण बुन्देली एवं सत्यभामा बुन्देली : बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन
3. शम्भू दयाल : 1857 का स्वाधीनता संग्राम

महारानी झांसी अकेले ही किले का प्रबन्ध करती रहीं। सर हयूरोज किले के पश्चिमी भाग में थे और इनकी सेना का नेतृत्व मेजर गोल कर रहे थे। दक्षिण की ओर फीडेल राबिन्सन और स्टुअर्ट थे। सर हयूरोज ने उत्तर की ओर से जो सेना भेजी उसका नेतृत्व मिस्टर हैवलाक कर रहे थे। झांसी पर तीनों ओर से अंग्रेजी सेना गोले बरसा रही थी। किले की दीवारें चारों ओर से बहुत कमजोर हो गई थीं। तात्या टोपे की हार का समाचार सुनकर वे निराश हो गये थे परन्तु रानी उनका मनोबल बढ़ा रही थी। धीरे–धीरे अंग्रेजी सेना किले के पास आ रही थी। अंग्रेजी सेना नायक, डिक, मिकली, बोनस और फाक्स ने किले की दीवारों पर चढ़ने का प्रयास किया परन्तु वे सब मारे गये।[1] अंग्रेजी सेना आगे बढ़ती गई। मजबूर होकर झांसी की रानी किले के बाहर चली गईं। लक्ष्मीबाई की सेना और अंग्रेजी सेना का युद्ध शहर में भी हुआ। यह युद्ध लक्ष्मीबाई के निवास स्थान उनके महल में भी हुआ अंग्रेजी सेना ने पूरे शहर में कर्फ्यू लगा दिया। निर्दोष शहर वासियों को मौत के घाट सुलाया जाने लगा, उनकी सम्पत्ति लूटी जाने लगी।

शहर पर अधिकार करने के पश्चात हयूरोज का आक्रमण महल पर हुआ। रानी लक्ष्मीबाई यहां भी वीरता से लड़ी महल में अंग्रेजों द्वारा आग लगा दी गई जो भी व्यक्ति वहां थे उन्हें मार डाला गया। इसी समय रानी ने अपने विश्वासपात्र सैनिकों के साथ भागने का निर्णय लिया। अपने पुत्र दामोदर राव को अपनी पीठ पर बांधकर मोरोपन्त तांबे के साथ वह भागने के लिये तैयार हो गई। पुरूष वेष में अंग्रेजी सेना के बीच तलवार चलाती हुई वह कालपी की ओर भागी। रानी के भाग जाने का हयूरोज को बड़ा आश्चर्य हुआ। अंग्रेजी सैनिकों ने रानी को पकड़ने का प्रयत्न किया परन्तु वह सफल नहीं हुये। रानी ने 3 अप्रैल 1848 को झांसी से प्रस्थान किया। इस प्रकार झांसी पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। उन्हें अंग्रेजों की हत्या का बदला लेने का अवसर प्राप्त हुआ। इस समय अंग्रेजों ने बड़ी निर्दयता से कत्ले आम

1. शम्भू दयाल : स्वतंत्रता आंदोलन में बुन्देलखण्ड का योगदान

किया। शहर में लाशों के ढेर लग गये। झांसी का पुस्तकालय नष्ट कर दिया गया। महालक्ष्मी मन्दिर के आभूषण लूट लिये गये। अंग्रेजी सेना ने तीन दिन लूटमार की। इसके अतिरिक्त मद्रासी और हैदराबादी पल्टन 6 दिनों तक लूटपाट करती रही अन्त में इस लूट के माल को नीलाम कराया गया जिसमें बहुत सा माल सिंधिया ने खरीद लिया। युद्ध से अधिक व्यक्ति अंग्रेजों के युद्ध के पश्चात् मार डाले।[1]

झांसी छोड़ने के पश्चात् रानी लक्ष्मीबाई भांडेर पहुंची यहां भी अंग्रेजी सेना इनका पीछा कर रही थी। परन्तु रानी के पास कोई सेना नहीं थी। वह अपने पुत्र को पीठ में बांधकर लड़ने लगी। उन्होंने अंग्रेजी सेना के नायक वॉकर को घायल कर गिरा दिया और वे कालपी की ओर चली गई। वॉकर अपनी सेना लेकर वापस आ गये। इस समय कालपी में कानपुर के बागियों का अधिकार था। कानपुर के नाना साहब के सैनिकों ने यहां के डिप्टी कलेक्टर मुंशी शिवप्रसाद को कालपी से मार भगाया था और कालपी पर अधिकार कर लिया था। इस समय नाना साहब के भाई राव साहब पेशवा कालपी में थे। कालपी में लड़ाई का सामान एकत्र किया गया था। रानी लक्ष्मीबाई के पहुंचने पर उनका स्वागत किया गया। रानी लक्ष्मीबाई ने भी राव साहब को सहायता देने का वचन दिया और रानी के कथनानुसार युद्ध करने का निश्चय किया गया। अंग्रेजों पर विजय प्रापत करने की आशा दिखलाई देने लगी। इसी समय बांदा के नबाव अली बहादुर सानी एक बड़ी सेना लेकर कालपी में आकर राव साहब से मिले। इनकी मुलाकात गोपालपुरा में हुई थी। यह भी अंग्रेजों के विरूद्ध थे।[2] इसी समय शाहगढ़ के राजा बख्तबली जो अंग्रेजों से हार गये थे, अपनी सेना सहित कालपी पहुंचे। बानपुर के राजा मर्दन सिंह भी यहां अपनी सेना सहित उपस्थित हो गये थे। सारी सेनाओं का नेतृत्व और परीक्षण राव साहब ने किया। बाद में सर्व सम्मति से सेना का नेतृत्व तात्या टोपे के हाथ में सौंपा गया।[3]

---

1. दत्रात्रेय बलवन्त पारसनीय : रानी लक्ष्मीबाई
2. सर सुन्दर लाल : भारत में अंग्रेजी राज (तृतीय खण्ड)
3. श्री निवास बालाजी हार्डीकर : तात्या टोपे पृ० 39

सर हयूरोज को जब यह खबर मिली कि क्रांतिकारियों का जमाव कालपी में है यह कालपी की ओर चल पड़ा। उसकी एक पल्टन ने कोंच पर आक्रमण किया। कोंच पर क्रांतिकारियों का अधिकार था। इस सेना ने क्रांतिकारियों को पराजित कर दिया और कोंच पर अधिकार कर लिया। सर हयूरोज ने बानपुर और शाहगढ़ की फौज को भी रोकने का प्रयास किया वे सफल नहीं हो सके। सम्पूर्ण फौज कालपी पहुंच गई। कोंच के पास का लोहारी किला क्रांतिकारियों के हाथ में था। यहां पर अफगानी पल्टन अंग्रेजों का मुकाबला कर रही थी। यह पल्टन अंग्रेजों से हार गई। यहां पर भी अंग्रेजों का अधिकार हो गया। इसी बीच क्रांतिकारियों ने कोंच पर पुनः अधिकार कर लिया। इसलिये हयूरोज ने कोंच पर दुबारा आक्रमण किया। क्रांतिकारियों का अंग्रेजों से युद्ध हुआ। कोंच पर दुबारा अंग्रेजों के अधिकार में आ गया। यहां से हयूरोज कालपी की ओर बढ़े, हरदोई और उरई दोनों ओर से कालपी पर आक्रमण किया गया। यहां पर एक सेना रानी लक्ष्मीबाई के हाथ में थी। रूहेलों की सेना रानी लक्ष्मीबाई की सहायता के लिये यहां आ गई। दोनों ओर से भीषण युद्ध हुआ। क्रांतिकारियों की अपेक्षा अंग्रेजों के पास युद्ध सामग्री बहुत अधिक थी। रानी लक्ष्मीबाई ने हारती हुई सेना को धैर्य बंधाया। परन्तु कालपी की सेना पीछे हटी। अंग्रेजी सेना रानी की सेना को कत्ल करने लगी कालपी में हयूरोज का अधिकार हो गया।[1] बहुत सा सामान अंग्रेजों के हाथ लगा। राव साहब पेशवा बांदा के नबाव अली बहादुर कालपी छोड़कर चले गये। अंग्रेजों ने कालपी को तीन दिन तक लूटा। यहां पर बहुत सी तोपें और गोले अंग्रेजों के हाथ लगे।

### (य) क्रान्ति का सूर्यास्त :

ह्यूरोज रानी झांसी से युद्ध कर रहे थे और जबलपुर की सेना के नायक मिस्टर ह्विटलक पूर्व में विद्रोह का दमन कर रहे थे। दमोह में क्रांतिकारियों का दमन करने के लिये

1. राधाकृष्ण बुन्देली एवं सत्यभामा बुन्देली : बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन पृ0 165

पन्ना महाराज नृपति सिंह ने ह्विटलक की सहायता की। इन्हीं की सहायता से यह विद्रोह समाप्त हुआ। बांदा और कर्बी में भी क्रांतिकारियों ने अंग्रेजी सत्ता उखाड़ फेकने का प्रयास किया था। ह्विटलक की सेना का क्रांतिकारियों से युद्ध कबरई, मटौंध, इचौली और ग्वेरा मुगलों के पास हुआ तत्पश्चात यह युद्ध केन किनारे और बांदा शहर में हुआ।[1] इस युद्ध में रणछोर सिंह दऊवा अंग्रेजों की मदद कर रहा था और गौरिहार का राजा भी अंग्रेजों के पक्ष में था इसी समय अजयगढ़ की कुछ सेना भी अंग्रेजों की मदद के लिये आ गई थी। पैलानी, जसपुरा, बांदा तिरही, तिंदवारी, हिलरका, डिंगवाही में भी क्रांति का दमन किया गया। बांदा का सम्पूर्ण क्षेत्र अंग्रेजों ने अपने अधिकार में कर लिया था। कलेक्टर मेन जी नागोंद के रास्ते इलाहाबाद भाग गये थे वापिस आ गये। कर्बी के पेशवा माधवराज नारायण राव ने भी अंग्रेजों के सामने आत्मसमर्पण कर दिया।

अंग्रेजों ने कर्बी को मनमाना लूटा। जो धन पेशवा के महलों में प्राप्त हुआ। उसे युद्ध के इनाम के रूप में गृहण किया गया। ह्विटलक 19 अप्रैल 1858 में बांदा आया। उसने काशी के मन्दिरों के लिये 2 लाख रूपया दान की राशि पेशवा की हड़प ली। कुछ समय पहले कर्बी के पेशवा ने अंग्रेजों के पास जमा किया था। अंग्रेज उसे भी हड़प गये। कर्बी में इतना अधिक अत्याचार हुआ जिसका वर्णन किया नहीं जा सकता।[2] कर्बी रियासत खालसा में मिलाई गई। यहां शांति स्थापित करने के लिये ह्विटलक ने महोबा में छावनी डाली। कर्बी के पेशवा के प्रति किये गये अन्याय के सन्दर्भ में मिस्टर मालसन लिखते है 'ह्विटलक के सैनिकों पर एक भी गोली नहीं चली तो भी उसने निश्चय कर लिया था कि नावालिग राव को बागी माना जाय।[3] इस नीयत का कारण था कि गोरे सैनिकों को उनकी कठिन लड़ाईयां तथा चिल चिलाती धूप में कष्ट उठाने का पुरष्कार कर्बी खजाने में भरा पड़ा था यहां के तहखाने

---

1. श्रीपति सहाय रावत : समरगाथा पृ0 24
2. उपर्युक्त पृ0 26
3. के0 आर0 मालसन : इंडियन म्यूटिनी पृ0 141

आदि में अनमोल हीरे तथा जेवर थे। इस सम्पत्ति की लालच में यह अन्याय किया गया।

बांदा में क्रांति का विस्तृत होना यहां के नागरिकों की अंग्रेजों के प्रति घृणा की भावना थी। कलेक्टर मेन ने बांदा के नवाब अली बहादुर[1] और उसके परिवार की बहुत अधिक प्रशंसा की है। क्रांति के समय उसने और उसके परिवार ने अंग्रेजों की मदद की थी और उन्हें संरक्षण दिया था। यदि रणछोर सिंह दऊवा नबाव के साथ विश्वासघात न करता तो क्रांति का स्वरूप यहां कुछ और ही होता। कर्बी के ज्वाइंट मजिस्ट्रेट मिस्टर काकरेल की हत्या की गई मि0 बेनजामिन के अतिरिक्त अन्य अंग्रेज अधिकारियों को मौत के घाट उतारा गया। जरैली कोठी में आग लगाई गई, जेल के फाटक तोड़े गये। यहां के डिप्टी कलेक्टर सरदार मुहम्मद खां क्रांतिकारियों की ओर से बांदा के मुख्य प्रशासक थे। इसी समय जगदीशपुर के कुंअर सिंह की सेनायें भी यहां आ गई। कानपुर और इलाहाबाद के क्रांतिकारी एवं जेलों से छूटे हुये कैदी तिंदवारी, चिल्ला राजापुर और मऊ की ओर से बांदा आ गये। नवाब के अचानक यहां से चले जाने के पश्चात यहां की क्रांति नेतृत्व विहीन हो गई इसलिये हिटलक की सेनाओं ने इन्हें हरा दिया।[2]

कालपी से राव साहब पेशवा महारानी झांसी के साथ गोपालपुरा आये। यहीं पर उनकी मुलाकात तात्याटोपे से हुई। इसी स्थान पर बांदा के नवाब अली बहादुर सानी अपनी सेना सहित इनसे मिले व मुलाकात की इस प्रकार गोपालपुरा में तीन सेनाओं का मिलन हुआ। इस समय महारानी लक्ष्मीबाई ने राव साहब को यह सलाह दी कि झांसी और कालपी में अंग्रेजों का मुकाबला नहीं किया जा सकता क्योंकि अंग्रेजी सेना यहां बहुत अधिक है इसलिये ग्वालियर की ओर चलकर सिंधिया से सहायता ली जाये। सभी ने रानी की सलाह मानकर ग्वालियर पर आक्रमण करने का निश्चय किया। ग्वालियर राज्य में अंग्रेजों को पर्याप्त सम्मान प्राप्त था।

---

1. भगवान दास गुप्त : मस्तानी बाजीराव एवं उनके वंशज बांदा के नबाव पृ0 93
2. रमेश चन्द्र श्रीवास्तव : राष्ट्र गौरव : बुन्देलखण्ड का स्वतंत्रता संग्राम पृ0 145

इस समय जीवाजी राव सिंधिया अंग्रेजों के वास्तविक रेजीडेन्ट थे। यहां की सेना भी क्रांति में शामिल होना चाहती थी। परन्तु उसे दबा दिया गया था। ग्वालियर दरबार में अंग्रेजों के विरूद्ध वातावरण तैयार किया जा रहा था। राव साहब पेशवा के दूतों ने ग्वालियर की सेना को भड़काया। यहां की सेना चाहती थी कि सिंधिया भी अंग्रेजों के विरूद्ध हो जाय परन्तु सिंधि ाया अंग्रेजों के मित्र बने रहे इसलिये सिंधिया की फौज में क्रांति का झन्डा खड़ा कर दिया। जिसे देखकर सिंधिया ने नई फौज का गठन किया और विद्रोह दबाने की चेष्टा की। इस सेना को तात्या टोपे और राव साहब पेशवा की सहायता नहीं मिल पाई क्योंकि उन्हें कानपुर जाना पड़ा। कानपुर में तात्या टोपे की सेना ने अंग्रेजों की सेना को परास्त कर दिया था। तत्तपश्चात वे गोपालपुर में एकत्रित हुई। यहां से ये सेनायें ग्वालियर के लिये चली। सिंधियां की सेना की सहायता मिल जाने के कारण इन्हें ग्वालियर में प्रवेश करने में कठिनाई नहीं हुई। पेशवा ने कई पत्र सिंधिया को इस आशय के लिखे थे कि वह इन्हें सहायता दे परन्तु सिंधि ाया ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। उन्होंने यह निश्चय किया कि राव साहब की सहायता देने में कोई फायदा नहीं है बल्कि राव साहब से युद्ध करने का निश्चय किया।[1]

क्रांतिकारियों की सेना मुरार के निकट बहादुर पुर नामक ग्राम में पहुंची। वहां सिंधिया से इसका युद्ध हुआ। महारानी लक्ष्मीबाई से सिंधिया हार कर आगरा की और भागा, महारानी लक्ष्मीबाई ने सेना सहित ग्वालियर में प्रवेश किया। चूंकि ग्वालियर की जनता अंग्रेजों से असंतुष्ट थी इसलिये ग्वालियर की जनता ने राव साहब पेशवा का स्वागत किया। इनकी सेना से ग्वालियर की रेजींडेंसी को जला दिया। परन्तु ग्वालियर शहर में किसी प्रकार की लूटमार नहीं की गई। जीत की खुशी में पेशवा ब्राम्हण भोज कराने और नाच रंग में मस्त हो गये। भविष्य में अंग्रेजों ने लड़ाई का ध्यान उन्हें नहीं रहा। रानी ने उन्हें कई बार समझाने का प्रयास किया परन्तु उनका हाल वैसा ही रहा।[2]

---

1. शम्भू दयाल : बुन्देलखण्ड का 1857 का सवतंत्रता संग्राम
2. सर जॉन केमी : इंडियन म्यूटिनी

ग्वालियर की हार सुनकर हयूरोज को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने तुरन्त सेना एकत्रित कर ग्वालियर पर आक्रमण किया। अंग्रेजी सेना के मुरार पहुंचने की सूचना तात्या टोपे और पेशवा को न लग सकी। ये लोग आनन्द मनाने में तल्लीन थे। अंग्रेजों की पूरी तैयारी के पश्चात पेशवा ने सेना को युद्ध का आदेश दिया। जैसे ही वे युद्ध करने के लिये आगे बढ़े अंग्रेजी सेना ने इन पर आक्रमण कर दिया। दो घन्टे तक लगातार युद्ध हुआ। अन्त में अंग्रेज विजयी हुये। मुरार अंग्रेजों के हाथ में आ गया। ग्वालियर में समाचार पहुंचते ही पेशवा घबड़ा गये परन्तु लक्ष्मीबाई ने उन्हें धैर्य बंधाया और उत्साहित किया। ग्वालियर की रक्षा का भार रानी ने अपने ऊपर लिया बाकी जिम्मेदारी तात्या पर सौंपी गई। सर हयूरोज यहां से अपनी सेना सहित ग्वालियर से 5 मील दूर कोटा सरांय पहुंचे। वहीं से उसने आक्रमण करने का निश्चय किया इसके साथ बिग्रेडियर स्मिथ भी थे। इसे रानी लक्ष्मीबाई से युद्ध करने के लिये नियुक्त किया गया था। परन्तु वह लक्ष्मीबाई का सामना न कर सका। हयूरोज की सेना ने पेशवा के सभी मोर्चे छीन लिये। यह सुनकर रानी की सेना घबड़ा गई। इस समय अंग्रेजों ने सिंधिया से यह सुन लिया सिंधिया की वह सेना जो पेशवा का साथ दे रही थी, वे सिंधिया के आ जाने पर वह पुनः अंग्रेजों का साथ देने लगी। उसने रानी लक्ष्मीबाई की सेना को भी घेर लिया रानी लक्ष्मीबाई अपने विश्वास पात्र सैनिकों के साथ जीवन के अन्तिम क्षणों तक युद्ध करती रहीं। कोई भी सैनिक उनका सामना नहीं कर पाता था। यहां तलवार और भालों की लड़ाई हो रही थी। तलवार लगने से उनके सिर का पिछला भाग कट गया। एक भाला उनकी छाती पर आ लगा। परन्तु अन्तिम क्षण रानी ने आक्रमणकारी सैनिकों को अपनी तलवार से मौत के घाट सुला दिया फिर रानी ने लड़ना उचित न समझा और वे युद्ध भूमि से निकल गई। थोड़ी दूर पर वे एक पर्ण कुटी में कहीं ठहरी यहीं पर इनकी मृत्यु जयेष्ठ

शुक्ल सप्तमी अर्थात 16 जून 1858 को हुई।[1] रामचन्द्रराव देशमुख नामक सरदार ने इनके पार्थिव शरीर को घास ढेर में रखकर जला दिया बाद में इस स्थल में एक समाधि बनाई गई। परन्तु कुछ इतिहासकारों का यह मत है, कि महारानी झांसी का इस स्थल पर स्वर्गवास नहीं हुआ। वह अपने विश्वासपात्र सैनिकों के साथ बाहर निकल गई और उन क्रांतिकारियों के साथ जा मिली जो नाना साहब के साथ नेपाल नरेश जगबहादुर के यहां राजनैतिक शरण लेने के लिये पहुंचे। रानी नेपाल में सन् 1914 तक जीवित रही और उनका पत्र व्यवहार उनके दत्तक पुत्र दामोदर राव से गुप्त रूप से चलता रहा। इसी प्रकार श्री निवास बाताजी के अनुसार तात्या टोपे फांसी पर नहीं चढ़ाये गये और वे 1908 तक जीवित रहे। 18 अप्रैल सन् 1811 में तात्या के नाम पर जो व्यक्ति को फांसी पर चढ़ाया गया था वह कोई और था।[2]

महारानी झांसी की मृत्यु के पश्चात तात्या टोपे राव साहब और बांदा के नबाब अली बहादुर सानी अंग्रेजों से हार गये और उन्होंने ग्वालियर छोड़ दिया। अलीपुरा के निकट इन तीनों का युद्ध पुनः अंग्रेजो से हुआ। इस युद्ध में भी अंग्रेजों की विजय हुई। यहां से बांदा के नबाब राव साहब और तात्या टोपे राजस्थान, महाराष्ट्र और गुजरात के भागों में घूमते रहे। महारानी विक्टोरिया के घोषणा पत्र के पश्चात बांदा के नबाब ने राजपुरा के निकट हथियार डालने और आत्मसमर्पण करने का निश्चय किया। उन्होंने सिंरोज में अपने आपको अंग्रेजों के हवाले कर दिया। तत्तपश्चात राव साहब और तात्या टोपे राजस्थान में आये। यहां पर इनकी मुलाकात बहादुर शाह के पुत्र फिरोजशाह से हुई और आगे की रणनीति निर्धारित की गई। दुर्भाग्यवश मान सिंह नामक एक व्यक्ति ने जबकि तात्या पड़ोस के जंगल में विश्राम कर रहे थे। अंग्रेजों को सूचना दे दी इसी सूचना के आधार पर अंग्रेजी सैनिकों ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। यह गिरफ्तारी 7 अप्रैल सन् 1859 में हुई। उस समय इनके पास 1 घोड़ा, 1 खुखरी,

---

1. जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द : वीरांगना लक्ष्मीबाई का बलिदान पृ0 123
2. विनायक दामोदर सावरकर : 1857 का स्वतंत्र्य समर पृ0 426

3 सोने के कड़े और 118 स्वर्ण मुद्रायें पाई गई। जिनमें 21 स्वर्ण मुद्रायें सैनिकों की पारितोषिक स्वरूप दे दी गई।[1]

तात्या के गिरफ्तार हो जाने के पश्चात फिरोजशाह अरब देश की ओर चले गये और राव साहब सन्यासी के रूप में रहने लगे। कुछ दिनों पश्चात उन्हें पकड़कर बिठूर में फांसी दे दी गई। नाना साहब और दूसरे क्रांतिकारी नेपाल की ओर चले गये यहां उन्होंने राजनैतिक शरण ली। इस तरह से यह क्रांति असफल हो गई।

अंग्रेज इतिहासकारों ने महारानी लक्ष्मीबाई की बहुत प्रशंसा की है। झांसी के किले के अन्दर उनकी सैन्य संचालन क्षमता देखकर अंग्रेज आश्चर्य चकित रह गये।[2] गोरेलाल तिवारी के अनुसार रानी की हार का प्रमुख कारण पेशवा और तात्या टोपे की लापरवाही थी। इसके कारण वे आक्रमणकारी अंग्रेजों के राज्य में घुस आने पर भी युद्ध की तैयारी न कर सके। इस क्रांति की असफलता का एक कारण और भी हो सकता है कि ओरछा, दतिया और समथर के राजा अंग्रेजों के मित्र बने रहे। इसी प्रकार पन्ना, चरखारी, अजयगढ़, गौरिहार के राजा अंग्रेजों के मित्र बने रहे। व्यक्तिगत स्वार्थपरिता के कारण ये व्यक्ति राष्ट्रीय महत्व को नही समझ सके। कतिपय स्वार्थी व्यक्तियों ने स्वतः भारत माता को दासता के बंधनों में जकड़ दिया।

शाहगढ़ के राजा अंग्रेजों के द्वारा बंदी बना लिये गये और उन्हें लाहौर भेज दिया गया। इस प्रकार शाहगढ़ का राज्य अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया। बानपुर के राजा मर्दन सिंह ने भी आत्मसप्रण कर दिया। उन्हें कुछ पेंशन देकर मथुरा में रखा और बानपुर का राज्य सिंधिया को दे दिया गया। इसी प्रकार ग्वालियर पर सिंधिया का अधिकार तो बना रहा परन्तु ग्वालियर और मुरार का किला अंग्रेजों के आधीन रहा। झांसी का राज्य भी ग्वालियर में मिला

1. श्री निवास बालाजी हार्डीकर : तात्या टोपे पृ0 198
2. एस. एन. सिन्हा : रानी आफ झाँसी
3. गोरेलाल तिवारी : बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास

दिया गया परन्तु सन् 1886 में अंग्रेजों ने झांसी वापिस ले ली और ग्वालियर का किला सिंधिया को दे दिया जब अंग्रेजों की ओर से संयुक्त प्रान्त का उसे एक जिला बनाया गया था। जिस गोद लेने की प्रथा की आपत्ति के कारण इतनी बड़ी क्रांति हुई उस कानून में सन् 1862 में संशोधन किया गया राजाओं के गोद लेने का अधिकार दिया गया परन्तु जब कोई राजा गोद लेता था तो उसे अपने राज्य की आय का 1/4 भाग कर के रूप में अंग्रेज सरकार को देना पड़ता था।[1]

## क्रांति की असफलता के कारण

इतिहासकारों के अनुसार इस क्रांति के असफल होने के निम्नलिखित कारण बतलाये गये है, यदि ये कारण उपस्थित न होते तो संभवतः यह क्रांति असफल ने होती।

### 1. क्रांति का सीमित क्षेत्र :

1857 की यह क्रांति सम्पूर्ण भारतवर्ष को प्रभावित नहीं कर सकी। नर्मदा नदी के दक्षिण का भाग क्रान्ति से अछूता रहा। सिंध में शांति बनी रही। राजपूताना अंग्रेजों का वफादार बना रहा। बंगाल में किसी प्रकार की क्रांति नहीं हुई गोरखा नेपालियों ने क्रांतिकारियों का साथ न देकर अंग्रेजों का साथ दिया। पंजाब में किसी प्रकार की कोई हलचल नहीं हुई। यदि पंजाबी क्रांन्तिकारियों के साथ मिल जाते तो स्थिति दूसरी होती। कई स्थानों पर पंजाबियों ने विद्रोह का दमन भी किया। यदि यह विद्रोह सम्पूर्ण भारत में फैला होता तो अंग्रेजी शासन का अन्त हो जाता।[2]

### 1. छोटे सामन्तो सरदारों द्वारा ही विद्रोह का समर्थन :

इस क्रांति के रण में झांसी की रानी अवध के ताल्लुकेदार एवं अन्य छोटे सरदारों के अतिरिक्त कोई भी नरेश इस युद्ध में सम्मिलित नहीं हुआ। सिंधिया तथा होल्कर अंग्रेजों

---

1. राधाकृष्ण बुन्देली एवं सत्यभामा बुन्देली : बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन पृ0 171
2. एस. एन. सेन : 1857 की गदर

के वफादार बने रहे। यद्यपि इनकी सेना क्रांति में शामिल हुई। सरहिन्द के सरदारों ने अंग्रेजों की सहायता की। सर दिनकर राव तथा सालार जंग, सिंधिया तथा निजाम अपने क्षेत्रों में शांति स्थापित करने के लिये उत्तरदायी है। यदि ये साथ ने देते तो अंग्रेज क्रांतिकारियों से कभी जीत नहीं सकते थे। अंग्रेज सरकार सालार जन की बहुत आभारी है।

2. **नेतृत्व का अभाव :**

इस महान क्रांति का कोई सर्व सम्मति से नेता नहीं था। महारानी झांसी योग्य अवश्य थी परन्तु सैन्य संगठन में वे अनुभवहीन थी। विद्रोहियों के पास अपनी कोई निश्चित योजना नहीं थी। इसलिये वे अलग–अलग स्थानों में हार गये।[1]

3. **क्रांति के नेताओं का व्यक्तिगत स्वार्थ :**

इस क्रांति का कोई राष्ट्रीय उद्देश्य नहीं था। यह व्यक्तिगत स्वार्थों से प्रेरित थी। कोई अपने अतिरिक्त दूसरे की सहायता नहीं करता था। केवल झांसी की रानी और नाना साहब ने मुगल सम्राट के आधीन यह क्रांति की।

4. **अंग्रेजों का कुशल सैन्य नेतृत्व :**

अंग्रेजों की सैन्य नेतृत्व क्षमता भारतीयों से बहुत अच्छी थी। इनके पास लारेन्स ओटम, हेवलाक, निकलसन और एडवड जैसे महान व्यक्ति थे। इन्होंने प्रारम्भ से लेकर अंत तक क्रांति का दमन किया।

5. **सैनिकों का व्यक्तिगत चरित्र :**

बंगाल की सेना जिसने सर्वप्रथम क्रांति का बिगुल बजाया था वे स्वतः घमंडी थे और भारत में घृणा की दृष्टि से देखे जाते थे। कई स्थानों में इनके विद्रोह को जनता ने ही दबा दिया।[2]

---

1. गोरेलाल तिवारी : बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास
2. बार्ल चार्ल्स : हिस्ट्री आफ इंडियन क्यूटिली

6. **<u>बेसहारा क्रांतिकारी</u> :**

क्रांति की असफलता एक यह भी बहुत बड़ा कारण है, कि क्रांतिकारियों को किसी प्रकार से कोई बाहरी मदद नहीं मिली। जबकि अंग्रेजों को समुद्री मार्ग से बाहरी मदद मिलती रही।

7. **क्रांति को सभी वर्गों के समर्थन का अभाव :**

क्रांति के नेताओं ने समाज के सभी वर्गों से सहायता लेने का प्रयास किया परन्तु उन्होंने किसानों की उपेक्षा की इसलिये क्रांतिकारी नेता किसानों को अपने पक्ष में नहीं कर सके। उनके विद्रोह में केवल वे राजा महाराजा और सरदार सम्मिलित थे जिन्हें अंग्रेजी शासन से हानि पहुंची। यदि इन राजाओं की पेंशन न बन्द की गई होती और उन्हें उनके गोद लेने का अधिकार मिला रहता तो सम्भवतः यह क्रांति न होती।

8. **क्रांति के परिणाम :**

1857 की इस राज्य क्रांति ने भारतवर्ष को बहुत अधिक प्रभावित किया। इसने सारे संसार को यह दिखलाया कि अंग्रेजों के पास क्रांति को दबाने की शक्ति है

यह क्रांति यूरोप द्वारा लादी गई नवीन पद्धति के विरोध में की गई थी। यह संघर्ष अवश्यभावी था। इसका टाल पाना अत्यन्त कठिन था। इस क्रांति ने अंग्रेजी सरकार के अन्दर भय पैदा कर दिया। भारतीय रियासतों के प्रति उदारवादी नीति अपनाई गई। महारानी विक्टोरिया ने 1858 के घोषणा पत्र में यह घोषणा की कि वह भारतीय रियासतों को अपने राज्य में नहीं मिलायेगी। उनके गोद लेने के अधिकार को बहाल रखा जायेगा। रियासतों को उनकी प्रतिष्ठा के अनुसार सनदें और प्रमाण पत्र दिये गये और राजाओं पर अधिकाधिक विश्वास करने की भावना अपनाई गई। ''ईस्ट इण्डिया कम्पनी'' तोड़ दी गई उसके स्थान पर ब्रिटिश

शासन की स्थापना हुई। पिट इण्डिया एक्ट तोड़ दिया गया। उसका स्थान भारत मंत्री और भारत कौंसिल ने ले लिया।[1]

सन् 1860 तक यह विद्रोह बिलकुल शान्त हो गया। परन्तु इस आन्दोलन ने भारतीयों के हृदय में गहरा प्रभाव डाला अंग्रेज भारतीयों से घृणा करने लगे और भारतीय अंग्रजों से। इस क्रांति में हिन्दु मुसलमान दोनों ने संयुक्त रूप से भाग लिया था। परन्तु विद्रोह के बाद यह पता चला कि हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों ने क्रांति में अधिक दृढ़ता से भाग लिया था। इसलिये उन्हें हिन्दुओं से अधिक दण्ड सहना पड़े। बहुतों को फांसी पे लटका दिया गया। बहुतेरे देश से निकल गये झंझर, बल्लभगढ़, फारूख नगर तथा फरूखाबाद के नबाबों के साथ यही व्यवहार किया गया 18 नवम्बर 1857 के दिन 24 राजकुमारों को फांसी पे लटकाया गया। ये सब मुसलमान थे। मुसलमानों की सम्पत्ति व्यापक रूप से जब्त की गई। जबकि हिन्दुओं को इतना कठोर दण्ड नहीं मिला इससे हिन्दु और मुसलमानों में घृणा की भावना उत्पन्न हुयी और एकता की भावना समाप्त होने लगी। विद्रोह के पूर्व मुस्लिम जागरण जो दिल्ली में पैदा हो रहा था विद्रोह के बाद उसे महान धक्का लगा। सी0 एफ0 एन्डूज के अनुसार इस नुकसान का अन्दाज नहीं लगाया जा सकता। इससे विद्या के पुनरूद्धार का कार्य धीमा पड़ गया। जब कि हिन्दू पुनरूत्थान केन्द्र कलकत्ता का बचा रहा।

इस क्रांति से दो सिद्धान्त उभर कर आये प्रथम यह कि ब्रिटिश शक्ति अजेय है इसे कभी भी नहीं जीता जा सकता। इसको ध्यान में बनाये रखने के कारण तोप दिये गये। परन्तु इस क्रांति के कारण फौजी बजट बढ़ गया। **सर रिचर्ड टेम्पिल** के अनुसार **"साम्राज्य के प्रत्येक बड़े फौजी स्थान में अब पर्याप्त युरोपीय है जो विद्रोह के अवसर पर भी दृढ़ता पूर्वक स्थिति का नियन्त्रण कर सकते हैं।"** इस विद्रोह का यह भी परिणाम हुआ

1. नत्थू लाल गुप्त : स्वतंत्रता आंदोलन में बुन्देलखण्ड का योगदान

कि भारत की विदेशी नीति में दखल देना आरम्भ किया गया। डा0 एस0 एन0 सेन के अनुसार समस्त भारतीय सेना ने क्रान्तिकारियों का साथ न देकर अंग्रेजों का साथ दिया। अवध और शाहाबाद के प्रदेश में इस क्रान्ति के साथ सर्वसाधारण की सहानुभूति नहीं थी। न तो इसे सैनिक विद्रोह ही कहा जा सकता है और राष्ट्रीय आंदोलन बाद में यह राष्ट्रीय युद्ध में परिणित हुआ।[1] कुछ इतिहासकारों ने इसे धर्मान्धों का ईसाइयों के विरूद्ध युद्ध कहा है। डा0 आर0 सी0 मजूमदार 1857 की क्रांति को राष्ट्रीय आंदोलन नहीं मानते। उनके अनुसार जिन नेताओं ने इसमें भाग लिया उनमें इनका व्यक्तिगत स्वार्थ शामिल था। वे भारत की राष्ट्रीय भावनाओं से प्रेरित नहीं थे। हिन्दू मुसलमान संगठित थे और हृदय से बहादुर शाह विद्रोहियों के साथ नहीं थे। क्योंकि नबाबों और राजाओं ने जनता के साथ कोई हमदर्दी का व्यवहार नहीं किया। इसलिये जनता की कोई सहानुभूति इस क्रांति से नहीं थी।[2] अशोक मेहता का विचार है **''सन् 1857 को विद्रोह सैनिक विद्रोह की अपेक्षा बढ़ चढ़कर था। यह समाजरूपी ज्वालामुखी पर्वत का एक ऐसा विस्फोट था जिसमें बहुत सी शक्तियों ने निकलने का मार्ग प्राप्त किया। इस ज्वालामुखी के फटने के पश्चात सम्पूर्ण सामाजिक चित्र बदल चुका था। विद्रोह के चिन्ह गम्भीर तथा चमकते रहे।''**

1857 की राज्य क्रांति के पश्चात् पूरा बुन्देलखण्ड जहां राज्य क्रांति हुई एक शमशान भूमि के समान हो गया। सैकड़ों लावारिश लाशें शहरों, गांवों और जंगलों में पड़ी हुई थी। इसी समय कुछ विदेशी पत्रकार इस क्रांति के परिणाम को देखने केलिए भारतवर्ष आए। उन्होंने कलकत्ता से लेकर दिल्ली तक उन स्थलों का भ्रमण किया जहां क्रांतियां हुई थी। उन्होंने ब्रिटिश सरकार की खुले शब्दों में निर्दोष लोगों के मारे जाने की निन्दा की। कम्पनी का शासन समाप्त हो गया जब लार्ड केनिंग ब्रिटिश सरकार के प्रथम वाइसराय बनाए गए।

1. डा0 एस. एन. सेन : सन् 1857 का विद्रोह
2. डा0 आर. सी. मजूमदार : हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ द इंडियन प्यूपिल

इस समय ब्रिटेन की रानी महारानी विक्टोरिया थी। बुन्देलखण्ड के झांसी, जालौन, बांदा, हमीरपुर और ललितपुर के जिले अंग्रेजी राज्य के पश्चिमोत्तर प्रदेश में शामिल किए गए। बाद में इस प्रान्त का नाम संयुक्त प्रान्त रखा गया। यह प्रान्त एक लेफ्टीनेंट गवर्नर के हाथ में था। गवर्नर को सलाह देने के लिए एक कौंसिल रहा करती थी। पहले सागर और दमोह के जिले पश्चिमोत्तर प्रदेश में शामिल थे। परन्तु बाद में ये जिले नर्मदा टेरोटरीज में शामिल कर दिए गए। इस क्रांति के बाद एक नया प्रांत बनाया गया। जिसका नाम मध्य प्रदेश रखा गया। यहां भी उसी प्रकार का गवर्नर नियुक्त किया गया और उसे सलाह देने के लिए एक कौंसिल बनाई गई, सागर और दमोह जिले इसी में शामिल हुए।[1]

= = = =0= = = =

1. वी. के. जौहरी : बुन्देलखण्ड का इतिहास के आइने में

# अध्याय—4

# भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में बुन्देलखण्ड की भूमिका—गांधी पूर्व काल

## (1858—1920)

(i) विदेशी प्रभुत्व के परिणाम

(ii) राष्ट्रवादियों के कार्यक्रम एवं क्रियाकलाप

(iii) उग्रराष्ट्रवाद

(iv) क्रांतिकारी आंतकवाद

(v) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (1905—1914)

(vi) संप्रदायवाद का विकास

(vii) पृथम विश्वयुद्ध का राष्ट्रवाद पर प्रभाव

(viii) बुन्देलखण्ड की भूमिका

(अ) स्वदेशी आंदोलन एवं बुन्देलखण्ड

(ब) गदर पार्टी के क्रांतिकारी प्रयासों में बुन्देलखण्ड का योगदान (क्रांतिकारी पं. परमानंद के विशेष संदर्भ में)

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में राष्ट्रीय राजनीतिक चेतना बहुत तेजी से विकसित हुई और भारत में एक संगठित राष्ट्रीय आंदोलन का आरंभ हुआ। दिसंबर 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नींव पड़ी। आगे चल कर इसी के नेतृत्व में विदेशी शसन से स्वतंत्रता के लिए भारतीयों ने एक लंबा और साहसपूर्ण संघर्ष चलाया।

**विदेशी प्रभुत्व के परिणाम :**

आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद बुनियादी तौर पर विदेशी आधिपत्य की चुनौती के जवाब रूप में उदित हुआ। स्वयं ब्रिटिश शासन की परिस्थितियों ने भारतीय जनता में राष्ट्रीय भावना विकसित करने में सहायता दी। ब्रिटिश शासन तथा उसके प्रत्यक्ष और परोक्ष परिणामों में ही भारत में राष्ट्रीय आंदोलन के विकास के लिए भौतिक नैतिक और बौद्धिक परिस्थितियां तैयार कीं।

इस आंदोलन की जड़े भारतीय जनता के हितों तथा भारत में ब्रिटिश हितों के टकराव में थीं। अंग्रेजों ने अपने हितों को पूरा करने के लिए ही भारत को अधीन बनाया था इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर वे भारत का शासन चलाते थे। वे अक्सर ब्रिटेन के लाभ के लिए भारतीयों की भलाई को भी ध्यान में नहीं रखते थे। धीरे–धीरे भारतीयों ने अनुभव किया कि लंकाशायर के उद्योगपतियों तथा अंग्रेजों के दूसरे प्रमुख वर्गों के हितों के लिए उनके अपने हितों का बलिदान दिया जाता रहा है।

स्वयं ब्रिटिश शासन भारत के आर्थिक पिछड़ेपन का प्रमुख कारण बनता गया और भारत में राष्ट्रीय आंदोलन का आधार यही तथ्य था। यह भारत के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक तथा राजनीतिक विकास में प्रमुख बाधक तत्व बन चुका था। इससे भी

बड़ी बात यह है कि अधिक संख्या में भारतीय इस तथ्य को स्वीकार करने लगे थे और उनकी यह संख्या बढ़ती जा रही थी।

भारतीय समाज के प्रत्येक वर्ग और प्रत्येक समूह ने धीरे–धीरे यह देखा कि उसके हित अंग्रेज शासकों के हाथों में असुरक्षित हैं। किसान देख रहे थे कि सरकार जमीन की मालगुजारी के नाम पर उनकी उपज का एक बड़ा हिस्सा उनसे ले लेती थी। सरकार और उसकी पुलिस, उसकी अदालतें और उसके अधिकारी, सभी उन जमींदारों और भूस्वामियों के समर्थक और रक्षक जो किसान से कसकर लगान वसूलते थे, वे उन व्यापारियों तथा सूदखोरों के रक्षक थे जो तरह–तरह से किसान को धोखा देते, उसका शोषण करते तथा उसकी जमीन उससे छीन लेते थे। जब कभी किसान जमींदारों और सूदखोरों के दम के खिलाफ उठ खड़े होते पुलिस तथा सेना कानून और व्यवस्था के नाम पर उनको कुचल दिया करती थी।

दस्तकार और शिल्पी यह महसूस कर रहे थे कि सरकार विदेशी प्रतियोगिता को प्रोत्साहन देकर उनको तवाह कर रही थी और उनके पुनर्वास के लिए कुछ नहीं कर रही थी।

आगे चलकर बीसवीं शताब्दी में आधुनिक कारखानों, खदानों तथा बागानों के मजदूरों ने भी पाया कि सारी जवानी हमदर्दी के बावजूद सरकार पूंजीपतियों का, खासकर पूंजीपतियों का ही साथ देती थी। जब कभी मजदूर ट्रेड यूनियन बनाने तथा हड़तालों प्रदर्शनी और दूसरे संघर्षो के द्वारा अपनी स्थिति को सुधारने के प्रयत्न करते, सरकार का पूरा तंत्र उनके खिलाफ उठ खड़ा होता। इसके अलावा उन्होंने यह भी महसूस किया कि बढ़ती बेरोजगारी का समाधान केवल तीव्र औद्योगिकरण से संभव है, और यह कार्य केवल एक स्वाधीन सरकार कर सकती है।[1]

---

1. **विपिन चन्द्रा** : आधुनिक भारत पृ0 137

भारतीय समाज के दूसरे समूह भी कुछ कम असंतुष्ट नहीं थे। शिक्षित भारतीयों का उभरता हुआ वर्ग अपने देश की दयनीय आर्थिक व राजनीतिक स्थिति को समझने के लिए नए–नए प्राप्त आधुनिक ज्ञान का उपयोग कर रहा था। पहले जिन लोगों ने 1857 में ब्रिटिश शासन का इस आशा में समर्थन किया था कि विदेशी होने के बावजूद यह शासन देश को एक आधुनिक तथा औद्योगिक देश बनाएगा, वे अब धीरे–धीरे निराश होने लगे थे। आर्थिक दृष्टि से उन्हें आशा थी कि ब्रिटिश पूंजीवाद ने जैसे ब्रिटेन के पूंजीवाद के इशारों पर भारत में ब्रिटिश शासन ने जो नीतियां अपनाई थीं वे देश को आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा या अल्पविकसित बनाए हुए थीं और उसकी उत्पादक शक्तियों के विकास के बाधक हो रही थीं।

राजनीतिक स्तर पर शिक्षित भारतीय समुदाय को यह लगा कि अंग्रेजों ने पहले भारत को स्वशासन का मार्ग दिखाने के जो भी दावे किए थे, उन सबको वे भूल चुके थे। अधिकांश ब्रिटिश अधिकारियों तथा राजनीतिक नेताओं ने खुली घोषणा की थी कि अंग्रेज भारत में बने रहेंगे। इसके अलावा भाषण प्रेस तथा व्यक्ति को और अधिक स्वतंत्रता देने की जगह अंग्रेज उन पर अधिकाधिक प्रतिबंध लगाते जा रहे थे। अंग्रेज अधिकारियों तथा लेखकों ने भारतीयों को जनतंत्र या स्वशासन की दृष्टि से अयोग्य घोषित कर दिया था। संस्कृति के क्षेत्र में भी शासक उच्च शिक्षा और आधुनिक विचारों के प्रसार के बारे में अधिकाधिक नाकरात्मक, बल्कि शत्रुतापूर्ण रवैया अपना रहे थे।

उभरते हुए भारतीय पूंजीपति वर्ग में बहुत धीरे–धीरे राष्ट्रीय राजनीतिक चेतना विकसित हुई। लेकिन इस वर्ग ने भी धीरे–धीरे पाया कि वह साम्राज्यवाद के कारण नुकसान उठा रहा था। सरकार की व्यापार, चुंगी, कर तथा यातायात संबंधी नीतियों के कारण इसके विकास में भारी बाधाएं आ रही थीं। नया तथा कमजोर वर्ग होने के नाते इसे अपनी

कमजोरियों की भरपाई के लिए सरकार की सक्रिय सहायता की जरूरत थी। इसके बजाए सरकार और उसकी नौकरशाही उन विदेशी पूंजीपतियों का साथ दे रही थी जो अपने विशाल संसाधनों के साथ भारत आकर यहां के सीमित औद्योगिक क्षेत्र को हथिया रहे थे। भारतीय पूंजीपतियों का विशेष विरोध विदेशी पूंजीपतियों की सख्त प्रतियोगिता के प्रति था। इस तरह भारतीय पूंजीपतियों ने भी महसूस किया कि उनके अपने स्वतंत्र विकास तथा साम्राज्यवाद के बीच एक अंतर्विरोध था, और यह कि एक राष्ट्रीय सरकार ही भारतीय व्यापार और उद्योगों के तीव्र विकास की परिस्थितियां तैयार कर सकती थी।

भारतीय समाज में केवल जमींदार, भूस्वामी तथा राजे–महराजे ही ऐसे वर्ग थे जिनके हित विदेशी शासकों के हितों से मेल खाते थे और इसलिए वे अंत तक विदेशी शासन का साथ देते रहे। लेकिन इन वर्गों से भी बहुत से लोग राष्ट्रीय आंदोलन में आए। उस समय के राष्ट्रवादी वातावरण में देशभक्ति की भावना ने बहुतों को प्रभावित किया। इसके अलावा प्रजातीय भेदभाव तथा श्रेष्ठता की नीतियों ने प्रत्येक विचारशील, स्वाभिमानी भारतीय में घृणा जगाकर उसे उठ खड़ा किया, चाहे वह किसी भी वर्ग का क्यों न रहा हो। सबसे बड़ी बात यह है कि स्वयं ब्रिटिश शासन के विदेशी चरित्र ने भी राष्ट्रवादी प्रतिक्रिया को जन्म दिया। कारण यह है कि विदेशी दासता गुलाम जनता के दिलों में हमेशा ही देशभक्ति की भावनाएं पैदा करती है।

संक्षेप में, विदेशी साम्राज्यवाद का अपना चरित्र तथा भारतीय जनता पर उसका हानिकारक प्रभाव, इन बातों के कारण ही भारत में एक शक्तिशाली साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन का धीरे–धीरे जन्म और विकास हुआ। यह आंदोलन एक राष्ट्रीय आंदोलन था क्योंकि यह समाज के विभिन्न वर्गों और समुदायों के लोगों को प्रेरित कर रहा था कि वे अपने मतभेद भुलाकर अपने शत्रु के खिलाफ एकजुट हों।[1]

---

1. विपिन चन्द्रा : आधुनिक भारत पृ0 139

देश का प्रशासकीय और आर्थिक एकीकरण उन्नीसवीं और वीसवीं शताब्दी में भारत का एकीकरण हो चुका था और वह एक राष्ट्र के रूप में उभर चुका था। इसलिये भारतीय जनता में राष्ट्रीय भावनाओं का विकास आसानी से हुआ। अंग्रेजों ने धीरे–धीरे पूरे देश में सरकार की एक समान, आधुनिक प्रणाली लागू कर दी थी और इस तरह इसका प्रशासकीय एकीकरण हो चुका था। ग्रामीण और स्थानीय आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था के विनाश तथा अखिल भारतीय पैमाने पर आधुनिक व्यापार तथा अखिल उद्योग की स्थापना क कारण भारत का आर्थिक जीवन निरंतर एक इकाई के रूप में ढलता चला गया तथा देश के विभिन्न भागों में रहने वाले लोगों के आथिक हित परस्पर संबद्ध हुए। इसके अलावा रेलवे तार तथा एकीकृत डाक व्यवस्था के सुभारंभ ने भी देश को एकजुट बना दिया था और जनता, खासकर नेताओं के पारस्परिक संपर्क को बढ़ावा दिया था।

इस सिलसिले में भी विदेशी शासन का अस्तित्व ही एकता का कारण बन गया, हालांकि यह शासन सामाजिक वर्ग जाति धर्म या क्षत्रे का भेद किए बिना पूरी भारतीय जनता का दमन करता था। पूरे देश के लोगों ने देखा कि वे एक ही शत्रु अर्थात ब्रिटिश शासन, के हाथों पीड़ित थे। एक तरफ तो एक भारतीय राष्ट्रवाद के उदय का एक प्रमुख कारण बन गया और दूसरी तरफ साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष तथा एस संघर्ष के दौरान उपजी एकजुटता की भावना ने भारतीय राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया।[1]

**पश्चिमी विचार और शिक्षा :**

उन्नीसवीं शदी में आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा और विचारधारा के प्रसार के फलस्वरूप बहुत बड़ी संख्या में भारतीयों ने एक आधुनिक, बुद्धिसंगत, धर्म निरपेक्ष, जनतांत्रिक तथा राष्ट्रवादी राजनीतिक दृष्टिकोण अपनाया। वे यूरोपीय राष्ट्रों के समसामयिक राष्ट्रवादी

1. पुखराज जैन : स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास पृ0 152

आंदोलनों का अध्ययन, उसकी प्रशंसा तथा उनका अनुकरण करने के प्रयत्न भी करने लगे। रूसो, पेन, जान स्टअर्ट मिल तथा दूसरे पाश्चात्य विचारक उनके राजनीतिक मार्गदर्शक बन गए जबकि मैजिनी, गैरीबाल्डी तथ आयरलैंड राष्ट्रवादी नेता उनके राजनीतिक आदर्श हो गए।

विदेशी दासता के अपमान की चुभन को सबसे पहले इन्हीं शिक्षित भारतीयों ने महसूस किया। विचारों से आधुनिक बनकर इन लोगों ने विदेशी शासन की बुराईयों के अध्ययन की योग्यता भी प्राप्त कर ली। उन्हें एक आधुनिक मजबूत समृद्ध और एकतावद्ध भारत की कल्पना से प्रेरणा प्राप्त होती रही। कालांतर में इन्हीं में से बेहतरीन तत्व राष्ट्रीय आंदोलन के नेता और संगठनकर्ता बने।

राष्ट्रीय आंदोलन आधुनिक शिक्षा प्रणाली की उपज नहीं थी, बल्कि वह ब्रिटेन तथा भारत के हितों के टकराव से उत्पन्न हुआ था। इस प्रणाली ने किया यह कि शिक्षित भारतीयों को पाश्चात्य विचार अपनाकर राष्ट्रीय आंदोलन के नेतृत्व संभालने तथा उसे एक जनतांत्रिक और आधुनिक दिशा देने में समर्थ बनाया। वास्तविक यह है कि स्कलों तथ कालेजों में अधिकारीगण विदेशी शासन के प्रति विनम्रता और सेवा का भाव ही जगाने के प्रयत्न करते थे। राष्ट्रवादी विचार तो आधुनिक विचारों के सामान्य प्रसार के कारण आए। चीन तथा इंडोनेशिया जैसे दूसरे एशियाई देशों में तथा पूरे अफ्रीका में भी आधुनिक स्कूलों और कालेजों की संख्या बहुत ही कम थी।[1]

आधुनिक शिक्षा ने शिक्षित भारतीयों के दृष्टिकोणों तथा हितों में एक सीमा तक एकजुटता और समानता पैदा की। इस सिलसिले में अंग्रेजी भाषा की एक महत्वपूर्ण भूमिका रही। यह आधुनिक विचारों के प्रसार का साधन बन गई। यह देश के विभिन्न भाषाई क्षेत्रों के

---

1. आर. सी. अग्रवाल : भारतीय संविधान का विकल्प और राष्ट्रीय आंदोलन

शिक्षित भारतीयों के बीच विचारों के आदान–प्रदान तथा संपर्क का भी माध्यम बन गई। लेकिन जल्दी ही अंग्रेजी साधारण जनता में आधुनिक ज्ञान के प्रसार में बाधक भी बन गई। यह शिक्षित नागरिक वर्गो को साधारण जनता खासकर ग्रामीण जनता से अलग रखने का काम भी करने लगी। भारत के राजनीतिक नेताओं ने इस तथ्य को अच्छी तरह समझा दादाभाई नौरोजी, सैयद अहमद खान, और जस्टिस रानाडे से लेकर तिलक और गांधीजी तक सभी ने शिक्षा प्रणाली में भारतीय भाषाओं को एक बड़ी भूमिका दिए जाने की मांग पर आंदोलन किए। वास्तव में, जहां तक साधारण जनता का सावाल था आधुनिक विचारों का प्रसार विकासमान भारतीय भाषाओं उनमें विकसित हो रहे साहित्य तथा सबसे अधिक तो भारतीय भाषाओं के लोकप्रिय प्रेस के कारण हुआ।

**<u>प्रेस तथा साहित्य की भूमिका</u> :**

वह प्रमुख साधन प्रेस था जिसके द्वारा राष्ट्रवादी भारतीयों ने देशभक्ति की भावनाओं का आधुनिक आर्थिक–सामाजिक–राजनीतिक विचारों का प्रचार किया तथा एक अखिल भारतीय चेतना जगाई। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बड़ी संख्या में राष्ट्रवादी समाचार पत्र निकले। उनके पन्नों पर सरकारी नीतियों की लगातार आलोचना होती थी भारतीय दृष्टिकोण को सामने रखा जाता था लोगों की एकजुट होकर राष्ट्रीय कल्याण के काम करने को कहा जाता था तथा जनता के बीच स्वशासन जनतंत्र औद्योगीकरण आदि के विचारों को लोकप्रिय बनाया जाता था। देश के विभिन्न भागों में रहने वाले राष्ट्रवादी कार्यकर्ताओं को भी परस्पर विचारों को आदान–प्रदान करने में प्रेस ने समर्थ बनाया।

उपन्यासों, निबंधों, देशभक्तिपूर्ण काव्य आदि के रूप में राष्ट्रीय साहित्य ने भी राष्ट्रीय चेतना जगाने में प्रमुख भूमिका निभाई। बंगला में बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय तथा रवीन्द्र

में मुसलमान सांस्कृतिक और ऐतिहासिक प्रेरणा पाने के लिए अरबों तथा तुर्कों के इतिहास की ओर नजर करने लगे। इसके अलावा, पश्चिम के सांस्कृतिक साम्राज्यवाद की चुनौती का जबाव देते समय बहुत से भारतीय यह बात भी भूल जाते थे कि भारत की जनता कई क्षेत्रों में सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़ी थी। इससे गर्व तथा आत्मसंतोष की एक झूठी भावना पनपी जो भारतीयों को अपने समाज के आलोचनात्मक अध्ययन से रोकती थी। इसके कारण सामाजिक सांस्कृतिक पिछड़ेपन के खिलाफ संघर्ष कमजोर हुआ, तथा अनेक भारतीय दूसरी जातियों की स्वस्थ और नई प्रवृतियों और नए विचारों से विमुख रहे।

**शासकों का जातीय दंभ :**

भारत में राष्ट्रीय भावनाओं के विकास का एक गौण परंतु महत्वपूर्ण कारण जातीय श्रेष्ठता का यह दंभ था जो भारतीयों के प्रति अनेक अंग्रेजों के व्यवहार में पाया जाता था। इस जातीय दंभी का एक कड़वा और प्रचलित रूप तब देखने को मिलता था, जब कोई अंग्रेज किसी भारतीय से किसी विवाद में उलझा होता था और न्याय व्यवस्था अंग्रेज का पक्ष लेती थी। जैसा कि **जी. ओ. ट्रेवेलियन** ने 1864 में लिखा है **"हमारे अपने देश के एक व्यक्ति का बयान भी अदालतों में अनेकों हिंदुओं से अधिक महत्व रखता है। यह एक ऐसी परिस्थिति है जिसमें शक्ति का एक भयानक साधन एक बेईमान और चालाक अंग्रेज के हाथों में पहुंच जाता है।"**[1]

यह जातीय दंभ जाति, धर्म प्रांत या वर्ग का भेदभाव किए बिना तमाम भारतीयों को समान रूप से हीन करार देता था। वे यूरोपीय लोगो के क्लबों में नहीं जा सकते थे और अक्सर उन्हें किसी गाड़ी के उस डिब्बे में यात्रा की अनुमति नहीं थी जिसमें यूरोपीय यात्री जा रहे हों। इससे उनमें राष्ट्रीय अपमान का बोध हुआ तथा अंग्रेजों के मुकाबले वे अपने आपको एक जनगण के रूप में देखने लगे।

---

1. पुखराज जैन : स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास

नाथ टैगोर, असमी में लक्ष्मीनाथ बेजबरूआ, मराठी में विष्णु शास्त्री, चिपलुणक तमिल में सुब्रामन्य भारती हिन्दी में भारतेंदु हरिश्चंद्र और उर्दू में अल्ताफ हुसैन हाली इस काल के कुछ प्रमुख राष्ट्रवादी लेखक थे।[1]

**भारत के अतीत की खोज :**

अनेक भारतीय इस कदर पस्त हो चुके थे कि वे अपनी स्वशासन की क्षमता में एकदम भरोसा खो बैठे थे। इसके अलावा उस समय के अधिकांश ब्रिटिश अधिकारी औश्र लेखक लगातार यह बात दोहराते रहते थे कि भारतीय लोग कभी भी अपना शासन चलाने के योग्य नहीं थे, कि हिंदू और मुसलमान हमेशा आपस में लड़ते रहे हैं, कि भारतीयों के भाग्य में ही विदेशियों के अधीन रहना लिखा है, कि उनका धर्म और सामाजिक जीवन पतित और असभ्य रहे हैं और इस कारण ये लोकतंत्र या स्वशासन तक के काबिल नहीं हैं। इस प्रचार का जबाव देकर अनेक राष्ट्रवादी नेताओं ने जनता में आत्मविश्वास और आत्मसम्मान जगाने के प्रयत्न किए। वे गर्व से भारत की सांस्कृतिक धरोहर की ओर संकेत करते और आलोचकों का ध्यान अशोक चंद्रगुप्त विक्रमादित्य और अकबर जैसे शासकों ने विद्वानों कला, स्थापत्य, साहित्य, दर्शन विज्ञान और राजनीति में भारत की राष्ट्रीय धरोहर की फिर से खोज करने में जो कुछ किया, उससे इन राष्ट्रवादी नेताओं को बल तथा प्रोत्साहन मिला। दुर्भाग्य से कुछ राष्ट्रवादी नेता दूसरे छोर तक चले गए तथा भारत के अतीत की कमजोरियों और पिछड़ेपन से आंखे चुराकर गैर लोचनात्मक ढंग से उसे महिमामंडित करने लगे। खास तौर पर प्राचीन भारत की उपलब्धियों का प्रचार करने तथा मध्यकालीन भारत की उतनी ही महान उपलब्धियों को अनदेखा करने की प्रवृति ने भी बहुत नुकसान पहुंचाया। इसके कारण हिंदुओं में सांप्रदायिक भावनाओं के विकास को प्रोत्साहन मिला। साथ ही इसकी जबावी प्रवृति के रूप

---

1. विपिन चन्द्रा : आधुनिक भारत पृ0 139

## भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस :

राष्ट्रवादी कार्यकर्ताओं की एक अखिल भारतीय संगठन बनाने की योजनाएं अनेक भारतीय जन तैयार करते आ रहे थे। लेकिन इस विचार को एक ठोस और अंतिम प देने का श्रेय एक सेवानिवृत अंग्रेज सिविल सवेंट, ए. ओ. हयूम, को जाता है। उन्होंने प्रमुख भारतीय नेताओं से संपर्क किया और उनके सहयोग से बंबई में दिसंबर 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के पहले अधिवेशन का आयोजन किया। इसकी अध्यक्षता डब्ल्यू. सी. बनर्जी ने की तथा इसमें प्रतिनिधि शामिल थे। राष्ट्रीय कांग्रेज के उद्देश्य इस प्रकार घोषित किए गए देश के विभिन्न भागों के राष्ट्रवादी राजनीतिक कार्यकर्ताओं के बीच मैत्रीपूर्ण संबंध विकसित करना, जाति धर्म प्रांत का भेद किए बिना राष्ट्रीय एकता की भावना को विकसित तथा मजबूत करना, जनप्रिय भागों को निरूपण तथा उन्हें सरकार के सामने रखना, और सबसे महत्वपूर्ण यह कि देश में जनमत को प्रशिक्षित और संगठित करना।

कहा जाता है कि कांग्रेस की स्थापना के पीछे हयूम का प्रमुख उद्देश्य शिक्षित भारतीयों में बढ़ रहे असंतोष को सुरक्षित निकासी के लिए एक **'सैफ्टी बाल्व'** बनाना था। वे असंतुष्ट राष्ट्रवादी शिक्षित वर्गों तथा असंतुष्ट किसान जनता के आपसी मेल को रोकना चाहते थे। मगर यह 'सेफ्टी वाल्व' का सिद्धांत सच्चाई का बहुत छोटा अंश है और यह पूरी अपर्याप्त तथा भ्रामक है। राष्ट्रीय कांग्रेस सबसे बढ़कर राजनीतिक चेतना प्राप्त भारतीयों की इस आकांक्षा का प्रतिनिधित्व करती थी कि उनकी आर्थिक और राजनीतिक प्रगति के लिए कार्यरत एक राष्ट्रीय संगठन बनाया जाए।[1]

इस तरह 1885 में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के साथ छोटे पैमाने पर लेकिन संगठित रूप में, विदेशी शासन से भारत की मुक्ति का संघर्ष आरंभ हो गया। इसके बाद तो

---

1. विपिन चन्द्रा : आधुनिक भारत पृ0 142

राष्ट्रीय आंदोलन बढ़ता ही गया तथा देश और देश की जनता ने स्वाधीन होने तक आराम को हराम जाना। आरंभ से ही कांग्रेस ने एक पार्टी नहीं, बल्कि एक आंदोलन का काम किया 1886 में कांग्रेस के 436 प्रतिनिधि विभिन्न स्थानीय संगठनों तथा समूहों द्वारा चुने गए थे। इसके बाद कांग्रेस हर वर्ष दिसंबर में और हर बार देश के एक नए भाग में अपने अधिवेशन करती रही। जल्द ही इसके प्रतिनिधियों की संख्या बढ़कर हजारों में पहुंच गई। इसके प्रतिनिधियों में अधिकांश लोग वकील, पत्रकार, व्यापारी, उद्योगपति, अध्यापक और जमींदार होते थे। 1890 में कलकत्ता विश्वविद्यालय की पहली महिला स्नातक ने कांग्रेस के अधिवेशन को संबोधित किया। यह इस बात का प्रतीक था कि भारत का स्वाधीन संग्राम स्त्रियों को उस पतित अवस्था से उबारेगा जिसमें वे सदियों के कालक्रम में पहुंचा दी गई थी।[1]

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस कोई एक धारा नहीं थी जिसमें राष्ट्रवाद की नदी आगे बढ़ी। प्रांतीय सम्मेलन और स्थानीय समितियों और राष्ट्रवादी समाचार पत्र भी बढ़ते हुए राष्ट्रवादी आंदोलन के प्रमुख उद्घोषक थे। खासकर प्रेस राष्ट्रवादी विचारों तथा राष्ट्रवादी आंदोलन को फैलाने का प्रमुख साधन बन गया था। इस काल के अधिकांश समाचार पत्र निश्चित ही व्यापार के रूप में नहीं चलाए जाते थे बल्कि राष्ट्रवादी गतिविधियों के मुख पत्र के रूप में आरंभ किए जाते थे। राष्ट्रीय कांग्रेस के आरंभिक वर्षो में इसके कुछ महान अध्यक्षों के नाम इस प्रकार थे : दादाभाई नौरोजी, बदरूद्दीन तेयबजी फिरोजशाह मेहता, पी. आनंद चारूल, सुरेंद्रनाथ बनर्जी, रमेशचंद्र दत्त, आनंदमोहन बोस और गोपाल कृष्ण गोखले। इस काल में कांग्रेस तथा राष्ट्रीय आंदोलन के कुछ और प्रमुख नेता महादेव गोविंद रानाडे, बाल, गंगाधर तिलक, शिशिर कुमार तथा मोतीलाल घोष नामक दो भाई, मदनमोहन मालवीय जी. सुब्रामन्य अययर, सी. विजयराधवाचारी और दिनशा ई वाचा थे।

---

1. पट्टाभि सीतारमैया : ए हिस्ट्री आफ नेशनल कांग्रेस

## आरंभिक राष्ट्रवादियों के कार्यक्रम और कार्यकलाप :

आंरभ के राष्ट्रवादी नेताओं का विश्वास था कि देश की रानीतिक मुक्ति के लिए सीधी लड़ाई लड़ना अभी व्यवहारिक नहीं था। जो कुछ व्यवहारिक था, वह था कि राष्ट्रीय भावनाओं को जगाया तथा मजबूत किया जाए, बड़ी संख्या में भारतीय जनता की राष्ट्रवादी राजनीति की धारा में लाया जाए और राजनीति तथा राजनीतिक आंदोलन के लिए उन्हें शिक्षित किया जाए। इस बारे में पहला महत्वपूर्ण कार्य राजनीतिक प्रश्नों में जनता की रूचि विकसित करना तथा देश में जनमत का संगठन करना था। दूसरे राष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रिय मांगों का निरूपण किया जाना था ताकि उभरते हुए जनमत को एक अखिल भारतीय स्वरूप मिल सके। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि पहले पहल राजनीतिक चेतना प्राप्त भारतीयों तथा राजनीतिक कार्यकर्ताओं और नेताओं में राष्ट्रीय एकता पैदा की जाए।

आरंभिक राष्ट्रीय नेता इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि भारत अभी हाल ही में एक राष्ट्र बनने की प्रक्रिया में पहुंचा है, दूसरे शब्दों में भारत अभी एक नवोदित राष्ट्र था। भारत के राष्ट्रीय स्वरूप की बहुत सावधानी से निखारने की आवश्यकता थी। भारतीयों को बहुत होशियारी से एक राष्ट्र के रूप में संगठित किया जाना था। राजनीतिक चेतना प्राप्त भारतीयों को क्षेत्र, जाति या धर्म के भेदों से ऊपर उठकर राष्ट्रीय एकता की भावना को विकसित और मजबूत करने के लिए लगातार डटकर काम करना पड़ रहा था। आरंभिक राष्ट्रवादियों ने अपनी राजनीतिक तथा आर्थिक मांगों का निर्धारण इस बात को दृष्टि में रखकर किया कि भारतीय जनता को एक साझे आर्थिक राजनीतिक कार्यक्रम के आधार पर संगठित करना है।

---

## (अ) साम्राज्यवाद की अर्थशास्त्रीय आलोचना :

साम्राज्यवाद की अर्थशास्त्रीय आलोचना आंरभिक राष्ट्रवादियों का संभवतः सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक कार्य था। उन्होंने तत्कालीन औपनिवेशिक आर्थिक शोषण के सभी तीनों रूपों, अर्थात व्यापार, उद्योग तथा वित्त के द्वारा शोषण पर ध्यान दिया। उन्होंने अच्छी तरह समझा कि ब्रिटेन के आर्थिक साम्राज्यवाद का मूल तत्व भारतीय अर्थव्यवस्था को ब्रिटिश अर्थव्यवस्था के अधीन बनाना था। भारत में एक औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के मूल तत्वों को विकसित करने के ब्रिटिश प्रयासों को उन्होंने तीखा विरोध किया। ये तत्व थे कच्चा माल पैदान करने वाले देश, ब्रिटिश उद्योगों में पैदा माल के लिए मंडी, तथा विदेशी पूंजी के निवेश के क्षेत्र के रूप में भारत का रूपातरण। उन्होंने इस औपनिवेशिक ढांचे पर आधारित सरकर की लगभग सभी महत्वपूर्ण आर्थिक नीतियों के खिलाफ एक शक्तिशाली आंदोलन खड़ा किया। आर्थिक प्रश्नों पर राष्ट्रवादी आंदोलन के कारण अखिल भारतीय स्तर पर यह विचार फैला कि ब्रिटिश शासन भारत के शोषण पर आधारित है, भारत को गरीब बना रहा है तथा आर्थिक पिछड़ापन और अल्पविकास पैदा कर रहा है। ब्रिटिश शासन से परोक्ष ढंग से जो भी लाभ हुए हों, उनके मुकाबले ये हानियां कहीं बहुत अधिक थीं।[1]

## (ब) सांविधानिक सुधार :

शुरू के राष्ट्रवादियों का आरंभ से ही यह विश्वास था कि भारत में अंततः लोकतांत्रिक स्वशासन लागू होना चाहिए। लेकिन उन्होंने इस लक्ष्य को फौरन प्राप्त किए जाने की मांग नहीं की। उनकी तात्कालिक मांगे अत्यधिक साधारण थीं। वे एक–एक कदम उठाकर स्वाधीनता की मंजिल तक पहुंचना चाहते थे। वे बहुत सावधान भी थे कि सरकार उनकी गतिविधियों को कुचल न दे। 1885 से 1892 तक ये विधायी परिषदों के प्रसार और सुधार की ही मांग उठाते रहे।

---

1. इकवाल नारायण : हमारा राष्ट्रीय आंदोलन एवं संविधान

उनके आंदोलन के दबाव में ब्रिटिश सरकार को 1892 में भारतीय परिषद कानून पास करना प्रांतीय परिषदों में सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई। इनमें से कुछ सदस्यों को भारतीय अप्रत्यक्ष चुनाव द्वारा चुन सकते थे, मगर बहुमत सरकारी सदस्यों का ही रहता। राष्ट्रवादी 1892 के कानून से पूरी तहर असंतुष्ट थे तथा उन्होंने इसे मजाक बतलाया। उन्होंने परिषदों में भारतीय सदस्यों की संख्या बढ़ाने तथा उन्हें अधिक अधिकार दिए जाने की मांग उठाई। खास तौर पर उन्होंने सार्वजनिक धन पर भारतीयों के नियंत्रण की मांग की तथा वह नारा दिया जो इससे पहले अमरीकी जनता ने अपने स्वाधीनता के युद्ध के दौरान लगाया था। यह नारा था **''प्रतिनिधित्व नहीं तो कर भी नहीं।''** पर साथ ही साथ वे अपने लोकतांत्रिक मांगों के आधार को व्यापक बनाने में असफल रहे उन्होंने जनता के लिए या स्त्रियों के लिए मताधिकार की मांग नहीं की।

**(स) जनता की भूमिका :**

संकुचित सामाजिक आधार आरंभिक राष्ट्रीय आंदोलन की बुनियादी कमजोरी थी। अभी जनता में इस आंदोलन की पैठ नहीं हुई थी। वास्तव में जनता में नेताओं की कोई राजनीतिक आस्था नहीं थी। सक्रिय राजनीतिक संघर्ष छेड़ने की समस्याओं का वर्णन करते हुए गोपाल कृष्ण गोखले ने कहा कि ''देश में विभाजन तथा उपविभाजन की एक अंतहीन श्रृंखला है।, जनता का अधिकांश भाग अज्ञान से भरा हुआ तथा विचार और भावना के पुराने तरीकों से कसकर चिपका हुआ है, और यह जनता हर प्रकार के परिवर्तन की विरोधी है और परिवर्तन को समझती नहीं है।'' इस प्रकार नरमपंथी नेताओं का विश्वास था कि औपनिवेशिक शासन के खिलाफ जुझारू जन संघर्ष तभी छेड़ा जा सकता है जबकि भारतीय समाज के बहुविष तत्वों को एक राष्ट्र के सूत्र में बांधा जा चुका हो। परंतु वास्तव में यही तो वह संघर्ष

था जिनके दौरान भारतीय राष्ट्र का निर्माण हो सकता था। जनता के प्रति इस गलत दृष्टिकोण का नतीजा यह हुआ कि राष्ट्रीय आंदोलन के आरंभिक चरण में जनता की एक निष्क्रिय भूमिका ही रही। इससे राजनीतिक नरमी का जन्म हुआ। जनता के समर्थन के अभाव में वे जुझारू राजनीतिक उपाय नहीं अपना सकते थे। हम आगे देखेंगे कि बाद के राष्ट्रवादी लोग नरमपंथियों से ठीक इसी अर्थ में भिन्न थे।

फिर भी आरंभिक राष्ट्रीय आंदोलन के संकुचित सामाजिक आधार से हमें यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि यह उन्हीं सामाजिक वर्गो के संकुचित हितों तक सीमित था जो इसमें शामिल थे। इसके कार्यक्रम और इसकी नीतियों भारतीय जनता के सभी वर्गों के हितों से जुड़ी थी और औपनिवेशिक वर्चस्व के विरूद्ध उदीयमान भारतीय राष्ट्रीय का प्रतिनिधित्व करती थीं।

**(द) <u>सरकार कर रवैया</u> :**

आरंभ से ही ब्रिटिश अधिकारी उभरते हुए राष्ट्रवादी आंदोलन के खिलाफ तथा राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रति शंकालु थे। वायसराय डफरिन ने ह्यूम को यह सुझाव दिया कि कांग्रेस राजनीतिक नहीं बल्कि सामाजिक मामलों को देखें, और यह इस तरह उसने राष्ट्रीय आंदोलन को दिशाभ्रष्ट करना चाहा। लेकिन कांग्रेस के नेताओं ने ऐसा परिवर्तन करने से इंकार कर दिया। परंतु जल्दी ही यह स्पष्ट हो गया कि राष्ट्रीय कांग्रेस अधिकारियों के हाथों का खिलौना नहीं बन सकती और यह धीरे–धीरे भारतीय राष्ट्रवाद का केंद्र बिंदु बनती जा रही थी। अब ब्रिटिश अधिकारी खुलकर राष्ट्रीय कांग्रेस तथा दूसरे राष्ट्रवादी प्रवक्ताओं की आलोचना और निंदा करने लगे। डफरिन से लेकर नीचे तक के सभी ब्रिटिश अधिकारी राष्ट्रवादी नेताओं को **''वेवफा बाबू''** **''राजद्रोही ब्राह्मण''** तथा **''हिसंक खलनायक''**

कहने लगे। कांग्रेस को **''राजद्रोह का कारखाना''** कहा जाने लगा। डफरिन ने 1887 में एक सार्वजनिक भाषण में राष्ट्रीय कांग्रेस पर हमला किया तथा उसे **'जनता के एक बहुत सूक्ष्म भाग'** का प्रतिनिधि बताकर उसकी हंसी उड़ाई।[1]

लार्ड कर्जन ने 1890 में विदश सचिव को बतलाया कि **''कांग्रेस का महल भरभरा रहा है और भारत में रहते हुए मेरी मुख्य महत्वकांक्षा यह है कि मैं शांति के साथ इसे मरने में सहयोग दें सकू।''**[2] भारतीय जनता की बढ़ती एकता उनके शासन के लिए एक बड़ा खतरा है, यह महसूस करके अंग्रेज अधिकारियों ने **''बांटो और राज करो''** की नीति को और भी जमकर लागू किया। उन्होंने सैयद अहमद खान, बनारस के राजा शिवप्रसाद तथा दूसरे ब्रिटिश समर्थक व्यक्तियों को प्रोत्साहित किया कि वे कांग्रेस के खिलाफ आंदोलन चलाएं। उन्होंने हिंदुओं और मुसलमानों में भी फूट डालने की कोशिक की। राष्ट्रवाद का विकास रोकने के लिए उन्होंने एक तरफ छोटी–छोटी छूटें देने और दूसरी तरफ निर्मम दमन करने की नीति अपनाई। फिर भी, अधिकारियों का यह विरोध राष्ट्रीय आंदोलन का विकास रोकने में असफल रहा।

**उग्रराष्ट्रवाद :**

अपने आरंभिक काल में भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन ने अधिकाधिक लोगों को विदेशी प्रभुत्व की बुराइयों तथा देशभक्ति की भावना विकसित करने की आवश्यकता के प्रति जागरूक बनाया था। उसके शिक्षित भारतीयों को आवश्यक राजनीतिक प्रशिक्षण दिया था। वास्तव में उसने जनता की भावना को ही बदल दिया था तथा देश में एक नए जीवन का संचार किया था। साथ ही साथ, राष्ट्रवादियों की एक मानने में ब्रिटिश सरकार की असफलता ने राजनीतिक चेतना प्राप्त लोगों में उस समय वर्चस्व प्राप्त नरमपंथी नेतृत्व के सिद्धांतों व विधियों के प्रति असंतोष पैदा कर दिया था।

---

1. विपिन चन्द्रा : आधुनिक भारत पृ0 149
2. दुर्गादास : इंडिया फ्राम कर्जन टु नेहरू

नरमपंथी राष्ट्रवादियों की मांगे मानने की जगह ब्रिटिश शासक उनकी हंसी उड़ाते और उन्हें नीचल निगाहों से देखते थे। परिणामस्वरूप सभाओं, प्रार्थनापत्रों, स्मरण पत्रों और विधायिकाओं में भाषणों की जगह और भी जोरदार रानीतिक कार्रवाइयों और तरीकों की मांगे उठने लगीं।

नरम पंथी राष्ट्रवादियों की राजनीति इस विश्वास पर आधारित थी कि ब्रिटिश शासन को अंदर से सुधारा जा सकता है। लेकिन राजनीतिक और आर्थिक प्रश्नों से संबंधित ज्ञान जब फैला धीरे–धीरे यह विश्वास टूट गया। इसके लिए काफी बड़ी हद तक नरमपंथियों का आंदोलन स्वयं उत्तरदायी था। राष्ट्रवादी लेखकों और आंदोलनकारियों ने जनता की निर्धनता का दोषी ब्रिटिश शासन को ठहराया। राजनीतिक रूप से चेतन भारतीयों को विश्वास था कि ब्रिटिश शासन का उद्देश्य भारत का आर्थिक शोषण करना, अर्थात भारत की संपत्ति से इंग्लैंड को समृद्ध बनाना है। उन्हें महसूस हुआ कि जब तक भारतीयों द्वारा नियंत्रित और संचालित कोई सरकार ब्रिटिश साम्राज्यवाद की जगह नहीं ले लेती, आर्थिक क्षेत्र में भारत शायद ही कुछ प्रगति कर सके। राष्ट्रवादियों ने खासकर यह भी देखा कि भारत के उद्योग तब तक फल–फूल नहीं सकते जब तक कि उन्हें सुरक्षा और प्रोत्साहन देने वाली कोई भारतीयों की सरकार न हो। भारत में 1896 और 1900 के बीच जो भयानक अकाल फूटे ओर जिनमें 90 लाख से ऊपर लोग मरे, वे जनता की दृष्टि में विदेशी शासन के आर्थिक दुष्परिणामों के जीत–जागते प्रतीक थे।

1892 और 1905 के बीच घटित राजनीतिक घटनाओं ने भी राष्ट्रवादियों को निराश करके उन्हें और भी उग्र राजनीति के बारे में सोचने को बाध्य किया। **1892 का इंडियन कौंसिल एक्ट**, घोर निराशा का कारण सिद्ध हुआ। दूसरी ओर जनता को जो थोड़े से राजनीतिक अधिकार प्राप्त थे, उन पर भी हमले किए गए। 1898 में एक कानून बनाया गया जिसमें विदेशी शासन के प्रति "अंसतोष की भावना" फैलाने को अपराध घोषित किया गया। 1899 में कलकत्ता नगर निगम में

भारतीय सदस्यों की संख्या घटा दी गई। 1904 में **इंडियन आफिशियल सेक्रेट्स एक्ट** बना जिसने प्रेस की स्वतंत्रता को सीमित कर दिया। 1897 में नाटू भाइयों को बिना मुकद्दमा चलाए देशबाहर कर दिया गया और उन पर लगाए गए आरोपों तक को भी जनता को नहीं बतलाया गया। उसी वर्ष लोकमान्य तिलक और दूसरे समाचार पत्र संपादकों को विदेशी सरकार के प्रति जनता को भड़काने के लिए लंबी–लंबी जेल–सजाएं दी गई। इन सबसे जनता को लगा कि सरकार और भी अधिक राजनीतिक अधिकार देने के बजाए उन्हें मिले थोड़े से अधिकार भी छीने ले रही थी। लार्ड कर्जन के कांग्रेस विरोधी दृष्टिकोण ने अधिकाधिक लोगों के कांग्रेस विरोधी दृष्टिकोण ने अधिकाधिक लोगों को विश्वास दिलाया कि भारत में ब्रिटिश शासन के रहते राजनीतिक और आर्थिक प्रगति की आशा करना व्यर्थ है। यहां तक कि नरमपंथी नेता **गोखले** को भी शिकायत थी कि **"नौकरशाही खुलकर स्वार्थी और राष्ट्रीय आकांक्षाओं की शत्रु बनती जा रही है।"**[1]

सामाजिक सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी ब्रिटिश शासन अब प्रगतिशील रहा था। प्राथमिक और तकनीकी शिक्षा में कोई प्रगति नहीं हो रही थी। साथ ही अधिकारीगण उच्च शिक्षा के प्रति शंकित हो रहे थे और देश में उसके प्रसार में बाधा डालने की कोशिश तक कर रहे थे। 1904 के भारतीय विश्वविद्यालय कानून से राष्ट्रवादियों को लगा कि भारत के विश्वविद्यालयों पर और भी सख्त सरकारी नियंत्रण स्थापित करने तथा उच्च शिक्षा का प्रसार रोकने का प्रयास किया जा रहा है।

इस तरह अधिकाधिक संख्या में भारतीयों को विश्वास होता जा रहा था कि देश की आर्थिक राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रगति के लिए स्वशासन आवश्यक है और राजनीतिक पराधीनता का मतलब भारतीय जनता के विकास का अवरूद्ध होना है।

---

1. वी. डी. पाण्डेय : भारत वर्ष का इतिहास

19 वीं सदी के अंत तक भारतीय राष्ट्रवादियों का आत्मविश्वास और आत्मसम्मान बहुत बड़ा था। उन्हें अपना शासन आप कर सकने तथा देश का विकास कर सकने की अपनी क्षमता में विश्वास हो चुका था। तिलक, अरविंद घोष और बिपिन चंद्र पाल जैसे नेताओं ने राष्ट्रवादियों को आत्मविश्वास का संदेश दिया और उनसे आग्रह किया कि वे भारतीय जनता के चरित्र व क्षमताओं पर भरोसा करें। उन्होंने जनता को बतलाया कि उनकी दुर्दशा का हल उनके अपने हाथों में है और इसके लिए उन्हें निर्भय और बलवान होना चाहिए। स्वामी विवेकानंद कोई राजनीतिक नेता न थे, मगर यह संदेश उन्होंने बार–बार दिया। उन्होंने घोषणा की। दुनिया में अगर कोई पाप है तो वह निर्बलता है। निर्बलता का त्याग करो, निर्बलता पाप है और निर्बलता मृत्यु है. . .. सत्य की कसौटी यह है कोई भी वस्तु अगर तुम्हें शारीरिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक दृष्टि से निर्बल बनाती है तो उसे विष समझ उसका त्याग करो कि उसमें कोई जीवन नहीं है, और वह सत्य नहीं हो सकती। उन्होंने जनता से यह भी कहा कि वह अतीत के महिमामंडल के भरोसे जीना छोड़े और यहां की तरह भविष्य का निर्माण करें। उन्होंने कहा, "हे भगवान, हमारा यह देश अतीत के ऊपर अपनी शाश्वत निर्भरता से कब मुक्त होगा।"

आत्म प्रयास में इस विश्वास के कारण राष्ट्रीय आंदोलन का विस्तार करने की आकांक्षा भी जागी। यह विचार फैला कि अब राष्ट्रवाद के उद्देश्य को ऊंचे वर्ग शारीरिक और नैतिक दृष्टि से मृतप्राय है।" यह महसूस किया जाने लगा था कि स्वाधीनता पाने के लिए जो व्यापक बलिदान आवश्यक है वह केवल जनता ही कर सकती है।

19 वीं सदी के अंत तक शिक्षित भारतीयों की संख्या में स्पष्ट वृद्धि हुई थी। इनका एक बड़ा भाग प्रशासन में बहुत कम वेतन पर काम कर रहा था और दूसरे बहुत से लोग बेराजगार घूम रहे थे। अपनी आर्थिक स्थिति के कारण ये लोग ब्रिटिश सरकार के चरित्र को आलोचनात्मक दृष्टि

से देखने लगे। उनमें से अनेक उग्र राष्ट्रवादी नीतियों से आकर्षित हुए। इससे भी महत्वपूर्ण था शिक्षा–प्रसार का विचारधारात्मक पक्ष। शिक्षित भारतीयों की संख्या जितनी बढ़ी, उतना ही लोकतंत्र राष्ट्रवाद और आमूल परिवर्तन के पश्चिमी विचारों प्रभव ीाी फैला। ये शिक्षित भारतीय उग्र राष्ट्रवाद के बेहतरीन प्रचारक और अनुयायी सिद्ध हुए। इसके दो करण थे वे कम वेतन पाने वाले या बेराजेगार थे, और साथ ही आधुनिक विचार प्रणाली और राजनीति की तथा यूरोपीय और विश्व इतिहास की शिक्षा भी उन्हें मिली।[1]

इस काल की अनेक विदेशी घटनाओं ने भी भारत में उग्र राष्ट्रवाद के विकास को प्रोत्साहित किया। 1868 केबाद एक आधुनिक जापान के उदय ने दिखा दिया कि एक पिछड़ा हुआ एशियाई देश भी बिना किसी पश्चिमी नियंत्रण के अपना विकास कर सकता है। कुछ ही दशर्को के काल में जापान के नेताओं ने अपने देश को पहले दर्जे की औद्योगिक और सैनिक शक्ति बना दिया था व्यापक प्राथमिक शिक्षा का आरंभ किया था और एक सक्षम और आधुनिक प्रशासन खड़ा किया था। 1896 में इथियोपिया के हाथों इटली की सेना तथा 1905 में जापान के हाथों रूस की हार ने यूरोपीय श्रेष्ठता के भ्रम को तोड़कर रख दिया। एशिया में हर जगह एक छोटे से एशियाई देश के हाथों यूरोप की सबसे बड़ी सैनिक शक्ति की पराजय की खबर को उत्साह के साथ सुना। 18 जून 1905 को 'करांची क्रोनिकल' नामक समाचापत्र ने जनता की भावनाओं को इस प्रकार व्यक्त किया। जो कुछ एक एशियाई देश ने किा है वह दूसरे भी कर सकते हैं अगर जापान रूस की धुनाई कर सकता है तो भारत भी उतनी आसानी से इंग्लैंड को धुन सकता है। आइए हम अंग्रेजों को समुद्र में फेंक दें और विश्व की महान शक्तियों के बीच जापान के बराबर अपना स्थान ग्रहण करें।

आयरलैंड, रूस, मिस्र, तुर्की और जापान के क्रांतिकारी आंदोलनों तथा दक्षिण अफ्रीका के बोअर युद्ध ने भारतीयों को विश्वास दिला दिया कि अगर जनता एकजुट और बलिदान के लिए

---

1. विपिन चन्द्रा : आधुनिक भारत

तैार हो तो शक्तिशाली निरंकुश सरकारों को भी चुनौती दे सकती है। जिस बात की सबसे अधिक आवश्यकता थी वह थी देशभक्ति और आत्मविश्वास की भावना।

राष्ट्रीय आंदोलन के लगभग आरंभ से ही उग्र राष्ट्रवाद का एक संप्रदाय देश में मौजूद था। इस संप्रदाय के प्रतिनिधि बंगाल में राजनारायण बोस और अश्विनी कुमार दत्त तथा महाराष्ट्र में विष्णु शास्त्री चिपलुंकर जैसे नेता थे। इस संप्रदाय के सबसे महत्वपूर्ण प्रतिनिधि **बाल गंगाधर तिलक** थे जिन्हें आम तौर पर **लोकमान्य तिलक** कहते हैं। उनका जन्म 1856 में हुआ था। बंबई विश्वविद्यालय से स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद से ही उन्होंने पूरा जीवन देश सेवा के लिए समर्पित कर दिया। 1880 के बाद के दशक में उन्होंने न्यू इंग्लिश स्कूल की स्थापना में भग लिया यही स्कूल बाद में फर्ग्यूसन कालेज के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उन्होंने अंग्रेजी से **'मरहठा तथा मराठी** में **'केसरी'** नामक पत्रों की स्थापना की। 1889 से वे 'केसरी' को संपादन करने लगे और इस पत्र के पृष्ठों में वे राष्ट्रवाद का प्रचार करने लगे। उन्होंने जनता को भार की स्वाधीनता के लिए साहसी, स्ववलंबी और निःस्वार्थ योद्धा होने का पाठ पढ़ाया। 1893 में उन्होंने एक परंपरागत धार्मिक उत्सव, अर्थात **गणपति उत्सव** का उपयोग गीतों और भाषणों के द्वारा राष्ट्रवादी विचारों के प्रचार के लिए करना आरंभ कर दिया। 1895 में उन्होंने **शिवाजी उत्सव** का आयोजन आरंभ किया। इसका उद्देश्य महाराष्ट्रीय युवकों के आगे अनुकरण के लिए शिवाजी का उदाहरण सामने रखकर उनमें राष्ट्रवाद की भावना पैदा करना था। 1896–97 में उन्होंने महाराष्ट्र में कर न चुकाने का अभियान चलाया। उन्होंने महाराष्ट्र के अकाल पीड़ित किसानों से कहा कि अगर उनकी फसल चौपट हो जाए तो वे मालगुजारी न दें। जब सरकार के खिलाफ घृणा और असंतोष भड़काने के आरोप में अधिकारियों ने उन्हें 1897 में गिरफ्तार किया तो उन्होंने दिलेरी और बलिदान का एक शानदार उदाहरण सामने रखा। उन्होंने सरकार से क्षमा मांगने से इंकार कर दिया जिस पर उन्हें 18 महीनों की कड़ी कैद की सजा हुई। इस तरह वे आत्मबलिदान की नई राष्ट्रीय भावना के जीते जागते प्रतीक बन गये।[1]

1. रामरख सिंह सहगल : आजादी के दीवाने पृ0 141

20वीं सदी के आरंभ में उग्र राष्ट्रवादी संप्रदाय को एक अनुकूल राजनीतिक वातावरण प्राप्त हुआ। अब इसके समर्थक भी राष्ट्रीय आंदोलन के दूसरे चरण का नेतृत्व करने के लिए आगे बढ़े। तिलक के अलावा उग्र राष्ट्रवाद के दूसरे महत्वपूर्ण नेता विपिनचंद्र पाल, अरविंद घोष और लाला लाजपतराय थे। **उग्र राष्ट्रवादियों के कार्यक्रम के विशिष्ट राजनीतिक पहलू** इस प्रकार थे।[1]

उनका मत था कि भारतीयों को मुक्ति स्वयं अपने प्रयासों से प्राप्त करनी होगी तथा उन्हें अपनी पतित स्थिति से उबरने के प्रयत्न करने होंगे। उन्होनें घोषणा की कि इस कार्य के लिए बड़े–बड़े बलिदान करने होंगे और तकलीफें सहनी होगीं। उनके भाषण, लेख और राजनीतिक कार्य दिलेरी और आत्मविश्वास से भरपूर थे और अपने देश की भलाई के लिए किसी भी व्यक्तिगत बलिदान को कम समझते थे।

भारत अंग्रेजों के "कृपापूर्ण मार्गदर्शन" और नियंत्रण में प्रगति कर सकता है, इसे मानने से उन्होंने इंकार कर दिया। वे विदेशी शासन से दिल से नफरत करते थे, और उन्होंने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की कि राष्ट्रीय आंदोलन का लक्ष्य स्वराज्य या स्वाधीनत है।

उन्हें जनता की शक्ति में असीम विश्वास था और उनकी योजना जनता की कार्रवाई के द्वारा स्वराज्य प्राप्त करने की थी। इसलिए उन्होंने जनता के बीच राजनीतिक कार्य पर और जनता की सीधी राजनीतिक कार्रवाई पर जोर दिया।

1905 तक भारत में ऐसे अनेक नेता थे जो पीछे के काल में राजनीतिक आंदोलनों के मार्गदर्शन तथा राजनीतिक संघर्षों के नेतृत्व संबंधी बहुमूल्य अनुभव प्राप्त कर चुके थे। राजनीतिक कार्यकर्ताओं की एक प्रशिक्षित टुकड़ी के बिना राष्ट्रीय आंदोलन को एक उच्चतर राजनीतिक स्तर तक ले जाना बहुत कठिन होता। इस तरह 1905 में जब बंगाल को दो टुकड़ों में बांट दिया गया तक उग्र राष्ट्रवाद के उदय की परिस्थितियां विकसित हो चुकी थीं। इसी के साथ भारत के राष्ट्रीय

1. विपिन चन्द्रा : आधुनिक भारत पृ0 170

आंदोलन का दूसरा चरण आरंभ होता है। 20 जुलाई 1905 को लार्ड कर्जन ने एक आज्ञा जारी करके बंगाल को दो भागों में बांट दिया। पहले भाग में पूर्वी बंगाल और असम थे। और उसकी आबादी 3.1 करोड़ थी। जबकि दूसरे भाग में शेष बंगाल था और उसकी जनसंख्या 5.4 करोड़ थी जिसमें 1.8 करोड़ बंगाली और 3.6 करोड़ बिहारी और उड़िया थे। तर्क यह दिया था कि बंगाल का प्रांत इतना बड़ा था कि एक प्रांतीय सरकार उसका प्रशासन चला सकना असंभव था। लेकिन जिन अधिकारियों ने यह योजना तैयार की उनके दूसरे, राजनीतिक उद्देश्य भी थे। बंगाल तब भारतीय राष्ट्रवाद का केंद्र माना जाता था और इस कदम के द्वारा अधिकारीगण बंगाल में राष्ट्रवाद के प्रसार को रोकना चाहते थे। भारत सरकार के गृहसचिव रिसले ने 6 दिसंबर 1904 को एक आधिकारिक टिप्पणी में लिखा– एकजुट बंगाल अपने आप में एक शक्ति है। बंगाल अगर विभाजित हो तो सभी भागों की दिशाएं अलग–अलग होंगी। यही बात कांग्रेस के नेता महसूस करते हैं, उनकी आशंकाएं पूरी तरह सही हैं और इस योजना का महत्व इसी में है। हमारा एक उद्देश्य हमारे शासन के विरोधियों को तोड़ना और इस प्रकार उन्हें कमजोर करना है।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और बंगाल के राष्टवादियों ने विभाजन का जमकर विरोध किया। बंगाल के भीतर भी जमींदार, व्यापारी, वकील, छात्र, नगरों के गरीब लोग और स्त्रियां तक, समाज के विभिन्न वर्ग अपने प्रांत के विभाजन के विरोध में स्वतः स्फूर्त ढंग से उठ खड़े हुए।[1] राष्ट्रवादियों ने बंगाल के विभाजन को एक प्रशासकीय उपाय ही नहीं बल्कि भारतीय राष्ट्रवाद के लिए एक चुनौती समझा। उन्होंने इसे बंगाल को क्षेत्रीय और धार्मिक आधार पर बांटने का प्रयास माना धार्मिक आधार पर इसलिए कि पूर्वी भाग में मुसलमानों और पश्चिमी भाग में हिंदुओं का बहुमत था। उन्होंने समझा कि इस प्रकार बंगाल में राष्ट्रवाद को कमजोर और नष्ट करने का प्रयास किया जा रहा है। इससे बंगाली भाषा और संस्कृति को जबर्दस्त धक्का लगता। उनका तर्क था कि प्रशासन

---

1. बी. डी. पाण्डेय : भारत वर्ष का इतिहास

में कुशलता लाने के लिए हिंदी भाषी विहार और उड़िया भाषी उडीसा को प्रांत के बंगाली भाषा क्षेत्र से अलग किया जा सकता है। इसके लिए सरकार ने यह कदम जनमत की पूरी तरह उपेक्षा करके उठाया था। विभाजन के खिलाफ बंगाल के विरोध की तीव्रता का कारण यह है कि इसने एक बहुत संवेदनशील व साहसी जनता की भावनाओं को चोट पहुंचाई थी।

बंग–भंग–विरोधी आंदोलन या स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन बंगाल के पूरे राष्ट्रीय नेतृत्व के प्रयासों के कारण था, न कि आंदोलन के किसी एक भाग के। आरंभ में इसके प्रमुखतम नेता सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और कृष्ण कुमार मिश्र जैसे नरपंथी नेता थे, मगर बाद में इसका नेतृत्व उग्र और क्रांतिकारी राष्ट्रवादियों ने संभाल लिया। वास्तव में आंदोलन के दौरान नरमपंथी और उग्र राष्ट्रवादियों, दोनों ने एक दूसरे से सहयोग किया।[1]

विभाजन विरोधी आंदोलन 7 अगस्त 1905 का आरंभ हुआ। उस दिन कलकत्ता के टाउनहाल में विभाजन के खिलाफ एक बहुत बड़ा प्रदर्शन हुआ इस सभा के बाद प्रतिनिधि आंदोलन को फैलाने के लिए पूरे प्रांत में फैल गए।

विभाजन 16 अक्टूबर 1905 को लागू किया गया आंदोलन के नेताओं ने मनाने की घोषणा की। उस दिन लोगें ने उपवास रखे। कलकत्ता में हड़ताल हुई। लोग बहुत तड़के ही नगे पैर चलकर गंगा में स्नान करने पहुंचे। इस अवसर के लिए **रवीन्द्रनाथ ठाकुर** ने अपना प्रसिद्ध गीत **"आमार सोनार बंगला"** लिखा जिसे सड़कों पर चलने वाली भीड़ गाती। वाद में इस गीत को बंगलादेश ने 1971 में अपनी मुक्ति के बाद अपने राष्ट्रीय गीत के रूप में अपनाया। कलकत्ता की सड़कें **"बंदे मातरम"** की आवाज से गूंज उठी और यह गीत रातो–रात बंगाल का राष्ट्रीय गान बन गया; बाद में यही पूरे राष्ट्रीय आंदोलन का राष्ट्रगान बन गया। रक्षाबंधन के उत्सव का एक नए ढंग से उपयोग किया गया। बंगालियों और बंगाल के दो टुकड़ों की अटूट एकता के प्रतीक के रूप में हिंदू–मुसलमानों ने एक–दूसरे की कलाइयों पर राखियां बांधी।

---

1. इकबाल नारायण : हमारा राष्ट्रीय आंदोलन एवं भारत वर्ष का संविधान

दोपहर को एक बहुत बड़ा प्रदर्शन किया और वयोवृद्ध नेता आनंदमोहन बोस ने बंगाल की अटूट एकता जतलाने के लिए फेडरेशन हाल की बुनियाद रखी। इस अवसर पर उन्होंने 50,000 लोगों की सभा को संबोधित किया।

स्वदेशी और बहिष्कार बंगाल के नेताओं को लगा कि केवल प्रदर्शनों, सार्वजनिक सभाओं और प्रस्तावों से शासकों पर बहुत प्रभाव पड़ने वाला नहीं है। इसके लिए और भी सकारात्मक उपाय करने होंगे जिससे जनता की भावनाओं की तीव्रता का अच्छी तरह पता चले। इसका परिणाम था स्वदेशी और बहिष्कार। पूरे बंगाल में जनसभाएं की गई जिनमें स्वदेशी अर्थात भारतीय वस्तुओं का उपयोग तथा ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार के निर्णय किए और शपथ लिए गए। अनेक जगहों पर विदेशी कपड़ों की होली जलाई गई और विदेशी कपड़े बेचने वाली दुकानों पर धरने दिए गए। स्वदेशी आंदोलन को व्यापक सफलता मिली। सुरेंद्रनाथ बनर्जी के अनुसार स्वदेशीवाद जब शक्तिमान था तब उसने हमारे सामाजिक व पारिवारिक जीवन के पूरे ताने–वाने को प्रभावित किया। अगर विवाहों में ऐसी विदेशी वस्तुएं उपहार में दी जाती जिनके समान वस्तुएं देश में बन सकती हों तो वे लौटा दी जाती थीं। पुरोहित अक्सर ऐसे समारोहों में धार्मिक कार्य करने से इंकार कर देते जिनमें ईश्वर को भेंट में विदेशी वस्तुएं दी जाती थीं। जिन उत्सवों में विदेशी नमक या विदेशी चीनी का उपयोग किया जाता उसमें भाग लेने में मेहमान लोग इनकार कर देते थे।[1]

स्वदेशी आंदोलन का एक महत्वपूर्ण पक्ष आत्मनिर्भरता या आत्मशक्ति पर दिया जाने वाला जोर था। आत्मनिर्भरता का मतलब था राष्ट्र की गरिमा, सम्मान और आत्मविश्वास की घोषणा। आर्थिक क्षेत्र में इसका अर्थ देशी उद्योगों व अन्य उद्यमों को बढ़ावा देना। अनेक कपड़ा मिलें, साबुन और माचिस के कारखाने, हैंडलम के उद्यम, राष्ट्रीय बैंक और बीमा कंपनियां खुलीं। आचार्य पी. सी. राय ने प्रसिद्ध बंगाल कैमिकल स्वदेशी स्टोर्स की स्थापना की। महान कवि रविंद्रनाथ ठाकुर तक ने एक स्वदेशी स्टोर खुलवाने में सहायता की।

---

1. सुभाष कश्यप : सांविधानिक विकास एवं स्वतंत्रता संघर्ष पृ0 92

संस्कृति के क्षेत्र में स्वदेशी आंदोलन के अनेक परिणाम सामने आए। राष्ट्रवादी काव्य, गद्य और पत्रकारिता का विकास हुआ। इस समय रवींद्रनाथ ठाकुर रजनीकांत सेन, सैयद अबू मुहम्मद और मुकुंद दास ने देशभक्ति के जो गीत लिखे वे बंगाल में आत्मनिर्भरता के लिए रचनात्मक उपाय किए गए। साहित्यिक, तकनीकी और शारीरिक शिक्षा देने के लिए राष्ट्रवादियों ने राष्ट्रीय शैक्षिक संस्थाएं स्थापित की क्योंकि वे शिक्षा की तत्कालीन प्रणाली को राष्ट्रवाद से विमुख करने वाली या कम से कम अपर्याप्त मानते थे। 15 अगस्त 1906 को एक राष्ट्रीय शिक्षा परिषद की स्थापना की गई कलकत्ता में एक राष्ट्रीय कालेज का आरंभ हुआ जिसके प्रधानाचार्य अरविंद घोष थे।[1]

छात्रों, स्त्रियों, मुसलमानों और जनता की भूमिकाएं स्वदेशी आंदोलन में एक प्रमुख भूमिका बंगाल के युवकों ने निभाई। उन्होंने स्वदेशी का प्रयोग और प्रचार किया तथा विदेशी वस्त्र बेचने वाली दुकानों के आगे धरने आयोजित करने में आगे–आगे रहे। सरकार ने छात्रों को दबाने की हर संभव कोशिश की। जिन स्कूलों और कालेजों के छात्र स्वदेशी आंदोलन में सक्रिय हो उन्हें दंडित करने के आदेश जारी किए गए, उन्हें प्राप्त सहायताएं व विशेषाधिकार छीन लिए गए, ओर उन्हें विश्वविद्यालय से संबद्ध कर दिया गया, उनके छात्रों को छात्रवृत्ति की परीक्षाओं में बैठने से रोक दिया गया, तथा उन्हें हर सरकारी नौकरी से वंचित रखने का निर्णय किया गया। राष्ट्रवादी आंदोलन में भाग लेने के दोषी छात्रों के खिलाफ अनुशासन की कार्यवाही की गईं। अनेकों पर जुर्माने किए गए, अनेकों स्कूलों व कालेजों से निकाल दिए गए, गिरफ्तार किए गए, और कभी–कभी पुलिस द्वारा लाठियों से पीटे भी गए। फिर भी छात्रों ने झुकने से इंकार कर दिया।

स्वदेशी आंदोलन की एक महत्वपूर्ण बात इसमें स्त्रियों की सक्रिय भागीदारी थी। शहरी मध्य वर्ग की सदियों से घरों में कैद महिलाएं जुलूसों और धरनों में शामिल हुईं। इसके बाद में राष्ट्रवादी आंदोलन में वे बराबर सक्रिय रहीं।

---

1. आर. सी. अग्रवाल : राष्ट्रीय आंदोलन एवं भारतीय संविधान

अनेकों प्रमुख मुसलमान नागरिकों ने भी स्वदेशी आंदोलन में भाग लिया। इनमें प्रसिद्ध वकील अब्दुर्रसूल, लोकप्रिय आंदोलनकारी लियाकत हुसैन और व्यापारी गजनवी प्रमुख थे (जिसे भारत सरकार ने 14 लाख रूपयों का एक ऋण दिया था) उन्होंने इस आधार पर विभाजन का समर्थन किया कि पूर्वी बंगाल में मुसलमानों का बहुमत होगा। ढाका के नबाव और दूसरों को यह साप्रदायिक दृष्टिकोण अपनाने के लिए अधिकारियों ने प्रोत्साहित किया। ढाका में भाषण देते हुए लार्ड कर्जन ने कहा कि बंगाल के विभाजन का एक कारण था कि ''पूर्वी बंगाल के मुसलमानों में ऐसी एकता स्थापित की जाए जैसी कि पुराने मुसलमान सूबेदार और सम्राटों के समय से देखने को नहीं मिली है।''[1]

स्वदेशी और स्वराज की गूंज जल्द ही देश दूसरे प्रांतों में भी गूंजने लगी। बंबई, मद्रास और उत्तर भारत में बंगाल की एकता के समर्थन में तथा विदेशी मालों के बहिष्कार के लिए आंदोलन चलाए गए। स्वदेशी आंदोलन को देश के दूसरे भागों तक पहुंचाने में प्रमुख भूमिका तिलक की रही। तिलक ने जल्द ही समझ लिया कि बंगाल में इस आंदोलन के उभरने के कारण भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास का एक नया अध्याय आरंभ हुआ है। ब्रिटिश शासन के खिलाफ जनसंघर्ष चलाने तथा आपसी सहानुभूति के बंधन में पूरे देश को बांधने की चुनौती सामने थी, और यह एक अच्छा खासा अवसर था। उग्र राष्ट्रवाद का विकास विभाजन विरोधी आंदोलन की कमान जल्द ही तिलक, विपिनचंद्र पाल और अरविंद घोष जैसे उग्र राष्ट्रवादियों के हाथों में पहुंच गई। इसके अनेक कारण थे।

नरमपंथियों के नेतृत्व में पहले के विरोध आंदोलन का कोई खास परिणाम नहीं निकला था। यहां तक कि नरमपंथी जिस उदारवादी भारत सचिव लार्ड मार्ले से बहुत आशाएं लगाए बैठे थे उसने भी कह दिया कि विभाजन अब एक अंतिम सत्य है जिसे बदला नहीं जा सकता। दूसरे, बंगाल के तीनों भागों खासकर पूर्वी बंगाल की सरकार ने हिंदूओं और मुसलमानों में फूट डालने के बड़े प्रयत्न

---

1. विपिन चन्द्रा : आधुनिक भारत पृ0 172

किए। बंगाल में हिंदू मुस्लिम वैमनस्य के बीज संभवतः इसी समय पड़े। इससे राष्ट्रवादियों का जी खट्टा हो गया। लेकिन जनता को जुझारू और क्रांतिकारी राजनीति की ओर जिस बात ने सबसे अधिक धकेला वह थी सरकार की दमन की नीति। खासकर पूर्वी बंगाल की सरकार ने राष्ट्रवादी आंदोलन को दबाने की बहुत कोशिश की। स्वदेशी आंदोलन में छात्रों को भाग लेने से रोकने के लिए सरकार ने प्रयास किए। पूर्वी बंगाल में सड़कों पर "बंदे मातरम" का नारा लगाने पर प्रतिबंध लगा दिया गया। जनसभाओं को सीमित कर दिया गया और कभी-कभी उनकी अनुमति भी नहीं दी जाती थी। प्रेस पर नियंत्रण के लिए भी कानून बनाए गए। स्वदेशी कार्यकर्ताओं पर मुकदमे चलाए गए और प्रेस की स्वतंत्रता पूरी तरह समाप्त कर दी गई। अनेक शहरों में सैनिक पुलिस लगा दी गई जहां जनता से उसकी झड़पें हुई। दमन की सबसे बदनाम मिसालों में से एक है अप्रैल 1906 में बारीसाल में आयोजित बंगाल प्रांतीय सम्मेलन पर पुलिस का हमला। अनेक युवक स्वयं सेवकों को बुरी तरह पीटा गया और सम्मेलन को जबर्दस्ती भंग कर दिया गया। दिसंबर 1908 में बंगाल के नौ नेताओं को देश बाहर कर दिया गया इनमें आदरणीय नेता कृष्ण कुमार मित्र और अश्विनी कुमार दत्त भी थे। इसके पहले 1907 में पंजाब के शहरी इलाकों में हुए दंगों के बाद लाला लातपतराय और सरदार अजीत सिंह देश बाहर कर दिए गए थे। 1908 में महान नेता तिलक को दोबारा गिरफ्तार करके 6 वर्ष जेल की वहशियाना सजा दी गई। मद्रास में चिदचरम पिल्ले और आंध्र में हरि सर्वोत्तम राव तथा दूसरे लोग बंदी बनाए गए।[1] जब राष्ट्रवादियों ने मोर्चा संभाला तो प्रतिरोध का आह्वान भी किया। उन्होंने जनता से आग्रह किया कि वह सरकार के साथ सहयोग ने करे और सरकारी सेवाओं अदालतों सरकारी स्कूल कालेजों नगरपालिकाओं और विधानमंडलों का बहिष्कार करें, अर्थात अरविंद घोष के शब्दों में "वर्तमान परिस्थितियों में प्रशासन चला सकना असंभव बना दें।" उग्र राष्ट्रवादियों ने स्वदेशी और विभाजन विरोधी आंदोलन को जन आंदोलन बनाने की कोशिश की और विदेशी शासन

---

1. सुन्दर लाल : भारत के अंग्रेजी राज

से मुक्ति का नारा दिया। **अरविंद घोष** ने खुलकर घोषणा की कि **"राजनीतिक स्वतंत्रता किसी भी राष्ट्र की प्राण वायु है।"** इस तरह बंगाल के विभाजन का प्रश्न गौण हो गया और भारत की स्वतंत्रता का प्रश्न भारतीय राजनीति को केंद्रीय प्रश्न बन गया। उग्र राष्ट्रवादियों ने आत्म बलिदान का आह्वान भी किया कि इसके बिना कोई भी महान उद्देश्य प्राप्त नहीं किया जा सकता।

फिर भी यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि उग्र राष्ट्रवादी भी जनता को सकारात्मक नेतृत्व देने में अफसल रहे। वे आंदोलन चलाने के लिए आवश्यक कुशल नेतृत्व और कुशल संगठन नहीं दे सके। उन्होंने जनता को जागृत तो कर दिया मगर यह नहीं समझ सके कि जनता की इस नई–नई निकली शक्ति का उपयोग कैसे करें या राजनीतिक संघर्ष के नए रूप क्या हों। निष्क्रिय प्रतिरोध और असहयोग विचार मात्र बनकर रहे गए। वे देश की वास्तविक जनता अर्थात किसानों तक पहुंचने में भी असफल रहे। उनका आंदोलन नगरों के निम्न और मध्य वर्गों तथा जमींदारों तक सीमित रहा। 1908 के अंत तक उनकी राजनीति एक बंद गली में समा चुकी थी। फलस्वरूप उन्हें दबाने में सरकार काफी हद तक सफल रही। उनका आंदोलन उनके प्रमुख नेता तिलक की गिरफ्तारी का तथा विपिनचंद्र पाल और अरविंद घोष द्वारा सक्रिय राजनीति से संयास का धक्का नहीं झेल सका।

लेकिन राष्ट्रवादी भावनाओं का उभार दब न सका। जनता सदियों पुरानी नींद से जाग चुकी थी और राजनीति में निर्भीक तथा दिलेर रवैया अपनाना सीख चुकी थी। उसने आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता का पाठ पढ़ लिया था और जनता की लामबंदी तथा राजनीतिक कार्रवाई के नए रूपों को समझ लिया था। अब उसे एक नया आंदोलन उभरने की प्रतीक्षा थी। इसके अलावा अपने अनुभव से जनता ने कीमती सबक सीखे। **गांधीजी** ने बाद में लिखा था कि **"विभाजन के बाद जनता ने समझ लिया था कि उसे कष्ट उठाने में समर्थ बनना चाहिए।"** वास्तव में विभाजन

विरोधी आंदोलन के कारण भारतीय राष्ट्रवाद में एक महान और क्रांतिकारी परिवर्तन आया। बाद के राष्ट्रीय आंदोलन ने इस पूंजी का खूब उपयोग किया।

**क्रांतिकारी :**

सरकार का दमन और साथ में जनता को कुशल नेतृत्व देने में नेताओं की असफलता के कारण उपजी कुंठा जैसी बातों ने क्रांतिकारी आंतकवाद को जन्म दिया। बंगाल के युवकों ने देखा कि शांतिपूर्ण प्रतिरोध और राजनीतिक कार्रवाई के सारे रास्ते बंद हैं। हताश होकर उन्होंने व्यक्तिगत बहादुरी के कार्यो और बम की राजनीति का सहारा लिया। अब उन्हें यह भरोसा नहीं रहा था कि निष्क्रिय प्रतिरोध से राष्ट्रवादी उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है। जैसा कि बारीसाल सम्मेलन के बाद समाचार पत्र **'युगांतर'** ने लिखा **''समस्या का समाधान जनता के अपने हाथों में है। उत्पीड़ित के इस अभिशाप को रोकनेके लिए भारत के ती करोड़ लोगों को अपने 60 करोड़ हाथ ऊपर उठाने होंगे। ताक का सामना ताकत से करना होगा।''** लेकिन इन क्रांतिकारी युवकों ने जनक्रांति लाने की कोई कोशिश नहीं की। इसके बजाए उन्होंने आयरलैंड के आतंकवादियों और रूसी ध्वंसवादियों की विधियां अपनाने का फैसला किया कि अलोकप्रिय अधि ाकारियों का वध किया जाए। इस सिलसिले का आरंभ 1997 में ही हो चुका था। जब चाफेकर भाइयों ने पूना में दो बदनाम ब्रिटिश अधिकारियों का वध कर डाला था। 1904 में विनायक दामोदर सावरकर ने ''अभिनव भारत'' नाम से क्रांतिकारियों का एक गुप्त संगठन बनाया था। 1905 के बाद अनेकों समाचार पत्र क्रांतिकारी आतंकवाद की पैरवी करने लगे थे। इनमें बंगाल के ''संध्या'' और ''युगान्तर'' तथा महाराष्ट्र के ''काल'' सबसे प्रमुख थे।

दिसंबर 1907 में बंगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर को जान से मारने की कोशिश की गई। अप्रैल 1908 में खुदीराम बोस तथा प्रफुल्ल चाकी ने मुजफ्फरपुर में एक बग्घी पर बम फेंका जिसमें

1. 'युगान्तर' 22 अप्रैल 1906

वे समझते थे कि बदनाम जज, किंग्सफोर्ड बैठा है। बाद में प्रफुल्ल चाकी ने गिरफ्तारी से बचने के लिए खुद को गाली मार ली, जबकि राष्ट्रीय खुदीराम बोस पर मुकदमा चलाकर फांसी दे दी गई। क्रांतिकारी आतंकवाद का आंदोलन जब आरंभ हो चुका था। आतंकवादी युवकों की अनेक गुप्त संस्थाऐं अब बन गई उनमें सबसे प्रमुख थी अनुशीलन समिति जिसके ढाका खंड की ही अकेली 500 शाखाएं थीं। क्रांतिकारी आतंकवादी समितियां जल्द ही देश के दूसरे भागों में भी सक्रिय हो उठीं। उनका हौंसला इतना बढ़ चुका था कि जब वायसराय लार्ड हार्डिग्ज दिल्ली में एक सरकारी जुलूस में हाथी पर बैठा था तब उस पर भी उन्होंने बम फेंका। इस हमले में वायसराय घायल हो गया।

क्रांतिकारियों ने अपनी गतिविधियों के केंद्र विदेशों में भी खोले। इसकी पहल लंदन में श्यामजी कृष्ण वर्मा विनायक दामोदर सावरकर और हरदयाल ने की जबकि यूरोप में उनके प्रमुख नेता मादाम भीखाजी कामा और अजीत सिंह थे। आतंकवादी आंदोलन भी धीरे–धीरे ठंडा पडत्र गया। वास्तव में एक राजनीतिक अस्त्र के रूप में आतंकवाद की असफलता निश्चित थी। इसने जनता को गतिमान नहीं बनाया और वास्तव में जनता में इसका कोई आधार न था। लेकिन भारत में राष्ट्रवाद के विकास में आतंकवादियों का बहुमूल्य योगदान रहा है। जैसा कि एक इतिहासकार ने कहा है, "उन्होंने हमें अपने मनुजत्व पर गर्व करना फिर से सिखाया।" हालांकि राजनीतिक रूप से चेतन अधिकांश लोग आतंकवादियों के राजनीतिक दृष्टिकोण से सहमत न थे, फिर भी ये आतंकवादी अपनी वीरता के कारण अपने देशवासियों में बेहद लोकप्रिय हुए।[1]

## भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (1905–1914)

बंग–भंग विरोधी आंदोलन ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पर एक गहरा प्रभाव छोड़ा। विभाजन का विरोध करने के लिए राष्ट्रीय कांग्रेस के सभी भाग एक हो गए। 1905 के कांग्रेस अधिवेशन में कांग्रेस अध्यक्ष गोखले ने विभाजन की और कर्जन के प्रतिक्रियावादी शासन की खुलकर निंदा की। राष्ट्रीय कांग्रेस ने बंगाल के स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन का भी समर्थन किया।

---

1. मन्मथनाथ गुप्त : क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास

नरमपंथी व गरमपंथी राष्ट्रवादियों के बीच जमकर सार्वजनिक बहसें हुई और मतभेद उभरे। गरमपंथी स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन को बंगाल से बाहर देश में भी फैलाया तथा औपनिवेशिक सरकार के साथ किसी भी रूप में जुड़ने का बहिष्कार करना चाहते थे। नरमपंथी बहिष्कार को बंगाल तक और वहां भी केवल विदशी मालों तक सीमित रखना चाहते थे। वर्ष 1906 में राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष पद के लिए दोनों दलों में रस्साकशी हुई। अंत में समझौता दादाभाई नौरोजी के नाम पर हुआ जिन्हें सभी राष्ट्रवादी एक महान देशभक्त मानते थे। दादाभाई ने अपने अध्यक्षीय भाषण में घोषणा की कि भारत के राष्ट्रीय आंदोलन का उद्देश्य ''ग्रेट ब्रिटेन या उपनिवेशो की तरह का स्वशासन या स्वराज्य है।'' इस घोषणा ने राष्ट्रवादियों में बिजली की लहर सी दौड़ा दी।[1]

लेकिन राष्ट्रवादी आंदोलन के दोनों भागों के मतभेदों को बहुत समय तक दबाकर नहीं रखा जा सका। अनेक नरमपंथी राष्ट्रवादी घटनाओं के साथ ताल–मेल बिठाकर नहीं चल सके। वे यह नहीं समझ सके कि उनके जिस दृष्टिकोण और जिन विधियों ने पीछे एक ठोस लक्ष्य प्राप्त किया था, अब आगे के लिए पर्याप्त नहीं रह गए थे। वे राष्ट्रीय आंदोलन के नए चरण तक नहीं पहुंच सके। दूसरी ओर उग्र राष्ट्रवादियों को रोका जाना पसंद न था। अंत में दिसंबर 1907 में सूरत अधिवेशन में राष्ट्रीय कांग्रेस के दो टुकड़े हो गये। नरमपंथी नेता कांग्रेस संगठन पर कब्जा रकने तथा उसे गरमपंथियों को निष्कासित करने में सफल रहे।

लेकिन अंततः इस विभाजन से लाभा किसी भी दल को नहीं हुआ। नरमपंथी नेताओं का राष्ट्रवादियों की नई पीढ़ियों से संपर्क टूट गया। ब्रिटिश सरकार ने भी ''बांटो और राज करो'' का खेल खूब खेला। उन्होंने गरमपंथी राष्ट्रवादियों का दमन किया तथा इसके लिए उन्होंने नरमपंथी राष्ट्रवादियों को अपने पक्ष में लाने के प्रयत्न किए। नरमपंथी राष्ट्रवादियों को खुश करने के लिए

---

1. सुन्दरलाल : भारत में अंग्रेजी राज

उन्होंने 1906 के इंडियन कौंसिल एक्ट के रूप में सांविधानिक सुधारों की घोषणा की; इसी कानून को 1909 के मार्ले–मिटो सुधारों के नाम से जाना जाता है। 1911 में सरकार ने बंगाल का विभाजन समाप्त कर देने की घोषणा भी की। पश्चिमी और पूर्वी बंगाल फिर से मिला दिए गए तथा बिहार और उड़ीसा नाम से दो प्रांत इससे अलग बना दिए गए। इसी के साथ केंद्र सरकार की राजधानी कलकत्ता से हटाकर दिल्ली लाई गई।

मार्ले–मिंटो सुधारों में इंपीरियल लेजिस्लेटिन कौंसिल और प्रांतीय परिषदों में चुने हुए सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई। लेकिन ऐसे अधिकांश सदस्यों का चुनाव अप्रत्यक्ष रूप से होना था अर्थात इंपीरियल कौंसिल के मामले में प्रांतीय परिषदों के द्वारा और प्रांतीय परिषदों के मामले में नगरपालिकाओं और जिला परिषदों द्वारा चुने हुए सदस्यों में कुछ सीटें जमींदारों और भारत में रह रहे ब्रिटिश पूंजीपतियों के लिए आरक्षित थीं। उदाहरण के लिए इंपीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल के 68 सदस्यों में 36 अधिकारी होते और 5 ऐसे नामजद सदस्य होते जो अधिकारी न हों। शेष 27 सदस्य चुने हुए होते जिनमें 6 बड़े जमींदारों के और 2 ब्रिटिश पूंजीपतियों के प्रतिनिधि होते। इसके अलावा सुधार के बाद भी ये परिषदें वास्तविक शक्ति से वंचित होती और केवल सलाहकार समितियों का काम करतीं। इन सुधारों से ब्रिटिश शासन के लोकतंत्र विरोधी और विदेशी चरित्र में या विदेशियों द्वारा देश के आर्थिक शोषण में कोई भी परिवर्तन नहीं आया। वास्तव में भारतीय प्रशासन को लोकतांत्रिक स्वरूप देना उनका उद्देश्य था ही नहीं। इस समय मार्ले ने खुलकर कहा कि "अगर यह कहा जा रहा हो कि वर्तमान सुधार प्रत्यक्ष या अनिवार्य रूप से भारत में एक संसदीय प्रणाली की स्थापना की ओर हमें ले जाएंगे, तो कम से कम मेरा इनसे कुछ भी लेना देना नहीं होगा।" भारत सचिव के रूप में उसका स्थान लेने वाले **लार्ड क्रेव** ने 1912 में स्थिति और भी साफ कर दी– **"भारत में एक वर्ग ऐसा है जो स्वशासन की आशा लिए हुए है जैसा कि दूसरे डोमिनियनों को दी गई**

**है। मैं भारत के लिए इस तरह का कोई भविष्य नहीं देखता।"** 1909 के सुधारों का वास्तविक उद्देश्य नरमपंथियों को भ्रमित करना, राष्ट्रवादियों में फूट डालना, और भारतीयों के बीच एकता को बढ़ने से रोकना था।[1]

इन सुधारों ने अलग-अलग चुनाव मंडलों की प्रणाली भी आरंभ की। इसमें सभी मुसलमानों को मिलाकर उनके अलग चुनाव क्षेत्र बनाए गए थे और इन क्षेत्रों से केवल मुसलमान ही चुने जा सकते थे। यह काम अल्पसंख्या मुस्लिम संप्रदाय की सुरक्षा के नाम पर किया गया। पर वास्तव में यह हिंदुओं और मुसलमानों में फूट डालने और भारत में ब्रिटिश शासन को बनाए रखने की नीति का ही अंग था। अलग-अलग चुनाव मंडलों की यह प्रणाली इस धारणा पर आधारित थी कि हिंदुओं और मुसलमानों के राजनीतिक और आर्थिक हित अलग-अलग हैं। यह एक अवैज्ञानिक धारणा थी, क्योंकि धर्म कभी रानीतिक या आर्थिक हितों का या राजनीतिक संगठन का आधार नहीं हो सकता। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि इस प्रणाली के व्यवहार में बहुत घातक परिणाम निकले। इसने भारत के एकीकरण की निरंतर ऐतिहासिक प्रक्रिया में बाधा खड़ी की। यह प्रणाली देश में हिंदू और मुस्लिम दोनों तरह की सांप्रदायिकता के विकास का प्रमुख कारण सिद्ध हुई। मध्यवर्गीय मुसलमानों के शैक्षिक और आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने तथा इस प्रकार उनको भारतीय राष्ट्रवाद की मुख्य धारा में शामिल करने के बजाए, अलग-अलग चुनाव मंडलों की इस प्रणाली ने विकसित होते हुए राष्ट्रवादी आंदोलन से उनके अलगाव को और स्थायी बनाया। इससे अलगाववादी प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिला। इसने हिंदू मुसलमान सभी भारतीयों की साझी आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं पर ध्यान केंद्रित करने से लोगों को रोका।

नरमपंथी राष्ट्रवादियों ने मार्ले-मिंटो सुधारों को पूरा समर्थन नहीं दिया। जल्द ही उन्हें लगने लगा कि इन सुधारों से बहुत अधिक कुछ प्राप्त नहीं हुआ है। फिर भी सुधारों को लगू कराने

---

1. विपिन चन्द्रा : आधुनिक भारत पृ0 178

के लिए उन्होंने सरकार से सहयोग का निग्रय किया। सरकार से यह सहयोग और उग्र राष्ट्रवादियों के कार्यक्रम का विरोध उनके लिए बहुत मंहगा सिद्ध हुआ। धीरे–धीरे जनता में उनकी प्रतिष्ठा और समर्थन कम होते गए और वे एक मामूली से राजनीतिक समूह बनकर रह गए।[1]

1857 के विद्रोह में हिंदू–मुसलमान कंधे से कंधा मिलाकर लड़े। वास्तव में विद्रोह को कुचलने के बाद ब्रिटिश अधिकारियों ने मुसलमानों से खास तौर पर बदला चुकाया था। अकेले दिल्ली में 27,000 मुसलमान फांसी से लटका दिए गए थे। इसके बाद से मुसलमानों को लगातार शंका की दृष्टि से देखा जाता रहा। पर 1870 के दशक में इस दृष्टिकोण में परिवर्तन आया। राष्ट्रवादी आंदोलन के उदय के कारण ब्रिटिश राजनेता भारत में अपने साम्राजय की सुरक्षा के प्रति चिंतित हो उठे। देश में एकजुट राष्ट्रीय भावना के विकास को रोकने के लिए उन्होंने ''बांटो और राज करो'' की नीति पर और भी सक्रियता से काम करने और  जनता को धार्मिक आधारोंपर बांटने का, अर्थात दूसरे शब्दों में भारत की राजनीति में सांप्रदायिक और अलगाववादी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करने का फैसला किया। इस कारण से उन्होंने मुसलमानों के 'मसीहा' के रूप में सामने आने तथा मुसलमान जमींदारों, भूस्वामियों और नवशिक्षित वर्गो को अपनी तरफ खींचने का फैसला किया। उन्होंने भारतीय समाज में दूसरी तरह की फूटें भी डालीं। बंगाली वर्चस्व का नाम ले लेकर उन्होंने प्रांतवाद को हवा दी। आब्राह्मणों को ब्राह्मणों और निचली जातियों को ऊंची जातियों के खिलाफ खड़ा करने के लिए उन्होंने जाति प्रथा का इस्तेमाल करने की कोशिशें भी कीं। संयुक्त प्रांत और बिहार में हिंदू और मुसलमान हमेशा से शांतिपूर्वक रहते आए थे। वहां उन्होंने राजभाषा के पद से उर्दू को हटाकर हिंदी को दिए जाने के आंदोलन को खुलकर प्रोत्साहन दिया। दूसरे शब्दों में, भारतीय जनता में फूट डालने के लिए इस्तेमाल करने की कोशिश की। औपनिवेशिक सरकार ने हिंदूओं, मुसलमानों और सिखों को अलग–अलग समुदाय माना। उन्होंने सांप्रदायिक प्रतिनिधि मानने में कोई देर नहीं लगाई। उन्होंने

---

1. विपिन चन्द्रा : आधुनिक भारत पृ0 179

प्रेस, पुस्तिकाओं, पोस्टरों, साहित्य और सार्वजनिक मंचों से जहरीले सांप्रदायिक विचार और सांप्रदायिक घृणा फैलाने की पूरी छूट दी। राष्ट्रवादी समाचारपत्रों और लेखकों, आदि को जिस तरह अक्सर उत्पीड़ित किया जाता था, यह बात उसके ठीक विपरीत थी।

भारतीय राष्ट्रवाद के निर्माताओं ने महसूस किया कि भारतीयों को ढालना एक धीमा और कठिन काम है और इसके लिए जनता को लंबे समय तक राजनीतिक शिक्षा देनी होगी। इसलिए उन्होंने अल्पसंख्यकों को यह विश्वास दिलाने की कोशिश की कि राष्ट्रवादी आंदोलन सभी भारतीयों को साझे राष्ट्रीय आर्थिक और राजनीतिक हितों के आधार पर एकताबद्ध करने का प्रयास करते हुए उनके धार्मिक और सामाजिक अधिकारों की सावधानीपूर्वक रक्षा करेगा। राष्ट्रीय कांग्रेस के 1886 के अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण देते हुए दादाभाई नौरोजी ने स्पष्ट आश्वासन दिया कि कांग्रेस केवल राष्ट्रीय प्रश्न उठाएगी और धार्मिक तथा सामाजिक मामलों मे दखल नहीं देगी। 1889 में कांग्रेस ने यह सिद्धांत स्वीकार किया कि अगर किसी प्रस्ताव को कांग्रेस के मुस्लिम प्रतिनिधियों का बहुमत मुसलमानों के लिए हानिकारक समझता है तो उसे स्वीकार नहीं किया जाएगा। कांग्रेस के आरंभिक वर्षों में अनेकों मुसलमान इसमें शामिल हुए। दूसरे शब्दों में यह समझकर कि राजनीति का आधार धर्म और समुदाय नहीं होने चाहिए, आरंभिक राष्ट्रवादियों ने जनता के राजनीतिक दृष्टिकोण को आधुनिक बनाने की कोशिश की।

**संप्रदायवाद का विकास :**

दुर्भाग्य से उग्र राष्ट्रवाद जहां सभी दूसरी बातों में आगे की ओर बढ़ा हुआ एक कदम था, वहीं राष्ट्रीय एकता के विकास की दृष्टि से यह एक पिछड़ा हुआ कदम था। कुछ उग्र राष्ट्रवादियों के भाषण और लेखन धार्मिक और हिंदू रंगत में रंगे हुए होते थे। उन्होंने मध्यकालीन भारतीय संस्कृतिक को नकारकर प्राचीन भारतीय संस्कृति पर जोर दिया। उन्होंने भारतीय संस्कृति और

भारतीय राष्ट्र को हिंदू धर्म और हिंदुओं से जोड़ा उन्होंने समन्वित संस्कृति के तत्वों को छोड़ने के प्रयत्न किए। उदाहरण के लिए तिलक ने शिवाजी और गणपति उत्सवों का प्रचार किया, अरविंद घोष ने अर्धरहस्यवादी ढ़ग से भारत को माता और राष्ट्रवाद को धर्म बतलाया, आंतकवादी देवी काली के आगे शपथ लेते थे, और बंगाल विभाजन विरोधी आंदोलन का आरंभ गंगामें डुबकियां लगाकर किया गया। वे बातें शायद ही मुसलमानों को पंसद आती। वास्तव में ऐसे काम उनके धर्म को विपरीत थे, और यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वे मुसलमान होते हुए भी इन या ऐसी दूसरी गतिविधियों से अपने को जोड़ें। मुसलमानों से यह आशा थी भी नहीं की जा सकती थी कि वे शिवाजी और राणा प्रताप का गुणगान उनकी ऐतिहासिक भूमिकाओं के कारण नहीं बल्कि विदेशियों के खिलाफ लड़ने वाले 'राष्ट्रीय' नायकों के रूप में किया जाता देखें और उत्साह के साथ वही काम स्वयं करें। अगर किसी का मुसलमान होना ही उसे विदेशी कहने का आधार न हो तो अकबर या औरंगजेब को किसी भी तरह विदेशी नहीं कहा जा सकता। वास्तव में, आवश्यकता इस बात की थी कि प्रताप और अकबर या शिवाजी और औंरगजेब की लड़ाई को उकसी विशिष्ट ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में एक राजनीतिक संघर्ष के रूप में देखा जाए। अकबर और औरंगजेब को 'विदेशी' कहने तथा प्रताप और शिवाजी को राष्ट्रीय नामक का दर्जा देने का मतलब यह है कि हम बीसवीं सदी के भारत में प्रचलित सांप्रदायिक दृष्टिकोण को पीछे के इतिहास पर लागू कर रहे हैं। यह एक विकृति इतिहा ही नहीं बल्कि राष्ट्रीय एकता के लिए धक्का भी था।[1]

देश के आर्थिक पिछड़ेपन ने भी, जो औपनिवेशिक अल्प विकास की देन था, संप्रदायवाद के उदय में सहायता की। आधुनिक औद्योगिक विकास के अभाव में बेराजगारी भारत में और खासकर शिक्षित लोगों के लिए एक तीखी समस्या बन गई। नतीजा यह हुआ कि जो भी नौकरियां थीं उनके लिए प्रतियोगिता बहुत कड़ी थी। दूरदृष्टि रखने वाले भारतीयों ने इस बीमारी को पहचाना और एक

---

1. बी. डी. पाण्डेय : भारतवर्ष का इतिहास

ऐसी आर्थिक राजनीतिक प्रणाली के लिए कार्यरत रहे जिसमें देश का आर्थिक विकास हो और रोजगार की कोई कमी न रहे। लेकिन दूसरे बहुत से लोगों ने इसके लिए नौकरियों में संप्रदाय, प्रांत या जाति के आधार पर आरक्षण जैसे अल्पदर्शी और अल्पावधि वाले हल सुझाए।

शिक्षित मुसलमानों और बड़े मुस्लिम नबावों और जमींदारों के बीच अलगाववादी और बफादारी की प्रवृत्तियां तब चरम सीमा पर पहुंची जब 1906 में आगा खान, ढाका के नबाव और नबाव मोहसिनुलमुल्क के नेतृत्व में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। मुस्लिम लीग की स्थापना एक वफादार, सांप्रदायिक और रूढ़िवादी राजनीतिक संगठन के रूप में हुई, और उसने उपनिवेशवाद की कोई आलोचना नहीं की, बंगाल के विभाजन का समर्थन किया और सरकारी नौकरियों में मुसलमानों के लिए विशेष सुरक्षा प्रावधानों की मांग की।

मुस्लिम लीग की उपयोगिता बढ़ाने के लिए जनता से संपर्क करने तथा उनका नेतृत्व संभालने में भी अंग्रेजों ने उसे प्रोत्साहित किया। यह सही है कि उस समय राष्ट्रवादी आंदोलन पर भी शिक्षित नगर वासियों का वर्चस्व थ, मगर उसका साम्राज्यवाद विरोधी अमीर–गरीब, हिंदू मुसलमान, सभी भारतीयों के हितों का प्रतिनिधित्व करता था। दूसरी ओर मुस्लिम लीग और उसके उच्चवर्गीय नेताओं के हितों की मुस्लिम जनता के हितों से बहुत कम समानता थी और यह मुस्लिम जनता भी हिंदू जनता की ही तरह विदेशी साम्राज्यवाद से पीड़ित थी।

लीग की यह बुनियादी कमजोरी देशभक्त मुसलमानों पर धीरे–धीरे स्पष्ट होती गई। शिक्षित मुसलमान युवक खास तौर पर उग्र राष्ट्रवादी विचारों से आकर्षित थे। इसी समय मौलाना मुहम्मद अली, हकीम अजमल खान हसन इमाम, मौलाना जफर अली खान औश्र मजहरूल हक के नेतृत्व में उग्र राष्ट्रवादी अहरार आंदोलन की स्थापना हुई। ये युवक अलीगढ़ संप्रदाय तथा बड़े नबाबों और जमींदारों की वफादारी की राजनीति को नापसंद करते थे। स्वशासन के आधुनिक विचारों से प्रेरित होकर उन्होंने उग्र राष्ट्रवादी आंदोलन में सक्रिय भागीदारी के पक्ष में प्रचार किया।

ऐसी ही राष्ट्रवादी भावनाएं पारंपरिक मुसलमान उल्माओं के एक भाग में भी उभर रही थीं। इनका नेतृत्व मदरसा देवबंद करता था। इन विद्वानोंने सबसे प्रमुख थे मौलाना अबुल कलाम आजाद जिन्होंने अपने समाचार पत्र 'अल–हिलाल' में बुद्धिवादी और राष्ट्रीय विचारों का प्रचार किया। इस पत्र की स्थापना उनहोंने 1912 में की थी, जब वे केवल 24 वर्ष के थे। मौलाना मुहम्मद अली आजाद और दूसरे युवकों ने साहस और निर्भय का संदेश दिया और कहा कि इस्लाम और राष्ट्रवाद से कोई विरोध नहीं है।

1911 में तुर्की की उस्मानियां सल्तनत और इटली के बीच लड़ाई छिड़ गई और 1912–13 में तुर्की का बल्कान के देशों से युद्ध हुआ। उस समय तुर्की का शासक स्वयं को खलीफा यानी तमाम मुसलमानों का धर्मगुरू भी कहता था। इसके अलावा मुसलमानों के लगभग सभी ध र्मस्थान तुर्की के साम्राज्य में स्थित थे। भारत में तुर्की के प्रति सहानुभूति की लहर दौड़ गई। डा. एम. ए. अंसारी के नेतृत्व में तुर्की की सहायता के लिए एक मेडिकल मिशन भेजा गया। चूंकि बल्कान युद्ध के दौरान और उसके बाद भी ब्रिटेन की नीति तुर्की के प्रति सहानुभूतिपूर्ण न थी, इसलिए तुर्की समर्थक और खलीफा समर्थक, यानी खिलाफत की भावनाएं साथ ही साम्राज्यवाद विरोधी भी हो गई। वास्तव में अनेक वर्षो तक अर्थात 1912 से 1924 तक मुस्लिम लीगों राष्ट्रवादी युवकों के सामने पूरी तरह दबे रहे।[1]

दुर्भाग्य से बुद्धिवादी विचारों वाले आजाद जैसे कुछेक लोगों को छोड़कर अधिकांश उग्र राष्ट्रवादी मुस्लिम युवकों ने राजनीति के प्रति आधुनिक धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण को भी पूरी तरह स्वीकार नहीं किया। परिणाम यह हुआ कि जिस प्रश्न को सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न के रूप में उन्होंने उठाया वह राजनीतिक स्वाधीनता का नहीं, बल्कि धर्म स्थानों और तुर्क साम्राज्य की रक्षा का प्रश्न था। साम्राज्यवाद के आर्थिक और राजनीतिक दुष्परिणामों को समझने और उनका विरोध करने के बजाए

---

1. डा. परमात्शरण : भारत का राष्ट्रीय आंदोलन पृ0 103

वे साम्राज्यवाद से इस बात पर लड़ रहे थे कि वह खलीफा और उनके धर्म स्थानों के लिए एक खतारा था। तुर्की के प्रति उनकी सहानुभूति का आधार तक भी धार्मिक था। उनकी राजनीतिक अपील धार्तिक भावनाओं को संबोधित थी। इसके अलावा जिन नायकों कथाओं और सांस्कृतिक परंपराओं का सहारा लिया वे प्राचीन या मध्यकालीन भारतीय इतिहास की न थीं बल्कि पश्चिमी एशिया के इतिहास से ली गई थीं। यह सही है कि इस दृष्टिकोण का भारतीय राष्ट्रवाद से तत्काल कोई टकराव नहीं हुआ। बल्कि उसने अपने समर्थकों को साम्राज्यवाद विरोधी ही बनाया और शिक्षित मुसलमानों में राष्ट्रवाद की प्रवृत्ति को बल पहुंचाया। लेकिन कालांतर में यह दृष्टिकोण भी हानिकारक सिद्ध हुआ क्योंकि इसने राजनीतिक प्रश्नों को धार्मिक दृष्टिकोण से देखने की आदत को मजबूत बनाया। खैर कुछ भी हो, इस तरह की राजनीतिक गतिविधि मुस्लिम जनता से आर्थिक और राजनीतिक प्रश्नों पर एक आधुनिक और धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण के विकास में सहायक नहीं हुई।

इसी के साथ हिंदू सांप्रदायिकता का भी जन्म हो रहा था और हिंदू लेखकों और राजनीतिक कार्यकर्ताओं ने मुस्लिम सांप्रदायिकता और मुस्लिम लीग के विचारों ओर कार्यक्रमों को ही दोहराया। 1870 के बाद से ही हिंदू जमींदारों सूदखोरों और मध्यवर्गीय पेशेवर लोगों ने मुस्लिम विरोधी भावनाएं भड़काना आरंभ कर दिया था। भारतीय इतिहास की औपनिवेशिक समझ को पूरी तरह अपनाकर ये लोग मध्य काल में 'निरंकुश' मुस्लिम शासन की औश्र मुलसलमानों के उत्पीड़न से हिंदुओं को बचाने के संबंध में अंग्रेजों की मुक्तिदायी भूमिका की बातें करते थे और उसके बारे में लिखते थे। संयुक्त प्रांत और बिहार में उन्होंने सही तौर पर हिंदी का सवाल उठाया मगर उसे एक सांप्रदायिक रंग दे दिया, और इस अनैतिहासिक धारणा का प्रचार किया कि उर्दू मुसलमानों की तथा हिंदी हिंदुओं की भाषा है। 1890 के तत्काल बाद के वर्षो में पूरे भारत में गौहत्या विरोधी प्रचार चलाया गया। यह अभियान अंग्रेजों के नहीं बल्कि मुसलमानों के खिलाफ था। उदाहरण के लिए ब्रिटिश फौजी छावनियों को बड़े पैमाने पर गौहत्या करने के लिए खुला छोड़ दिया गया।

1909 में पंजाब हिंदू सभा की स्थापना हुई। इसके नेताओं ने राष्ट्रीय कांग्रेस पर इस बात के लिए चोंटे की कि वे सभी भारतीयों को एक राष्ट्र के रूप में एकजुट करना चाहते हैं। उन्होंने कांग्रेस की साम्राज्यवाद विरोधी राजनीति का विरोध किया। इसके बजाए, उन्होंने कहा कि मुसलमानों के खिलाफ संघर्ष में हिंदू विदेशी सरकार को खुश रखें। इसके एक नेता लालचंद ने घोषणा की कि हिंदू स्वयं को "पहले हिंदू और फिर भारतीय" मानें। अप्रैल 1915 में कासिम बाजार के महाराजा की अध्यक्षता में अखिल भारतीय हिंदू महासभा का पहला अधिवेशन हुआ। पर वर्षो तक यह कुछ कमजोर संगठन ही बना रहा। इसका एक कारण यह था कि आधुनिक धर्मनिरपेक्ष बुद्धिजीवियों और मध्य वर्ग का हिंदुओं में ज्यादा असर था। दूसरी ओर, मुसलमानों पर प्रमुख प्रभाव अभी भी जमींदारों नौकरशाहों और पारंपरिक धार्मिक मुल्लाओं का ही था। इसके अलावा औपनिवेशिक सरकार हिंदू संप्रदायवाद को कम सहायता और समर्थन देती थी क्योंकि यह मुस्लिम संप्रदायवाद पर बुरी तरह निर्भर थी और एक ही साथ दोनों तरह के संप्रदायवाद को आसानी से खुश नहीं रख सकती थी।

## प्रथम विश्व युद्ध का राष्ट्रवाद पर प्रभाव :

जून 1914 में पहला विश्वयुद्ध फूट पड़ा। इसमें एक और ब्रिटेन, फ्रांस, इटली, रूस और जापान थे और अमरीका भी बाद में उनसे आ मिला, और दूसरी ओर जर्मनी, आस्ट्रिया हंगरी और तुर्की थे। युद्ध के ये वर्ष भारत में राष्ट्रवाद के परिपक्व होने के दिन थे।[1]

आरंभ में लोकमान्य तिलक समेत, जो जून 1914 में जेल से छूटे थे, भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं ने सरकार के युद्ध प्रयासों में सहयोग का निश्चय किया। यह निश्चय इस गलत धारणा पर आधारित था कि कृतज्ञ होकर ब्रिटेन भारत की वफादारी का पुरस्कार देगा और भारत स्वशासन की ओर एक लंबी छलांग लगाने में समर्थ होगा। उन्होंने इस बात को पूरी तरह नहीं समझा कि प्रथम विश्वयुद्ध की विभिन्न शक्तियां अपने उपनिवेशों को सुरक्षित रखने के लिए ही लड़ रही थीं।

---

1. विपिन चन्द्रा : आधुनिक भारत पृ0 198

होम रूल लीग साथ ही अनेक भारतीय नेताओं ने स्पष्ट रूप से समझा कि सरकार तब तक कुछ वास्तविक अधिकार नहीं देगी जब तक कि उसके ऊपर जनता का दबाव न डाला जाए। इसलिए एक वास्तविक राजनीतिक जन आंदोलन आवश्यक था कुछ और कारण भी राष्ट्रवादी आंदोलन को इसी दिशा में धकेल रहे थे। प्रथम विश्वयुद्ध ने जिसमें यूरोप की साम्राज्यवादी शक्तियां आपस में लड़ रही थीं, एशियाई जनता के मुकाबले यूरोप के राष्ट्रों के नस्ली श्रेष्ठता की भ्रमिक धारणा को नष्ट कर दिया। इसके अलावा युद्ध के कारण भारत के निर्धन वर्गों की बदहाली और भयानक हुई। उनके लिए युद्ध का मतलब था करो का भारी बोझ और रोजमर्रा की जरूरतों का लगातार महंगा होना। ये वर्ग किसी भी जुझारू विरोध आंदोलन में शामिल होने के लिए तैयार थे। परिणाम स्वरूप युद्ध के ये वर्ष तीखे राष्ट्रवादी राजनीतिक आंदोलन में शामिल होने के लिए तैयार थे। परिणाम स्वरूप युद्ध के ये वर्ष तीखे राष्ट्रवादी राजनीतिक आंदोलन के वर्ष थे।

लेकिन ऐसा कोई जन आंदोलन राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व में नहीं चल सकता था क्योंकि वह नरमपंथियों के नेतृत्व में एक निष्क्रिय और जड़ संगठन बन चुकी थी और जनता के बीच उसका कोई राजनीतिक कार्य नहीं रह गया था। इसलिए 1915–16 में दो होम रूल लीगों की स्थापना हुई। इनमें एक के नेता लोकमान्य तिलक थे, तो दूसरा भारतीय संस्कृति और भारतीय जनता की अंग्रेज प्रशंसिका श्रीमती ऐनी बेसेंट और एस. सुब्रामन्य अययर के नेतृत्व में था। इन दो होम रूल लीगों ने आपसी सहयोग से पूरे देश में इस मांग को प्रचारित किया कि युद्ध के बाद भारत को होम रूल या स्वशासन दिया जाए। यही वह आंदोलन था जिसके दौरान तिलक ने अपना प्रसिद्ध नारा दिया था कि "होम रूल मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूंगा।" इन दो लीगों ने बहुत तेजी से प्रगति की और होम रूल की

मांग पूरे देश में गूंजने लगी। कांग्रेस की निष्क्रियता से दुखी अनेक नरमपंथी राष्ट्रवादी भी होम रूल आंदोलन में शामिल हो गए। इन होम रूल लीगों पर जल्द ही सरकार का प्रकोप टूटा। जून 1917 में एनी बेसेंट को गिरफ्तार कर लिया गया। जनता के विरोध के कारण सरकार ने मजबूर होकर सितंबर 1917 में उन्हें छोड़ दिया।

युद्ध के इस काल में क्रांतिकारी आंदोलन का भी विकास हुआ। आंतकवादी संगठन बंगाल और महाराष्ट्र से लेकर पूरे उत्तरी भारत तक फैल गए। इसके अलावा अनेक भारतीय ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने के लिए सशस्त्र विद्रोह की योजना बनाने लगे। अमरीका और कनाडा मे बसे भारतीय क्रांतिकारियों ने 1913 में गदर पार्टी की स्थापना की। इस पार्टी के अधिकांश सदस्य पंजाब के सिख किसान और भूतपूर्व सैनिक थे जो वहां खुले नस्ली और आर्थिक भेदभाव का सामना करना पड़ता था। लाला हरदयाल, मुहम्मद बरकतुल्लाह, भगवान सिंह, रामचंद्र और सोहनसिंह भखना गदर पार्टी के कुछ प्रमुख नेता थे। पार्टी का आध ार उसका साप्ताहिक पत्र 'गदर' था जिसके सिरे पर ''अंग्रेजी राज का दुश्मन'' शब्द लिखे होते थे पत्र 'गदर' ने एक विज्ञापन छापा। ''भारत में विद्रोह फैलाने के लिए बहादुर सिपाहियों की आवश्यकता है। तन्ख्वाह मौत इनाम शहादत, पेंशन आजादी लड़ाई का मैदान भारत है।'' इस पार्टी की विचारधारा बहुत ही धर्मनिरपेक्ष थी। सोहनसिंह भखना, जो बाद में पंजाब के एक प्रमुख किसान नेता बने, के शब्दों में ''हम सिख या पंजाबी नहीं थे। हमारा धर्म देशभक्ति था।'' मेक्सिको, जापान, चीन, फिलीपीन, मालवा, सिंगापुर, थाईलैंड, हिंदचीन, तथा पूर्वी और दक्षिणी अफ्रीका जैसे दूसरे देशों में भी पार्टी के सक्रिय सदस्य मौजूद थे।

गदर पार्टी ने भारत में अंग्रेजों से लड़ने के लिए एक क्रांतिकारी युद्ध चलाने का संकल्प[1] किया था। 1914 में जैसे ही प्रथम विश्वयुद्ध फूटा गदरपंथी हथियार और धन भारत

---

1. आर. सी. अग्रवाल : राष्ट्रीय आंदोलन एवं भारतीय संविधान

भेजने लगे कि यहां के सैनिकों और स्थानीय क्रांतिकारियों की सहायता से विद्रोह आरंभ किया जाए। कई हजार लोगों ने भारत वापस जाने की इच्छा प्रकट की। उनके खर्च के लिए कई लाख डालर की रकम जमा हो गई। कइयों ने अपनी जीवन भर की बचाई रकम दे दी या जमीन जायदाद बेच दी। गदरपंथियों ने सुदूर पूर्व, दक्षिणी पूर्वी एशिया और पूरे भारत में सैनिकों से संपर्क किया और अनेकों रेजीमेंटों को विद्रोह के लिए तैयार कर लिया। अंततः पंजाब में सशस्त्र विद्रोह के लिए 21 फरवरी 1915 की तारीख निश्चित हुई। दुर्भाग्य से अधिकारियों को इन योजनाओं का पता चल गया और उन्होंने तत्काल कार्रवाई की। विद्रोही रेजीमेंटों को तोड़ दिया गया और उनके नेताओं को जेल या फांसी की सजाएं दी गईं। उदाहरण के लिए 23 वें घुड़सवार दस्ते के 12 लोगों को फांसी दी गई। पंजाब में गदर पार्टी के नेता और सदस्य बड़े पैमाने पर गिरफ्तार कर लिए गए। उन पर मुकदमा चलाया गया जिसमें 42 को फांसी हुई, 114 को उम्र कैद की सजा दी गई और 93 को लंबी लंबी जेल सजाएं दी गईं। उनमें से अनेक ने रिहा होने के बाद पंजाब में किरती (मजदूर) और कम्युनिष्ट आंदोलनों की स्थापना की। कुछ प्रमुख गदरी नेता इस प्रकार थे। बाबा गुरमुख सिंह, करतार सिंह सराभा, सोहन सिंह भखना, रहमत अली शाह, भाई परमानंद और मौलवी बरकतुल्लाह।

गदर पार्टी से प्रेरित होकर सिंगापुर में पांचवी लाइट इन्फैंट्री के 700 लोगों ने जमादार चिश्ती खान और सूबेदार डुंडे खान के नेतृत्व में विद्रोह किया। एक तीखी लड़ाई के बाद वे कुल दिए गए। इस लड़ाई में अनेक लोग मारे गए। दूसरे 37 लोगों को सार्वजनिक रूप से फांसी दी गई 41 को उम्र कैद की सजा मिली।

भारत में और बाहर दूसरे क्रांतिकारी भी सक्रिय थे 1915 में एक असफल क्रांतिकारी प्रयास में जतीन मुखर्जी, जिन्हें 'बाघा जतीन' कहा जाता था, बालासोर में पुलिस से लड़ते हुए मारे गए। रासबिहारी बोस, राजा महेंद्र प्रताप, लाला हरदयाल, अब्दुर्रहीम, मौलाना अबैदुल्लाह सिंधी, चंपक

रमन पिल्ले, सरदार सिंह राणा और मादाम भकाजी कामा कुछ ऐसे प्रमुख भारतीय थे जिन्होंने भारत से बाहर क्रांतिकारी गतिविधियां चलाई, क्रांतिकारी प्रचार किया, और समाजवादियों तथा दूसरे साम्राज्यवाद विरोधियों का समर्थन भारत की स्वाधीनता के लिए प्राप्त किया।

कांग्रेस का लखनऊ अधिवेशन 1916 राष्ट्रवादियों को जल्द ही पता चल गया कि उनकी फूट से उनके उद्देश्य की हानि हो रही थी और इसलिए उन्हें सरकार के विरोध में एकजुट होना चाहिए। देश में बढ़ रही राष्ट्रवादी भावना और राष्ट्रीय एकता की आकांक्षा के कारण 1916 में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में ऐतिहासिक महत्व की दो घटनाएं हुई।

फिर भी लखनऊ की घटनाओं का अत्यधिक तात्कालिक प्रभाव पड़ा। नरमपंथी और उग्र राष्ट्रवादियों के बीच तथा राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच एकता स्थापित होने से देश बेहद राजनीतिक उत्साह से भर उठा। यहां तक कि ब्रिटिश सरकार ने भी राष्ट्रवादियों को खुश करना अब जरूरी समझा। अभी तक वह राष्ट्रवादी आंदोलन को कुचलने के लिए भयानक दमन सहारा लेती आ रही थी। उग्र राष्ट्रवादियों और क्रांतिकारियों को बड़ी संख्या में जेलों में डाला गया था या बदनाम भारत रक्षा कानून और ऐसे ही दूसरे कानूनों के अंतर्गत नजरबंद किया गया था। अब सरकार ने राष्ट्रवादी जनमत को संतुष्ट करने का फैसला किया और 20 अगस्त 1917 को उसने घोषणा की कि "ब्रिटिश साम्राज्य के एक अभिन्न अंग के रूप में भारत में एक उत्तरदायी सरकार की अधिकाधिक स्थापना की दृष्टि से स्वशासी संस्थाओं का क्रमिक विकास करना" उसकी नीति थी। फिर जुलाई 1918 में मांटेग्यु चेम्सफोर्ड सुधारों की घोषणा की गई। पर भारतीय राष्ट्रवाद इतने से ही संतुष्ट न हो सका। वास्तव में अब राष्ट्रीय आंदोलन इस स्थिति में था कि शीघ्र ही अपने तीसरे और अंतिम चरण में प्रवेश कर सके। यह चरण गांधीवादी युग के जनसंघर्षो का चरण था।[1]

---

1. विपिन चन्द्रा : आधुनिक भारत पृ0 187

## बुन्देलखण्ड की भूमिका

### (अ) स्वदेशी आंदोलन और बुन्देलखण्ड :

बुन्देलखण्ड जनपद में स्वाधीनता आंदोलन में किसी न किसी रूप में सहयोग दिया है। 1857 की क्रांति के बाद कुछ दशकों तक इस क्षेत्र में आंदोलनात्मक गतिविधियां न्यून रहीं। लेकिन 1905 में बंगाल का विभाजन के विरोध और स्वदेशी आंदोलन के पक्ष में बुन्देलखण्ड के सभी अंचलों में विरोध के स्वर गूंज उठे।

**हमीरपुर** के जराखर गांव के खूबचंद रावत और गौरीशंकर नंबरदार ने तत्कालीन राष्ट्रीय स्तर के समाचार पत्र केसरी (नागपुर), बेंकटेश्वर (बंबई), भारत जीवन (काशी), हिन्दी बंसवासी एवं शुभचिंतक (रीवा), जैसे समाचार पत्रों का खूब प्रचार–प्रसार किया, जिससे बुन्देलखण्ड में राजनीतिक चेतना का प्रचार–प्रसार हुआ। सभी अंचलों में स्वदेशी आंदोलनों ने बढ़–चढ़कर भाग लिया। कई किसानों ने लगान देने से इंकार कर दिया।

**बांदा** में सांस्कृतिक और सामाजिक गतिविधियाँ आर्यसमाज के साथ शुरू हुई। 1907 में बांदा में स्थापित बुन्देलखण्ड अनाथालय की स्थापना में लाला लाजपतराय ने योगदान दिया था। 1910 में पुरूषोत्तम दास टंडन यहां आए और वकीलों को अदालत में हिंदी में कार्य करने की सलाह दी। 1916 में श्री नारायण प्रसाद जी ने एक प्रेस प्रारंभ किया जिसमें 'बुन्देलखण्ड केसरी' नामक पत्र प्रकाशित हुआ।[1]

स्वदेशी आंदोलन में पं0 लक्ष्मी नारायण अग्निहोत्री के नेतृत्व में यहां की जनता ने स्वदेशी आंदोलन में सहभागिता की। 1920 में गांधी जी के असहयोग आंदोलन में पं0 लक्ष्मीनारायण, श्री नारायण प्रसाद, श्री सुखवासी लाल, कुवंर जुगल किशोर ने अपनी नौकरी से इस्तीफा देकर सैकड़ों सहयोगियों के साथ गिरफ्तार हुए। उन्हें फैजाबाद बनारस की जेलों में रखा गया। वे 1922 में छूटे।[2]

---

1. राष्ट्रगौरव : बुंदेलखण्ड का स्वतंत्रता संग्राम, संपादक दशरथ जैन पृ0 131
2. वही, पृ0 144

**सागर** में 1907 में हितकारिणी सभा की स्थापना से सागर जिले में स्वतंत्रता संग्राम का राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास शुरू होता है। बंग–भंग आंदोलन के समय उग्र राष्ट्रवादी नेता अश्विनी कुमार दत्त ने बंगाल के क्रांतिकारियों और सागर के मराठा नेताओं से संपर्क कायम करने के प्रयास किये। मई 1907 में डॉ0 मुखे और दादा साहब खापर्डे ने उग्रवादी कांग्रेस की एक शाखा सागर में स्थापित कराई। इस अवधि में विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार और स्वदेशी का प्रचार खूब हुआ। 1916 में सागर में होमरूल लीग की स्थापना की गई।

1920 में रतौना कसाई खाने के विरूद्ध सागर में बड़ा आंदोलन चला, जिसमें सरकार को झुकना पड़ा। 1920 में असहयोग आंदोलन के समय सागर की जनता ने सक्रिय सहयोग दिया और इसी वर्ष सागर में हिंदू सभा और गांधी सेवा संघ की स्थापना हुई।

**जबलपुर** में स्वदेशी आंदोलन में श्री कैलाश चन्द्र दत्त ने महत्वपूर्ण भाग लिया और एक स्वदेशी भण्डार खोला। म0 प्र0 के जब राजनीतिक परिषद स्थापित हुई तो जबलपुर में इसका द्वितीय अधिवेशन हुआ। 1906 में डॉ0 बी. एस. भुंजे ने जबलपुर और कटनी में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की।

राबर्टस चंद्र कालेज के छात्र चितरंजन पिल्लै ने अपने साथियों के साथ क्रांतिकारी दल बनाया। इन लोगों ने रास बिहारी बोस को जबलपुर बुलाया। पिल्लै के साथ जुड़कर प्रसाद, मुंशी लाल, शैलेन्द्र घोष थे। 1915 में म0 प्र0 में पहली जिला परिषद का अधिवेशन पं0 मदन मोहन मालवीय के नेतृत्व में जबलपुर में हुआ। इसी बर्ष एनी बेसेण्ट द्वारा स्थापित होमरूल लीग की शाखा भी जबलपुर में स्थापित हुई। 1916 में लोकमान्य तिलक की जबलपुर में ऐतिहासिक सभा हुई।

**ग्वालियर** में 1905 में यहाँ स्वदेशी आंदोलन ने जोर पकड़ा था और 1908 में एक स्वदेशी वस्तुओं की प्रदर्शनी लगी। इसमें 35 विद्यार्थियों को राजद्रोह की सजा दी गयी। इससे जनता में स्वतंत्रता की व्यापक चेतना का आविर्भाव हुआ। लोग छिपे तौर पर संगठित होकर अपनी आवाज उठाने लगे।

## (ब) गदर पार्टी के क्रांतिकारी प्रयासों में बुन्देलखण्ड की भूमिका :

## (क्रांतिकारी परमानंद के विशेष संदर्भ में) –

गदर पार्टी की स्थापना, निरंकुश, कुटिल, विश्वासघाती ब्रिटिश शासकों के क्रूर, दमनात्मक शासन तंत्र से मुक्ति हेतु भारत के लाड़ले सपूत क्रांतिदर्शी युवकों के संगठन द्वारा हुई थी। इन उन्मत राष्ट्र–बांकुरों का एक ही सपना, एक ही लक्ष्य और एकमेव आदर्श था–'हम अपनी देवोपम पावन मातृभूमि के लिए अपना र्स्वस्व न्योछावर (आत्मोसर्ग) करेंगे। उसी के लिए जिएगें, उसी के लिए मरेंगे, फिर जन्मेंगे, फिर–फिर मरेंगे, हर कीमत पर राष्ट्र को स्वतंत्र कर रहेंगे। गदर पार्टी की भूमिका के पूर्वांम रूप में उन परिस्थितियों का सामान्य उल्लेख आवश्यक है, जिनके कारण शसस्त्र क्रांति को क्रियान्वित, प्रचारित करने के लिए गदर पार्टी स्थापित की गई।[1]

**गदर पार्टी की स्थापना :**

कोमागाटामारू जहाज के प्रयासी भारतीयों को जबरन कनाड़ा से लौटाने के लिए एक कूजर भेजा गया। भाई भगवान सिंह को पकड़ लिया गया। कनाडा सरकार ने इस अत्याचार पर ब्रिटिश सरकार ने कोई प्रतिक्रिया अथवा विरूद्धात्मक टिप्पणी नहीं थी। भारतीय नेताओं ने बहुत चाहा इमीग्रेशन बिल के तहत भारतीयों के कनाडा प्रवेश पर प्रतिबंध के मामले में ब्रिटिश सरकार हस्तक्षेप कर सुलझाने में सहायता करें, किन्तु विदेशी गौरांग प्रभुओं के कृष्ण–कायिक भारतीयों को सहानुभूति भला क्यों होती। जब किसी भी प्रकार कोमागाटामारू

1. मन्मथ नाथ गुप्त : क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास

जहाज के प्रवासी भारतीयों के कनाडा प्रवेश निषेध का शांतिपूर्ण समाधान नहीं हो सका तो भारतीय स्वाभिमान, शैर्य और पराक्रम की बलिदानी परम्परा में एक और संगठन का सूत्रपात हुआ। जिसने क्षुब्ध भारतीय युवा मानस में अंग्रेजी हुकूमत के विरूद्ध बगावत का बीजारोपण किया। फलतः भारत की स्वतंत्रता का संकल्प धारण कर, अपनी धरती से बहत दूर विदेशी कैनैडियन जलीय तट पर जिस महान संगठन को कालान्तर में प्रसिद्धि मिली और जिसकी जीवन्त राष्ट्रवादी गतिविधियों से अंग्रेजी हुकूमत भी खौंफ खाती थी, उसी का नाम था 'गदर पार्टी।'[1]

भारत की सशस्त्र क्रांति के संगठन, संचालन और क्रियान्वयन में गदर पार्टी का ऐतिहासिक महत्व है। पंडित परमानन्द जी क्रांति को सुपरिणामी बनाने हेतु शस्त्रादि प्राप्ति को अनेक यूरोपीय देशों में भटकते फिरे। कैनाडा, जापान, अमेरिका, इंग्लैंड आदि देशों में, राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए निःस्वार्थभाव से सर्वस्व अर्पण का अक्षय उत्साह सहेजे, भारतीय क्रांति वीर, सशस्त्र विद्रोह की प्रचण्ड अग्नि में अपनी आहूतियां देने को संकल्पित मन से सचेष्ट थे। लाला हरदयाल जी, रास बिहारी बोस पं. कृष्ण देव शास्त्री, बाबा गुरूदत्त सिंह तथा पं. परमानन्द जी गदर पार्टी के संगठन में महत्वपूर्ण थे।

पंडित परमानन्द जी काशी प्रवास की अवधि में बाबू शिवप्रसाद जी गुप्त के सान्निद्ध में आये। उनकी राष्ट्रीय विचारधारा पुष्ट और प्रखर हुई। सशस्त्र क्रांति के पथ पर पंडित जी को अग्रसार करने में शिव प्रसाद गुप्त की प्रेरणा व सहायता विशिष्ट थी। बाबू शिवप्रसाद जी गुप्त उन अमर राष्ट्रभक्तों की अविच्छिन्न कीर्ति माला के सुगन्धित अग्रपुष्प थे, जिन्होंने काशी तथा देश के अन्य भागों में क्रांतिकारियों की गुप्त रूप से मदद करते हुए क्रांतिकारी आंदोलन को प्रचुर धन स्वेच्छा से दान किया। उन्होंने बनारस में आज प्रेस तथा ज्ञान मंडल स्थापना की और भारत माता का मंदिर निर्माण कराया।

---

1. राष्ट्रगौरव : बुन्देलखण्ड का स्वतंत्रता संग्राम पृ0 248

काशी परमानन्द जी का सम्बन्ध वहां की क्रांतिकारी पार्टी के सदस्यों से स्थापित हुआ। भारत भूमि से शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य के समूल उच्छेद हेतु सशस्त्र क्रांति भारतीय सन्दभ्रे में युगीन आवश्यकता थी। क्रांति को राष्ट्रहित में सुपरिणामी बनाने के लिए शस्त्रादि संचय, क्रांति की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु शिवप्रसाद गुप्त ने परमानन्द जी को विदेशों से शस्त्र एकत्रकर भारत भेजने अमेरिका व यूरोपीय देशों की यात्रा के लिये प्रेरित किया। आवश्यक धन की व्यवस्था कर उन्हें सशस्त्र क्रांति के प्रचार–प्रसार हेतु वहां सामर्थ्यवान बनाकर भेजा भी।[1]

लाला हरदयाल जी की भेंट परमानन्द जी से होने के बाद क्रांति की योजना को साकार करने की दिशा में और तेजी आ गई। भाई सोहन सिंह, करतार सिंह, पं. जगतराज, परमानन्द जी, सरदार पृथ्वी सिंह और रामचन्द्र आदि ने मिलकर गुप्त योजना बनाई। जिसके अन्तर्गत कैलिफोर्नियां में 'युगान्तर–कार्यालय' की स्थापना की गई। एक स्वतंत्र प्रेस की स्थापना के लिए कुछ मशीनें खरीदी गई और कुछ क्रांति समर्थक मित्रों ने भेंट स्वरूप दीं। कैलिफोर्नियां विश्वविद्यालय में कुछ अवधि के लिए लालाजी ने अध्यापन कार्य किया था। अतएव उच्च शिक्षा तथा विचार स्वातंत्र्य के पक्षधर बुद्धिजीवी मित्रों ने भी पर्याप्त सहयोग उदारता पूर्वक किया।

पंडित जगतराम के सम्पादन के कैलिफोर्नियां स्थित 'युगान्तर कार्यालय' से 'गदर' नामक पत्र प्रकाशित किया जाने लगा और जिस देश में प्रवासी भारतीय रहते थे, वहां इसकी प्रतियां पहुंचायी जाने लगी। 'गदर' अखबार का प्रचार प्रसार अफ्रीका, फिजी, आस्ट्रेलिया, चीन जापान, सिंगापुर, मलाया, वर्मा, रंगून आदि देशों में भारतीय समुदाय द्वारा यथेष्ट रूप से किये जाने से भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति की दिशा में गदर पार्टी तथा सशस्त्र क्रांति का ऊर्जस्वित विचार अत्याधिक व्याप्त होता गया। लाला हरदयाल के अथक प्रयत्नों से 'युगान्तर आश्रम' में आकर्षित किया जाता था।

---

1. के. के. दत्ता : इंडियन मार्च टु फ्रीडम

इसी प्रकार के उद्देश्यों के क्रियान्वयन के विचारार्थ भारतीयों की एक सभा आमंत्रित की गई। जिसमें अनेक देशों के प्रयासी भारतीय प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। इस सभा में यह निर्णय लिया गया कि वे अपने व्यय पर, क्रांति के क्रियान्वयन के लिए और अंग्रेजों को भारतभूमि से खदेड़ने के लिए संगठित रूप से स्वदेश जाने को तैयार है। समस्त प्रतिनिधियों ने प्रतिज्ञा की कि हम लोग गदर पार्टी के निर्देशानुसार कार्य करेंगे। सरदार ज्वाला सिंह जी ने अपनी लगभग एक लाख डालर मूल्य की सम्पत्ति गदर पार्टी को स्वेच्छया अर्पित की। सरदार केशर सिंह ने भी अपने पास की समस्त पूंजी दान की। बढ़िया रिवाल्वर तथा अन्य हथियार भी जुटाए गए। इस प्रकार सशस्त्र क्रांति द्वारा ब्रिटिश हुकूमत से अपने प्यारे भारतवर्ष को आजाद कराने का अनुष्ठान लाला हरदयाल जी, पं. परमानन्द जी तथा अन्य राष्ट्रवीरों के सह प्रयत्न से आरम्भ हुआ।1

पंडित परमानन्द लाला हरदयाल की गदर पार्टी के प्रमुख कार्यकर्ता और उनके विश्वास पात्र साथियों में से थे। पंडित जी और लाला जी ने एक जहाज द्वारा अस्त्र शस्त्रादि भारत भेजने के लिए अंग्रेजों के विरूद्ध प्रयोग किए जाने हेतु तथा सशस्त्र क्रांति को व्यापक रूप से सफल बनाने के लिए व्यवस्था कर ली थी।

गदर पार्टी ने भारतीय क्रांतिकारी संगठनों और दलों के सहयोग से भारत की भारतीय सैनिक छावनियों में गदर करने की विस्तृत योजना बनाई।

भारत वर्ष में जो क्रांतिकारी दल अपनी गतिविधियों के कारण ब्रितानी हुकूमत की परेशानी का कारण बने थे, उनमें वीरसावरकर जी का 'अभिनव–भारत' नामक क्रांतिकारी दल तथा श्री रासबिहारी बोस की 'क्रांतिकारी अनुशीलन समिति' अत्यधिक सक्रिय थी।/

पंडित जी ने लाला हरदयाल के परामर्श से गदर के लिए युद्ध जैसा मोर्चा बनाने हेतु व्यावहारिक शिक्षा लेने का निश्चय किया। उन्होंने अमेरिका स्थित जर्मन राजदूत फील्ड

---

1. के. के. दत्ता : इंडियाज मार्च टु फ्रीडम
2. राष्ट्र गौरव : बुन्देलखण्ड का स्वतंत्रता संग्राम पृ0 248

मार्शल बर्न हार्डी तथा जापान के सेनापति फील्ड मार्शल काउण्ट ओकण से सम्पर्क स्थापित कर भारत में सशस्त्र क्रांति के लिए योजना बनाने में सहयोग प्राप्त किया। उनसे सम्बन्धित मानचित बनवाए। इसी तारतम्य में परमानन्द जी ने अमेरिका की यात्रा की।

गदर पार्टी ने प्रवासी पंजाबी युवकों में राष्ट्रीय विचारधारा, अडिग देशभक्ति, आत्म सम्मान तथा ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध विद्रोह की भावना का संचार किया। फलतः सशस्त्र क्रांति द्वारा आजादी की महत्वाकांक्षा को साकार करने हजारों प्रवासी भारतीय युवक जब भारत पहुंच चुके, गदर पार्टी के आदेश से परमानन्द जी भारत रवाना हो गए। (उनके साथ गदर योजना से सम्बन्धित नक्शे तथा अति महत्वपूर्ण गोपनीय कागजात थे।) पार्टी के आदेशानुसार वे जापान में योकेलमा में रूक गए। बाबा गुरूदत्त सिंह का कोमागाटामारू जहाज जब बैंकोवर (कनाडा) से लौटा तो पुनः पंडित जी को योकोहामा के बन्दरगाह में मिला। जहाज में क्रांति के उद्देश्य से एकत्रित की गई मैगजीन (लड़ाई की सामग्री) देखकर पंडित जी को अत्यधिक आश्चर्य और हर्ष की अनुभूति हुई। क्रांति की इस महान तैयारी में (जो 1914 ई. में की गई थी) 75 प्रतिशत से अधिक खालासा (सिख) युवक प्राण प्रण से भारत माता की स्वतंत्रता हित जुटे हुए थे।[1]

जब कई हजार गदर के सेनानी भारत भूमि पहुंच गए तो सबसे बाद में युगान्तर आश्रम का संचालक दल स्वदेश आया। यह दल अमेरिका के पैस्फिक लाइन के कोरिया जहाज से योकोहामा पहुंचा था। परमानन्द जी संचालक दल के प्रमुख सदस्यों से मिले। उनमें सरदार ज्वाला सिंह, पृथ्वी सिंह, पं. जगतराम, शेरसिंह, प्यारे सिंह तथा रूढ़सिंह आदि थे।

जब गदर पार्टी हांगकांग पहुंची, तब महायुद्ध की ज्वाला प्रचण्ड रूप में धधक उठी थी। हांगकांग के गुरूद्वारे में गुप्त बैठक हुई। गदर पार्टी का उद्देश्य भारत में क्रांति द्वारा प्रजातन्त्रात्मक शासन स्थापित करना था। हांगकांग से गदर पार्टी के शहीदों की टोली

---

1. राष्ट्र गौरव : बुन्देलखण्ड का स्वतंत्रता संग्राम पृ0 250

तोसामारू जहाज से सिंगापुर के लिए रवाना हुई। पार्टी मार्ग में आए सभी देशों के प्रवासी भारतीयों को गदर में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित करती थी तथा सैनिकों में क्रांति का प्रचार करती चलती थी।

सिंगापुर में परमानन्द जी के ओजस्वी भाषण के प्रभाव स्वरूप वास्तव में गदर हो गई। वहां लगभग माह तक भारतीय झण्डा फहराता रहा।[1]

सिंगापुर में क्रांति का शंखनाद कर गदरपार्टी पेनांग पहुंची, पेनांग के गवर्नर ने जहाज को आगे जाने से रोक दिया। पंडित जी ने अपने कुछ साथियों के साथ 'लाइफबोट' में बैठकर पेनांग नगर पहुंचे और गुरूद्वारे गए। पेनांग के किले का कमाण्डर मेजर सरदार इन्दरसिंह, पंडित जी से पूर्व परिचित था। वह उनका प्रशंसक और समर्थक तथा सच्चा भारतीय था। उसने पंडित जी के समक्ष आर्सनल के चाबी के गुच्छे रख दिए। उसने सलाह दी कि आप कुछ लोग सशस्त्र गर्वनर के पास जाएं मैं संतरी को समझा दूंगा। वह डार कर आपको पेनांग से सकुशल जाने देगा। हुआ भी इसी प्रकार। उसने जहाज को छोड़ दिया। किन्तु उसने कलकत्ता टेलीफोन कर गदर पार्टी के भारत आगमन का संदेश भेज दिया। जिससे ब्रिटिश सरकार सतर्क हो गयी। कलकत्ता बन्दरगाह पर तलाशी ली जाने लगी और संदिग्ध यात्रियों को गिरफ्तार किया जाने लगा।

नवम्बर 1914 में पं. परमानन्द जी तथा गदर पार्टी के अन्य कार्यकर्ताओं सहित तोशाकामारू जहाज जब कलकत्ता बन्दरगाह पर पहुंचा तो वहां पहले से तैनात 200 अंग्रेज और पांच सौ गोरखा सैनिक तलाशी के उद्देश्य से तट पर एकत्रित थे। पं. जगतराम की अटैची में दस रिवाल्वर थे। उन्हें पकड़ लिया गया। तब पंडितजी ने तुरन्त कपड़े बदले और उसी जहाज में रंगून से सवार संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) के कुलियों की टोली में, कुली के भेष में मिल गये। जहाज से उतरते समय उन्हीं कुलियों के साथ वे तलाशी लिए जाते समय

1. एम. पी. चटर्जी : इंडियाज स्ट्रगल फार फ्रीडम

पुलिस अफसरों के सामने जा खड़े हुए। पंडित जी के साथ हिन्दुस्तान की टोपोग्राफी (Topography) (गदर का नक्शा) थी।[1] जिसे उन्होंने एक कुली की बाल्टी में रखे पुराने जूतों के जोड़े में छिपा दी थी। किसी प्रकार पुलिस ने एक दो सवाल कर उन्हें बाहर निकल जाने को कहा। भागय से पंडित जी बच गए। बाहर आकर पंडित जी ने कलकत्ता नगर में पहुंचकर डॉ. रामनारायण से सम्पर्क किया। रामनारायण जी लाहौर डी. ए. वी. कालेज के प्रसिद्ध विद्वान पं. राजारामजी शास्त्री के अनुज थे, जो परमानंद जी के घनिष्ठ मित्र थे, रात को पंडित जी कलकत्ता से लाहौर को रवाना हो गए। लाहौर पहुंचकर प्रसिद्ध क्रांतिकारी पंजाब के भाई परमानन्द जी से मिले। यहां पंडित जी को शहीदे आजम भगतसिंह के पिता के दर्शन का सुयोग मिला। भाई परमानन्द से पता चला कि तोशामारु जहाज के सब साथी हिरासत में लिए जाकर मुलतान जेल भेज दिए गए। बचने वालों में पंडित जगतराम, पृथ्वीसिंह और अमर सिंह है और करतार सिंह आज आ जाएगा।[2]

इसी तरह बजबज़ बन्दरगाह पर पहुंचे बाब गुरूदत्त सिंह और सरदार बलवन्त सिंह वाले कोमागाटामारु जहाज की भी तलाशी ली गई। कोमागाटामारु में सवार प्रवासी भारतीय अंग्रेजी हुकूमत से पहले से ही खार खाए बैठे थे क्योंकि उनका जहाज में बैंकोवर (कनाडा) से इमीग्रेशन बिल पास करवाकर जबरन वापिस लौटा दिया गया था। जब जहाज की तलाशी ली जाने लगी तो भारतीयों का स्वाभिमान जाग्रत हो उठा, विद्रोह की ज्वाला भड़क उठी, तनाव बढ़ गया, रात भर दोनों ओर से गोलीं चलीं। फौजी लोग अधिक मारे गए, भारतीय भी आहत हुए। पुलिस कमिश्नर हॉलीडे मार डाला गया। कुछ पकड़ लिए गए। पंडित परमानन्द लुधियाना की चौकी में कामोगाटामारु जहाज के 190 भारतीय यात्रियों से मिले।

भाई परमानन्द जी से पंडित परमानन्द को पता चला कि जगतराम पेशावर में गिरफ्तार हो गए हैं और पृथ्वीसिंह पकड़ जाने वाले हैं। भाई जी ने पंडित जी को बहुत

1. राष्ट्र गौरव : बुन्देलखण्ड का स्वतंत्रता संग्राम पृ0 251
2. कृष्ण स्वरूप द्विवेदी : भारत निर्माण

सावधान रहने की सलाह दी और कहा कि कपूरथला जाकर वहां के महन्त रामशरण दास से मिलो और वहीं रूककर भावी योजनाओं का निश्चय करो। रियासत होने के कारण कपूरथला अधिक सुरक्षित स्थान था अतः पंडित जी अपने साथियों के साथ लाहौर से कपूरथला चले गए। वहां रामशरण दास जी ने महारानी के मंदिर में उनके आवास और भोजन की व्यवस्था करा दी। उसी दिन विष्णु गणेश पिंगले भी कपूरथला आ गए। तब यह विचार किया गया कि शचीन्द्र नाथ सन्याल और रास बिहारी बोस को कहां ठहरासया जाय ? इस समय रास बिहारी काशी में दशाश्वमेघ घाट के पास गुदौलिया के भीतर वाली पीली कोठी में भेष बदलकर गुप्त रूप से रह रहे थे। सचीन्द्र सान्याल ने उन्हें काशी से लाकर लाहौर में धोबी मंडी स्थान पर एक किराए के मकान में ठहराया, सन्देह से बचने के लिए रामशरण दास की पत्नी को उनके साथ रखा गया। वे दो माह तक वहां छिपकर रहे।

कपूरथलाके महारानी मंदिर में रहते हुए परमानन्द जी ने सचीन्द्र सान्याल, विष्णु गणेश पिंगले और करतार सिंह के साथ गदर की योजना का भावी कार्यक्रम बनाया।

जब रासबिहारी लाहौर आ गए तो पंडित जी वहां पहुंचकर उनसे मिले। पं. जी के पास भारत का सैनिक मानचित्र (टोपोग्राफी) था। पंडित जी ने अपने साथियों को उस नक्शे में दर्शाये सैन्य संस्थाओं की जानकारी दी। यदि संगठित और गुप्त रूप से इन सैन्य ठिकानों और महत्वपूर्ण स्थानों को ध्वस्त कर दिया जावे और विद्रोह के सूत्र विस्तृत हो सकें, तो ब्रिटिश सत्ता धाराशायी हो सकती है।

पंडित जी ने टोपोग्राफी (सैन्य नक्शा) में जिन महत्वपूर्ण बाईस सैनिक छावनियां विद्रोह के लिए चुनकर उन पर अधिकार जमाने की योजना प्रस्तुत की, उसके अनुसार एक निशचित तिथि को एक साथ ही कार्यवाही (क्रांति को क्रियान्वित) करने का निश्चय किया गया। देश भर के बारह पुलों को उड़ाने के लिए पंडित परमानन्द और डॉ. मथुरा सिंह ने

फल्मीनेट आफ मर्करी के दो दर्जन बड़े शक्तिशाली बम तैयार किए और दिल्ली से दो हजार तार काटने वाले औजार, रबर के दस्तानों के साथ इसलिए खरीदे गए थे जिससे एक साथ ही तार और टेलीफोन का सम्पर्क काट दिया जाये। सशस्त्र विद्रोह की सम्पूर्ण तैयारी की योजना को अन्तिम रूप दिया जा चुका था। लगभग 26000 (छब्बीस हजार) भारतीय क्रांतिवीर स्वतंत्रता के दीवाने अंग्रेजी राज का तख्ता पलटने के संकल्प से गरद के लिए पूर्णतः तैयार थे। सशस्त्र विद्रोह की सम्पूर्ण तैयारी सामयिक युद्ध नीति (स्ट्रेटजी) के अनुसार हो चुकी थी। गदर की गूंज और नीम हकीम खतरे जान नामक क्रांति की प्रचारक और अंग्रेजों के विरूद्ध प्रतिक्रिया वाली पुस्तिकाएं सिपाहियों में वितरित करने के लिए छपवायी गई। साथियों में वितरण के लिए सन् 1912. ई. के दिन एक सौ एटलस (नक्शे) खरीद कर महत्वपूर्ण सैन्य ठिकाने चिन्हित कर दिए गये थे। सुनियोजित एवं गुप्त रूप से सशस्त्र विद्रोह की समस्त योजना कपूरथला के मंदिर में बहुत विचार पूर्वक तैयार की गई थी। पंडित परमानन्द जी निर्णायक युद्ध में अंग्रेजी राजा को एक बार ही विफल कर देने हेतु संकल्पित थे। 22 फौजी छावनियों में क्रांति के प्रचार हेतु श्रीमती रामशरणदास ने बड़े कौशलपूर्वक एक–एक झंडा तैयार किया था जिसमें भारत का मानचित्र अंकित था।[1]

पंडित जी का यह काम था कि वे भाई निदान सिंह के साथ समस्त पंजाब में घूमकर गदर का प्रचार कर अधिकाधिक जन समर्थन व साधन जुटाएं। परमानन्द पंजाब के लगभग सभी जिलों में घूमें। वे अमेरिका से लौटे गदर पार्टी के हजारों कार्यकर्ताओं से भी मिले। इस प्रकार सशस्त्र क्रांति के लिए एक विशाल भारतीय सेना अन्तिम और निर्णायक युद्ध के लिए भौतिक (शस्त्रादि) और मानसिक रूप से पूर्णतः सन्नद्ध थी। गदर पार्टी के संचालन और समस्त गतिविधियों का मुख्य केन्द्र लाहौर था। भाई परमानन्द जी जैसे कर्मठ, संकल्प निष्ठ, क्रांति यज्ञ के महान मांत्रिक लाहौर में सशस्त्र क्रांति के सूत्र संचालित कर रहे थे।

1. राष्ट्र गौरव : बुन्देलखण्ड का स्वतंत्रता संग्राम पृ0 252

बुन्देलखण्ड बांकुरे युवा क्रांतिवीर कायस्थ कुलभूषण तथापि पंडित के गौरव पद विशेषण से विभूषित माता सगुना बाई के सपूत ग्राम सिंकरौधा तहसील राठ जनपद हमीरपुर प्रांत उत्तर प्रदेश निवासी परमानन्द जी अभिमन्यु वत सत्तांध विदेशी शासक ब्रितानी धृतराष्ट्र कौरवी सेना के छल व्यूह को कौशल पूर्वक सप्रयत्न (सशस्त्र क्रांति द्वारा) उच्छेद करने हेतु नियत तिथि की प्रतीक्षा में आकुल थे। बंगाल के क्रांतिकारियों से विद्रोह में सहयोग करने और सम्मिलित कार्यवाही हेतु सम्पर्क साधने में जब करतार सिंह असफल रहे तो पंडित परमानन्द को यह दायित्व सौंपा गया कि वे बंगाल जाकर क्रांतिकारियों से सहयोग प्राप्त करें। सच्चे देशभक्त आजादी के वरण हेतु आत्मोसर्ग के केसरिया रंग में रंगे हुए थे। मृत्यु उनके हाथों का खिलौना थी वे संकल्प के प्रति अटल थे। संकल्प था भारत की स्वतंत्रता, माध्यम था अन्तिम विकल्प के रूप में सशस्त्र विद्रोह जिसे इतिहास ने गदर नाम से जाना। पंडित परमानन्द के कुशल सम्पर्क से बंगाल के क्रांतिकारियों का सहयोग, समर्थन मिलना निश्चित हो चुका था। बंगाल से वे पनी जन्मभूमि (उरई से 23 मील दूर ग्राम सिकरौधा–राठ) के दर्शन कर, स्वजनों से भेंट आशीष प्राप्त कर लाहौर लौट गए और परमानन्द जी से मिले। तत्पश्चात वे अमृतसर चले गए जहां उनके क्रांतिकारी साथी भाई बनतासिंह, प्रेमसिंह, प्यारासिंह, इन्दरसिंह, केदार सिंह, शेरसिंह, बलवन्त सिंह, ठुण्डीलाट, हरनाथ सिंह, अपने सैकड़ों गदर पार्टी के सिपाहियों के साथ उनकी प्रतीक्षा में थे। रणचण्डी का भैरवी नृत्य अब आरम्भ होने को था। 21 फरवरी 1995 की सबको प्रतीक्षा थी क्योंकि प्रत्यक्ष कार्यवाही की नियत तिथि वही थी।

गदर की पूरी योजना तैयार हो जाने के बाद उसके व्यावहारिक क्रियान्वयन, नियत्रंण और सशस्त्र क्रांति को आजादी हासिल करने की मंजिल तक संचालित करने की नीति शैली पर परमानन्द जी ने निर्भीक और निर्णायक स्वर में अपने विचार प्रस्तुत किए। बाहरी देशों से सम्पर्क बनाए रखने वाले तार वायरलेस केन्द्र, नदियों के पुल, पुलिस और सैन्य

ठिकानों, पेट्रोल टैंकों, बड़े रेल्वे जंक्शन, जहाजों के ठिकानों पर शक्तिपूर्वक अधिकार कर अपने नियंत्रण में ले लिया जाए। बलवान शत्रुओं को परास्त कराने के लिए उनके समस्त साधन छीन लेना चाहिए और यातायात तथा समाचार सन्देह प्रेषण के सूत्र साधन भंग कर दिए जाने चाहिये।[1]

अमृतसर में गुलाबसिंह की धर्मशाला में एक बार फिर गदर पार्टी के प्रमुख सदस्यों की गुप्त बैठक हुई, जिसमें भाई निदान सिंह, पिंगले, डॉ. मथुरासिंह, हदयाराम, कर्तारसिंह, बलवन्त सिंह, बनता सिंह, वीर सिंह, प्यारासिंह, हरनाथ तथा इन्दर सिंह इस महत्वपूर्ण मुद्दे को निश्चित करने को एकत्रित थे कि किस दल को या किस क्रांतिकारी व्यक्ति को, किस ओर भेजा जाये, इस प्रकार सभी फौजी छावनियों के लिए पार्टियाँ चुनी गई, क्रांतिकारी साहित्य, निर्देश और आवश्यक धुन का प्रबंधक किया गया। पंडित परमानन्द जी को इलाहाबाद, झांसी और कानपुर डिवीजन (क्षेत्र) तय किए गये। उनके साथ सज्जन सिंह और वीर सिंह भी थे। पंडित जी अपने क्षेत्र में जाकर सब व्यवस्था ठीक करने के बाद पुनः अमृतसर आ गए। उस समय रास बिहारी लाहौर में ही थे। अतः पंडितजी लाहौर पहुंचे, यह तय हुआ कि कर्णसिंह को फीरोजपुर की फौजी छावनी भेजा जावे, पिंगले दिल्ली मेरठ की छावनियों में काम करें, हरनाम सिंह मियाभीर की छावनी में। प्रश्न यह था कि पेशावर, बन्नू मोहाद और जमरोद की फौजी छावनी में गदर का इन्तजाम किसको सौंपा जाये। सैनिक मानचित्र देखा गया। फ्रंटियर के सैन्य स्थान देखे गए। वहां पर लगभग (6000) फौज एकत्र थी, शेष भारत में (20000) फौज थी। 6000 फौज को सशस्त्र क्रांति के समर्थन, क्रियान्वयन की ओर कैसे अनुकूल किया जावे। अन्त में परमानन्द जी को ही यह गंभीर दायित्व दिया गया। पेशावर छावनी जाने के पूर्व पंडित जी ने रासबिहारी जी से विदा ली और अपने पास 2000 नोटिस गदर की गूंज और उर्दू की कुछ प्रतियां रख लीं, सशस्त्र क्रांति के प्रतीक दस

1. राष्ट्र गौरव : बुन्देलखण्ड का स्वतंत्रता संग्राम पृ0 253

झण्डे भी साथ लिये और खत्री युवक का भेष बनाकर दूसरे दिन शाम पेशावर पहुंच गये। पेशावर में उन्हें उत्तर प्रदेश के कुछ सिपाही मिले, वे सात नम्बर राजपूत सेना के जवान थे। उन्हीं में कुछ सैनिक बुन्देलखण्ड के भी थे। उनकी सहायता से पंडित जी पेशावर छावनी में फौज के बड़े बाबू सुखदेव सिंह से मिले। इनसे पंडित जी हांगकांग में परिचित हुए थे तथा उन्हीं की सहायता से पंडित जी हांगकांग में अंग्रेज कर्नल के संदेह से बच निकले थे। अब उनकी फौज पेशावर आ गई थी। पंडित जी सुखदेव सिंह से छावनी स्थित उनके बंगले में मिले। सुखदेव सिंह क्रांति के समर्थक थे। उन दिनों जर्मनी सेनाएं विजयी हो रही थीं और अंग्रेजों का पलड़ा हल्का थ। अंग्रेजी सेनाए मोर्चे पर आगे जा चुकी थी। सारा देश लगभग अंग्रेजी सेना विहीन था अगर उसी समय संगठित रूप में अन्दरूनी भागों पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया जाता तो शायद भारत को आजादी प्रथम युद्ध में ही मिल चुकी होती।

पंडित जी का विचार कर्म पर विश्वास रखने पर था। वे तो कुर्वानी को सैनिक का सर्वोत्तम गुण मानते थे जो जाति जितना बलिदान चढ़ाती है, उतनी ही उन्नति करती है।[1]

एक साथ पूरे देश की तारीख 21 फरवरी 1915 ई. निश्चित की गई थी। सारी व्यवस्थाएं गुप्त रूप में की जा रही थीं। पेशावर में सुखदेव सिंह के संरक्षण में रहते हुए अपना कार्य कर रहे थे। फरवरी माह क्रांतिकारियों की सशस्त्र कार्यवाही की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हो गया था। एक दिन सुकदेव सिंह अपने साथ पेशावर छावनी की ब्राह्मण फौज के सूबेदार और जमादार अधिकारियों को लेकर पंडित जी के पास आए। उन्होंने पंडित जी को बताया कि ये लोग आपके निद्रेशानुसार विद्रोह करने को तैयार हैं। इसके बाद परमानन्द जी रावलपिण्डी पहुंचे जो उस समय पश्चिमी भारत की सबसे बड़ी फौजी छावनी थी। हिन्दुस्तान का सबसे बड़ा आर्सनल उन दिनों रावल पिण्डी में था। पंडित जी रावलपिण्डी, जामरीद, पेशावर, कोहार, बन्नू की फौजों में अपना उद्देश्य पूरा करके लाहौर लौट आए और भाई जी

---

1. राष्ट्र गौरव : बुन्देलखण्ड का स्वतंत्रता संग्राम पृ0 254

से मिले। वहां मालूम हुआ कि 15 फरवरी को सब लोग आ रहे हैं। तब पंडित जी रासबिहारी से मिले। लाहौर से पंडित जी अमृतसर गए और भूलासिंह तथा प्रेमसिंह से मिले। वहां सैकड़ों सिपाही मिले जो क्रांति (गदर) के दिन की बेसब्री से प्रतीक्षा कर रहे थे और हथियार जमा कर रहे थे। वहां से पंडित जी लुधियाना गए और डॉ. साहब के साथ अमृतसर पहुंचकर हृदयराम से मिले। क्रांति के यायावर परमानन्द जी पुनः लाहौर पहुंचे और पं. जगतराम के चाचाजी पं. बिहारी लाल जी के माध्यम से अमरसिंह से मिले। वहां पर तार काटने वाले सौ वायर कटर और दस्ताने खरीद लिए गये थे।

सन् 1915 की फरवरी माह की 15 तारीख को सभी क्रांतिकारी गदर पार्टी के अधिकारी अपनी अपनी छावनियों से लाहौर में एकत्र हुए। पंडित जी 12 फरवरी को लाहौर आ गए थे। गदर के सिपाही सारे देश की छावनियों में फैल चुके थे। बम फैक्ट्रियों में पर्याप्त विध्वंशक सामग्री तैयार थी। 26000 से ज्यादा फौज सशस्त्र क्रांति का सहयोग करने को पूर्णतः तैयार थी, अमरीका और अन्य देशों से लौटे हुए हजारों सिपाही देश की आजादी के लिए प्राण हथेली पर धरे गदर का बिगुल बजने के इन्तजार में थे।

15 फरवरी की बैठक में तय हुआ कि सब लोग अपने–अपने स्थानों पर 17–18 फरवरी तक पहुंच जाये ज्यों ही लाहौर और देहली से टेलीग्राफ करें। 19 तारीख को दिन के बारह बजे सारे देश के आर्सनलों पर कब्जा कर लें, अफसरों को बंगलों में बन्दी कर दें, लड़ने या भगाने वाले अंग्रेजों को मार डाले और अपने क्षेत्र की सरकारों पर अधिकार करके गर्वनरों को बन्दी बना लें। आर्सनलों के हथियार गदर के कार्यकर्ता सिपाहियों में बांट दें और प्रत्येक प्रान्त में नव युवकों का संगठन कर चार पांच लाख सेना तैयार कर भारत के समुद्र तट को छेक लें। जिससे अंग्रेजों को समुद्र पार से कोई सहायता न मिल सके। इसके बाद अमरीका के ढंग की लोकतांत्रिक सरकार स्वतंत्रत भारत की घोषित कर दें। गदर अभियान को जर्मनी

का पूरा सहयोग प्राप्त था।

गदर पार्टी की योजनानुसार पंडित जी भाई निदान सिंह के साथ पुनः रावलपिण्डी गए और वहां से 18 फरवरी को पेशावर पहुंचे। वहां सुखदेव सिंह से मिले और ब्राह्मण पलटन के सूबेदार से मिलकर फौजी छावनी में ही वायर कअर तथा सैन्य मानचित्र रख दिये गये। सब लोगों ने गीता हाथ में लेकर अन्तिम श्वास तक गदर का साथ देने का वचन लिया। राजपूत तथा ब्राह्मण सेना का प्रत्येक सैनिक क्रांति के लिए प्रणबद्ध था।

पंडित जी जब पेशावर छावनी में काम में लगे हुये थे अचानक वहां कुछ अंग्रेज सैनिक और अंग्रेज कर्नल आया। अंग्रेज कर्नल ने सूबेदार को सावधान करते हुए कहा कि यहां कोई रिवोल्यूशनरी (क्रांतिकारी) आया है। उसने पूरी फौज को बहका दिया है, उसकी तलाश यहीं छावनी में करो। किन्तु अपने फौजी साथियों की मदद से परमानन्द जी बच निकले और पेशावर शहर में आकर एक पठान युवती के यहां छिप गए जिसकी सहायता से वो 21 फरवरी को लाहौर पहुंचे। यहां निरंजनदास की दुकान में सज्जनसिंह और हरनाम सिंह मिले। सज्जनसिंह से पता चला कि कृपालसिंह ने विश्वासघात किया और उसकी मुखबिरी पर अंग्रेज सरकार को हमारी गदर योजना का सुराग (भेद) 17 फरवरी को ही मिल गया। सशस्त्र क्रांति का क्रियान्वयन होने के पूर्व अपने ही साथी की गद्दारी के कारण विफल होने पर पंडित जी के बहुत साथियों को संदेह तो पहले था बल्कि जगत सिंह ने रासबिहारी के सामने अपना संदेह प्रकट करते हुए कृपालसिंह को गोली मार देने की अनुमति भी मांगी थी, यद्यपि कुछ दिन बाद उस गद्दार को मार डाला गया किन्तु, सशस्त्र क्रांति का भव्य सपना, साकार होने के पूर्व ही टूट जाने से भारत में क्रांतिकारियों की पकड़–धकड़ तेज हो गई। रासबिहारी ब्रिटिश सरकार के अधिकारियों से बचकर निकल गए किन्तु गदर पार्टी के अन्य कार्यकर्ता

पकड़ लिये गए।

जिस समय पंडित परमानन्द जी को लाहौर में गिरफ्तार किया गया उस समय उनकी जेब में हिन्दुस्तान की टोपोग्राफी (सैन्य नक्शा) थी। कृपाल सिंह की मुखबिरी से पुलिस को कुछ विशेष जानकारी नहीं मिल सकी तो उन्होंने अमर सिंह को मुखबिर बना लिया जो गदर पार्टी का प्रमुख सदस्य था और अमरीका में भी पार्टी का काम करता था।

पंडित जी तथा उनके अन्य साथी लाहौर सेन्ट्रल जेल में 14 नं. की कोठरियों में बन्द कर दिये गये। जेल में ही नं. 16 में इस केस के निर्णय के लिए अदालत बनायी गई। पंडित जी के अनेक साथी भी मुलतान जेल से लाहौर लाये गए जिनमें केदार नाथ सहगल, नन्द किशोर मेहरा, बख्शीसिंह, सुरेन्द्र सिंह, विश्वास सिंह आदि थे। पंडित जगतराम पेशावर जेल से आ गए थे। पृथ्वी सिंह भी थे। 60–65 क्रांतिकारी जिन्हें ब्रिटिश सरकार गदर पार्टी का प्राण मानती थी। सब लाहौर जेल में बन्द थे। 5 दिन बाद विष्णु गणेश पिंगले भी मेरठ में गिरफ्तार किए जाकर लाहौर सेन्ट्रल जेल लाए गए।

लाहौर जेल में जो प्रथम मुकदमा चला वह प्रथम पार्टी जिसमें पंडित परमानन्द के साथ सरदार सिंह, रूढ़सिंह, केहर सिंह, पूरन सिंह, श्वंगसिंह, इन्दरसिंह, मन्त्री सेवा सिंह, सठिया सिंह, होड़ सिंह, कपूरथला के लाला रामशरण दास आदि थे। 13 सितम्बर 1915 ई. को लाहौर सेन्ट्रल जेल में 5–5 क्रांतिकारी बन्दियों की 13 टोली बनाई गई। पंडित जी की टोली नं. 4 में पंडित जी, कर्तार सिंह, रूढ़सिंह, केहरी सिंह और सेवा सिंह थे। जज ने निर्णय दिया परमानंद फाँसी तुमने देश विदेशों में ब्रिटिश सरकार को उखाड़ फेंकने के लिए षडयंत्र किया। बाहरी देशों से हथियार लाए। सिंगापुर, झाँसी, कानपुर, इलाहाबाद, की छावनियों में और फ्रंटियर की सरकारी फौंजो में बगावत फैलाई और मसाला इकट्ठा किया। इसलिए यह कोर्ट दफा 121ए, 122, 121 और 124 ए के मुताबिक तुमको फांसी की सजा देती है। सजा

सुनकर परमानन्द जी खिलाखिलाकर हंस पड़े। इस पर सरकारी एडवोकेट मि. पैटमैन ने कहा "See my Lord! how he laughs at death ?" देखे श्रीमान यह व्यक्ति मृत्यु का कैसा उपहास कर रहा है।

15 नवम्बर 1995 ई. को गदर पार्टी के जिन सात क्रांतिकारी बन्दियों को फांसी दी गई वे थे, कर्तार सिंह, विष्णु गणेश पिंगले, जगत सिंह, हरनाम सिंह, बख्शीश सिंह, सुखसिंह और सुरेन सिंह द्वितीय।

अपने सात क्रांतिकारी साथियों की फांसी पर पंडितजी की प्रतिक्रिया थी–'अगर आज भारत जिन्दा होता तो अंग्रेजों को मालूम पड़ता कि किसी जाति के वीर बच्चों को मारने का क्या बदला मिलता है।' 19–20 नवम्बर 1915 ई. को परमानन्द जी तथा उनके अनेक साथियों को बड़ी–बड़ी बेड़ियां और हथकड़ियाँ पहनाई गई। एक स्पेशल गाड़ी से इन राष्ट्रवीर युवा क्रान्तिकारी बंदियों को कलकत्ता ले जाया गया और कुछ दिन प्रेसीडेंसी जेल में रखा गया। उसके बाद महाराजा जहाज से उन्हें अण्डमान कालापानी की सजा काटने के लिए भेज दिया गया। इस तरह प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व ही भारत को विदेशी दासता, दमन और अनाचार से मुक्त कराने के महत् संकल्प से गदर पार्टी के नेतृत्व में जो सशस्त्र क्रांति का अभियान संगठित हुआ, जिसमें देश तथा देश के बाहर रहने वाले प्रवासी भारतीय वीरों ने खुलकर निःस्वार्थ योग किया। यद्यपि सफन न हो सका किन्तु स्वतंत्रता की प्रबल अकांक्षा को भारतीयों के मन में बहुत गहरे जगाने में अवश्य सफल हुआ। क्रांतिवीरों का निस्पृह आत्मोत्सर्ग भारत की स्वतंत्रता की बुनियाद में निहित रहा।[1]

= = = =0= = = =

---

1. राष्ट्र गौरव : बुन्देलखण्ड का स्वतंत्रता संग्राम पृ0 256

# अध्याय—5

## भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में बुन्देलखण्ड की भूमिका— गांधी युग (1920—1945)

(i) असहयोग आंदोलन की पृष्ठभूमि

(ii) खिलाफत आंदोलन एवं असहयोग आंदोलन

(iii) क्रांतिकारी आन्दोलन

(iv) पूर्ण स्वराज्य का लक्ष्य एवं सविनय अवज्ञा आंदोलन

(v) गांधी युग की गतिविधियों में बुन्देलखण्ड की सहभागिता

राष्ट्रीय आंदोलन का तीसरा चरण 1919 में शुरू हुआ जब विशाल जन आंदोलन का युग आरंभ हुआ। इस काल में भारतीय जनता ने संभवतः विश्व इतिहास के सबसे बड़े जन संघर्ष लड़े।

प्रथम महायुद्ध (1914–18) के दौरान एक नई स्थिति विकसित हो रही थी। राष्ट्रवाद की ताकत बढ़ी थी। राष्ट्रवादियों को युद्ध के बाद बड़े राजनीतिक लाभ मिलने की आशाएं थीं, और ये पूरी न हो पाने पर वे लड़ने को भी तैयार थे। महायुद्ध के बाद के वर्षों में आर्थिक स्थिति और बिगड़ी। पहले तो कीमतें बढ़ी और फिर आर्थिक गतिविधियां मंद होने लगीं। युद्ध के दौरान विदेशी आयात के रूक जाने के कारण भारतीया उद्योग फले–फूले थे, मगर अब उनको घाटे होने लगे और बंद होने लगे। इसके अलावा भारत में अब विदेशी पूंजी बड़े पैमाने पर लगाई जाने लगी। भारतीय उद्योगपति चाहते थे कि सरकार आयातों पर भारी कस्टम ड्यूटी लगाकर तथा मदद देकर उनके उद्योगों को सुरक्षा प्रदान करे। अब उन्हें भी महसूस होने लगा कि केवल एक मजबूत राष्ट्रवादी आंदोलन तथा एक स्वाधीन भारतीय सरकार के द्वारा ही वे लक्ष्य प्राप्त किए जा सकते हैं। बेरोजगारी तथा मंहगाई की मार से पीड़ित मजदूर तथा दस्तकार भी राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय हो उठे। अफ्रीका, एशिया और यूरोप में कुछ जीतें हासिल करके देश लौटे भारतीय सैनिकों ने भी अपने आत्मविश्वास तथा दुनिया के बारे में अपना ज्ञान ग्रामीण क्षेत्रों में फैलाया। बढ़ती गरीबी तथा भारी करों के बोझ से कराहते किसान भी नेतृत्व पाने की प्रतीक्षा कर रहे थे। नगरों के शिक्षित भारतीय भी बढ़ती बेरोजगारी से त्रस्त थे। इस तरह भारतीय समाज के सभी वर्ग आर्थिक कठिनाइया महसूस कर रहे थे और इन कठिनाइयों को सूखों, महंगाई और महामारियोंने और बढ़ा दिया था।

## असहयोग आंदोलन की पृष्ठभूमि :

अंतर्राष्ट्रीय स्थिति भी राष्ट्रवाद के पुनरोदय के अनुकूल थी। प्रथम महायुद्ध ने पूरे एशिया और अफ्रीका में राष्ट्रवाद को बहुत बल पहुंचाया था। अपने युद्ध प्रयासों में जन समर्थन पाने के लिए मित्र राष्ट्रों अर्थात ब्रिटेन, अमरीका, फ्रांस, इटली और जापान ने दुनिया के सभी राष्ट्रों के लिए जनतंत्र तथा राष्ट्रीय आत्मनिर्णय का एक नया युग आरंभ करने का वचन दिया था। लेकिन युद्ध के बाद उन्होंने अपना उपनिवेशवाद खत्म करने में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई। उल्टे, पेरिस शांति सम्मेलन तथा दूसरी सभी संधियों में युद्धाकालीन वचन भुला बल्कि तोड़ दिए गए। अफ्रीका, पश्चिमी एशिया तथा पूर्वी एशिया में युद्ध में हारने वाली शक्तियों अर्थात जर्मनी और तुर्की के सारे उपनिवेशों की विजेताओं ने आपस में बांट लिया। इससे एशिया और अफ्रीका में हर जगह जुझारू और भ्रममुक्त राष्ट्रवाद उठ खड़ा होने लगा। भारत में ब्रिटिश सरकार ने सांविधानिक सुधारों के कुछ प्रयास बेदिली से किए मगर साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया कि उसका राजनीतिक सत्ता छोड़ने या उसमें भारतीयों को साझेदार बनाने को कोई इरादा नहीं था।

महायुद्ध का एक महत्वपूर्ण परिणाम यह भी हुआ कि गोरों की प्रतिष्ठा घटी। साम्राज्यवाद के आरंभ से ही यूरोपीय शक्तियों ने अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए जाती सांस्कृतिक श्रेष्ठता का स्वांग रचा था लेकिन युद्ध के दौरान दोनों पक्षों ने एक दूसरे के खिलाफ धुआंधार प्रचार किया तथा अपने विरोधियों द्वारा उपनिवेशों के बर्बर और असभ्य व्यवहार का पर्दाफाश कि। स्वाभाविक तौर पर उपनिवेशों की जनता ने दोनों पक्षों पर विश्वास किया और गोरों की श्रेष्ठता का भय उनके मन से उठने लगा।

---

रूसी क्रांति के प्रभाव से भी राष्ट्रीय आंदोलनों को बहुत बल मिला। रूस में ब्लादिगीर इल्विच लेनिन के नेतृत्व में वहां की बोल्शेविक (कम्युनिष्ट) पार्टी ने जार का 7 नवम्बर 1917 में तख्ता पलट दिया और वहां दुनिया के पहले समाजवादी राज्य, सोवियत संघ की स्थापना की घोषणा की। चीन और एशिया के दूसरे भागों में अपना साम्राज्यवादी अधिकारों को एकतरफा तौर पर छोड़कर, एशिया में जार के पुराने उपनिवेशों को आत्मनिर्णय का अधिकार देकर, और अपनी सीमा में रहने वाली उन सभी एशियाई जातीयताओं को, जो पुराने शासन के अधीन उसके दमन का शिकार रहीं थीं। समान अधिकार देकर नई सोवियत सत्ता ने उपनिवेशों की जनता में बिजली की लहर दौड़ा दी। रूस की क्रांति ने उपनिवेशों की जनता में एक नई जान फूंकी। इसने उपनिवेशों की जनता को यह महान पाठ पढ़ाया कि साधारण जनता में बेपनाह शक्ति निहित होती है। अगर निहत्थे किसान और मजदूर अपने यहां के अत्याचारियों के खिलाफ एक क्रांति कर सकते हैं तो गुलाम राष्ट्रों की जनता भी अपनी आजादी के लिए लड़ सकती है, बशर्ते कि वह भी उतनी ही एकताबद्ध संगठित तथा आजादी के लिए लड़ने पर दृढ़ हो।[1]

भारत का राष्ट्रवादी आंदोलन इस बात से भी प्रभावित हुआ कि एशिया और अफ्रीका के दूसरे भाग भी युद्ध के बाद राष्ट्रवादी आंदोलनों से आंदोलित हो रहे थे। भारत ही नहीं बल्कि आयरलैंड, तुर्की, मिस्त्र तथा उत्तरी अफ्रीका और पश्चिमी एशिया के दूसरे अरब देशों ईरान, अफगानिस्तान, वर्मा, मलाया,, इंडोनेशिया, हिंदचीन, फिलीपीन, चीन और कोरिया में भी राष्ट्रवाद की लहर आगे बढ़ी।

राष्ट्रवादी और सरकार विरोधी भावनाओं की उठती लहर से परिचित ब्रिटिश सरकार ने एक बार फिर कुछ छूट और दमन की नीति अपनाने का फैसला किया।

---

1. विपिन चन्द्रा : आधुनिक भारत पृ0 192

## मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधार :

ब्रिटिश सरकार के भारत मंत्री एशिया मांटेग्यू तथा वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड ने 1918 में संविधन सुधारों की एक योजना सामने रखी जिनके आधार पर 1919 का भारत सरकार कानून बनाया गया। इस कानून में प्रांतीय विधायी परिषदों का आकार बढ़ा दिया गया तथा निश्चित किया गया कि उनके अधिकांश सदस्य चुनाव जीतकर आएंगे। दुहरी शासन प्रणाली के तहत प्रांतीय सरकारों को अधिक अधिकार दिए गए। इस प्रणाली में वित्त, कानून और व्यवस्था आदि कुछ विषय 'आरक्षित' घोषित करके गवर्नर के प्रत्यक्ष नियंत्रण में रखे गए तथा शिक्षा, जन स्वास्थ्य तथा स्थानीय स्वशासन जैसे कुछ विषयों को हस्तांतरित घोषित करके उन्हें विधायिकाओं के सामने उत्तरदायी मंत्रियों के नियंत्रण में दे दिया गया। इसका अर्थ यह भी था कि जिन विभागों में काफी धन खर्च होता तो वे हस्तांतरित तो होंगे मगर उनमें भी वित्त पर पूरा नियंत्रण गवर्नर का होगा। इसके अलावा गवर्नर अपनी समझ से विशिष्ट किसी भी आधार पर मंत्रियों की आज्ञा को रद्द कर सकता था। केंद्र में दो सदनों की व्यवस्था थी। निचले सदन अर्थात लेजिस्टलेटिव असेंबली में कुल 144 सदस्यों मे 41 सदस्य नामजद होते थे। ऊपरी सदन अर्थात कौंसिल आफ स्टेट्स में 26 नामजद तथा 34 चुने हुए सदस्य होते थे। गवर्नर जनरल और उसकी एक्जीक्यूटिव कौंसिल पर विधानमंडल का कोई नियंत्रण न था। दूसरी ओर केंद्र सरकार का प्रांतीय सरकारों पर अबाध नियंत्रण था। इसके अलावा वोट का अधिकार बहुत अधिक सीमित था। 1920 मे निचले सदन के लिए कुल 909,874 तथा ऊपरी सदन के लिए 17364 मतदाता थे।

मगर भारतीय राष्ट्रवादी इन मामूली छूटों से बहुत आगे बढ़ चुके थे। वे अब राजनीतिक सत्ता 1918 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने बंबई में एक विशेष सत्र बुलाया ताकि

सुधार के प्रस्तावों पर विचार किया जा सके। इस अधिवेशन के अध्यक्ष हसन इमाम थे। इस सत्र ने इन प्रस्तावों को ''निराशाजनक और असंतोषजनक'' बलताकर इसकी जगह प्रभावी स्वशासन की मांग रखी। सुरेंद्रनाथ बनर्जी के नेतृतव में कांग्रेस के कुछ वयोवृद्ध नेता सरकार के प्रस्ताव को स्वीकार करने के पक्ष में थे। उन्होंने कांग्रेस छोड़कर इंडियन लिबरल एसोसिएशन की स्थापना की। ये लोग ''उदारवादी'' कहे गए तथा भारत की राजनीति में आगे चलकर उनकी बहुत नगण्य भूमिका रही।

**रोलट कानून :**

भारतीयों को संतुष्ट करने के प्रयास करते समय भी भारत सरकार दमन के लिए तैयार थी। युद्ध के पूरे काल में राष्ट्रवादियों का दमन जारी रहा था। आंतकवादियों तथा क्रांतिकारियों को खोज–खोज कर फांसी पर लटकाया या जेलों में बंद किया गया था। अबुलकलाम आजाद जैसे दूसरे अनेक राष्ट्रवादी भी सींखचों के पीछे बंद रखे गए थे। अब सरकार ने स्वयं को ऐसी भयानक शक्तियों से लैस करने का फैसला किया जो कानून के शासन के स्वीकृत सिद्धांतों के प्रतिकूल थीं। ताकि वह सरकारी सुधारों से संतुष्ट न होने वाले राष्ट्रवादियों को कुचल सके। मार्च 1919 में सरकार ने केंद्रीय विधान परिषद के एक–एक भारतीय सदस्य द्वारा विरोध के बावजूद रौलट एक्ट बनाया। इस कानून ने सरकार को अधिकार प्राप्त था कि वह किसी भी भारतीय पर अदालत में मुकदमा चलाए औश्र दंड दिए बिना जेल में बंद कर सके। कैदी को अदालत में प्रत्यक्ष उपस्थित करने का जो कानून ब्रिटेन में नागरिकों स्वाधीनताओं की बुनियाद था उसे भी निलंबित करने का अधिकार सरकार ने रौलट कानून से प्राप्त कर लिया।

---

## महात्मा गांधी का नेतृत्व :

रौलट कानून बादल से बिजली की तरह लोगों पर गिरा। युद्ध के दौरान सरकार ने भारत की जनता से जनतंत्र का विस्तार करने का वादा किया था, मगर यह कानून तो एक बेरहम मजाक था। जैसे कि भूखे आदमी को भोजन की आशा हो मगर उसे कंकड़ परोसे गए हों। लोकतांत्रिक प्रगति तो नहीं हुई, मगर नागरिक स्वतंत्रताएं और भी कम कर दी गई। देश में असंतोष फैल गया और इस कानून के खिलाफ एक शक्तिशाली आंदोलन उठ खड़ा हुआ। इस आंदोलन के दौरान मोहनदास करमचंद गांधी नामक एक नए नेता ने राष्ट्रीय आंदोलन की बागडोर संभाल ली। इस नए नेता ने पुराने नेताओं की एक बुनियादी कमजोरी को खूब पहचाना। दक्षिण अफ्रीका में नस्लवाद से लड़ते हुए उन्होंने संघर्ष का एक नया रूप असहयोग और एक नई तकनीक सत्याग्रह का विकास किया था जिसे अब भारत में अंग्रेजों के खिलाफ आजमाया जा सकता था। इसके अलावा उन्हें भारतीय किसानों की समस्याओं तथा मानसिकता की बुनियादी समझ भी थी और उनके साथ हमदर्दी भी। इसलिए वे किसानों को आकर्षित करके राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य धारा से लाने में समर्थ रहे। इस तरह वे भारतीय जनता के सभी वर्गो को उभारकर और उनमें एकता कायम करके एक जुझारू राष्ट्रीय जन आंदोलन खड़ा करने मे समर्थ रहे।[1]

मोहनदास करमचंद गांधी का जन्म गुजरात के पोरबदर नामक स्थापर 2 अक्टूबर 1969 को हुआ था। ब्रिटेन में कानून की शिक्षा प्राप्त करने के बाद वे वकालत करने के लिए दक्षिण अफ्रीका चले गए। न्याय की उच्च भावना से प्रेरित होकर उन्होंने उस नस्लवादी अन्याय, भेदभाव और हीनता के खिलाफ संघर्ष किया जिसका शिकार दक्षिण अफ्रीका

---

1. प्यारे लाल : महात्मा गांधी

उपनिवेशों में भारतीयों को होना पड़ रहा था। भारत से दक्षिण अफ्रीका पहुंचे मजदूरों और व्यापारियों को मत देने का अधिकार नहीं था उन्हें पंजीकरण कराना तथा चुनाव कर देना पड़ता था। उनको गंदी और भीड़ भरी उन बस्तियों में ही रहना होता था जो उनके लिए निर्धारित थीं। कुछ दक्षिण अफ्रीका उपनिवेशों में एशियाई और अफ्रीकी लोग रात के नौ बजे के बाद घर से बाहर नहीं निकल सकते थे और नही सार्वजनिक फुटपाथों का प्रयोग कर सकते थे। गांधीजी इन स्थितियों के विरोध में चलने वाले संघर्ष के शीघ्र ही नेता बन गए और 1893–94 में वे दक्षिण अफ्रीका के नस्लवादी अधिकारियों के खिलाफ एक बहादुराना मगर असमान संघर्ष चला रहे थे। लगभग दो दशक लंबा यही वह संघर्ष था जिसके दौरान उन्होंने सत्य और अहिंसा पर आधारित सत्याग्रह नामक तकनीक का विकास किया। उनके अनुसार एक आदर्श सत्याग्रही सत्यप्रेमी और शांतिप्रेमी होता है, मगर वह जिस बात को गलत समझता है उसे स्वीकार करने से दृढ़तापूर्वक अस्वीकार कर देता है। वह गलत काम करने वालों के खिलाफ संघर्ष करते हुए हंसकर कष्ट सहन करता है। वह संघर्ष उसके सत्यप्रेम का ही अंग होता है। लेकिन बुराई का विरोध करते हुए भी वह बुरे से प्रेम करता है। एक सच्चे सत्याग्रही को प्रकृति में घृणा के लिए कोई स्थान नहीं होता। इसके अलावा वह एकदम निडर होता हें चाहे जो परिणाम हो, वह बुराई के सामने नहीं झुकता। गांधीजी की दृष्टि में अहिंसा कायरों और कमजोरों का अस्त्र नहीं है। केवल निडर और बहादुर लोग ही इसका उपयोग कर सकते हैं। वे हिंसा को कारता से अधिक स्वीकार्य समझते थे। 1920 में अपने साप्ताहिक पत्र ''यंग इंडिया'' में एक प्रसिद्ध लेख में वे लिखते हैं कि ''अहिंसा हमारी प्रजाति का धर्म है जैसे हिंसा पशु का धर्म है,'' परंतु ''अगर केवल कायरता और हिंसा में किसी एक को चुनना हो तो मैं हिंसा को चुनने की सलाह दूंगा. . . . भारत कायरतापूर्वक, असहाय होकर अपने सम्मान का

अपहरण होते देखता रहे, इसके बजाए मैं उसे अपने सम्मान की रक्षा के लिए हथियार उठाते देखना अधिक पसंद करूंगा।" एक जगह उन्होंने अपने पूरे जीवन दर्शन की व्याख्या इस प्रकार की है।

सत्य और अहिंसा ही वह अकेला धर्म है जिसका मैं दावा करना चाहता हूँ। मैं किसी भी परामानवीय शक्ति का दावा नहीं करता, ऐसी कोई शक्ति मुझमें नहीं है।[1]

गांधीजी के दृष्टिकोण का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी था कि वे विचार और कर्म में कोई अंतर नहीं रखते थे। उनका सत्य अहिंसा दर्शन जोशीले भाषणों और लेखों के लिए न होकर रोजमर्रा के जीवन के लिए था।

इसके अलावा साधारण जनता की संघर्ष की क्षमता पर गांधीजी को अटूट भरोसा था। उदाहरण के लिए, 1915 में जब मद्रास में उनका स्वागत किया गया तो दक्षिण अफ्रीका में अपने साथ संघर्ष करने वाले साधारण लोगों के बारे में उन्होंने कहा।

आप कहते हैं कि इन महान स्त्री पुरूषों को प्रेरणा मैंने दी, मगर मैं इस सम्मान को स्वीकार नहीं कर सकता। उल्टे, जरा से भी इनाम की आशा किए बिना श्रद्धा के साथ कोई काम करने वाले इन सीधे–सादे लोगों ने ही मुझे प्रेरणा दी, मुझे अपनी जगह पर अडिग रखा तथा जिन्होंने अपने बलिदान के द्वारा अपनी महान श्रद्धा के द्वारा तथा महान ईश्वर मे अपने महान विश्वास के द्वारा मुझसे वह सब कराया जो मैं कर सका।

इसी तरह 1942 में जब उनसे पूछा गया कि वे "साम्राज्य की शक्ति का सामना" कैसे कर सकेंगे, तो उन्होंने उत्तर दिया : "लाखों लाख मूक जनता की शक्ति के द्वारा।"

गांधी जी 46 वर्ष की आयु में 1915 में भारत लौटे। पूरे एक वर्ष तक उन्होंने देश का भ्रमण किया और भारतीय जनता की दशा को समझा। फिर उन्होंने 1916 मे अहमदाबाद

---

1. एम. वी. गाडगिल : गांधीज कंट्रीब्यूसन टु इंडियन थाट एण्ड फिलासपी

के पास साबरमती आश्रम की स्थापना की जहां उनके मित्रों और अनुयायियों को रहकर सत्य अहिंसा को समझना तथा व्यवहार करना पड़ता था। उन्होंने संघर्ष की अपनी नई विधि के साथ यहां प्रयोग भी करना आरंभ किया।

**चंपारन का सत्याग्रह (1917) :**

गांधी जी ने सत्याग्रह का अपना पहला बड़ा प्रयोग बिहार के चंपारन जिले में 1917 में किया। यहां नील के खेतों में काम करने वाले किसानों पर यूरोपीय निलहे बहुत अधिक अत्याचार करते थे। किसानों को अपनी जमीन के कम से कम 3/20 भाग पर नील की खेती करना तथा निलहों द्वारा तय दामों पर उन्हें बेचना पड़ता था। इसी तरह की परिस्थितियां पहले बंगाल में भी रहीं थीं मगर 1859–61 के काल में एक बड़े विद्रोह के द्वारा वहां के किसानों ने निलहे साहबों में मुक्ति पा ली थी।[1]

गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका के संघर्षो की कहानी सुनकर चंपारन के अनेक किसानों ने उन्हें वहां आकर उनकी सहायता का निमंत्रण दिया। गांधी जी बाबू राजेन्द्र प्रसाद, मजहरूल–हक, जे. बी. कृपलानी, नरहरि पारिख और महादेव देसाई के साथ 1917 में यहां पहुंचे और किसानों की हालत की विस्तृत जांच पड़ताल करने लगे। जिले के अधिकारियों ने जल भुनकर उन्हें चंपारन छोड़ने का आदेश दिया, मगर उन्होंने आदेश को उल्लघंन किया और जेल मुकदमे के लिए तैयार रहे। सरकार ने मजबूर होकर पिछला आदेश रद्दकर दिया और एक जांच समिति बिठाई जिसके एक सदस्य स्वयं गांधीजी थे। अंततः किसान जिन समस्याओं से पीड़ित थे उनमें कमी हुई। इस तरह भारत में सविनय अवज्ञा आंदोलन की पहली लड़ाई गांधीजी ने जीत ली। चंपारन में उन्होंने वह भयानक गरीबी भी देखी जो भारतीय किसानों के जीवन का अंग थी।

---

1. ए. एन. अग्रवाल : गांधिज्य

## अहमदाबाद में मजदूरों की हड़ताल :

सन् 1918 में गांधीजी ने अहमादाबाद के मजदूरों और मिल मालिकों के एक विवाद में हस्तक्षेप किया। उन्होंने मजदूरों को मजदूरी में 35 प्रतिशत वृद्धि की मांग करने तथा इसके लिए हड़ताल पर जाने की राय दी। लेकिन उन्होंने जोर देकर कहा कि हड़ताल के दौरान मजदूर मालिकों के खिलाफ हिंसा का प्रयोग न करें। मजदूरों के हड़ताल जारी रखने के संकल्प को बल देने के लिए उन्होंने आमरण अनशन किया। उनके अनशन ने मिल मालिकों पर दबाव डाला और वे नर्म पड़कर मजदूरी 35 प्रतिशत बढ़ाने पर सहमत हो गए।

सन् 1918 में गुजरात के खेड़ा जिले के किसानों की फसल चौपट हो गई। मगर सरकार ने लगान छोड़ने से एकदम इनकार कर दिया और पूरा लगान वसूल करने कपर उतारु हो गई। गांधीजी ने किसानों का साथ दिया और उन्हें राय दी कि जब तक लगान में छूट नहीं मिलती, वे लगान देना बंद कर दें। जब यह खबर मिली कि सरकार ने केवल उन्हीं किसानों से लगान वसूलने के आदेश दिए हैं जो लगान दे सकते हों, तभी यह संघर्ष वापस लिया गया। सरदार बल्लभभाई पटेल उन्हीं अनेकों नौजवानों में एक थे जो खेड़ा के किसान संघर्ष के दौरान गांधीजी के अनुयायी बने थे।

इन अनुभवों ने गांधीजी को जनता के घनिष्ठ संपर्क में ला दिया, और वे जीवन भर उनके हितों की सक्रिय रूप से रक्षा करते रहे। वे वास्तव में भारत के ऐसे पहले राष्ट्रवादी नेता थे जिन्होंने अपने जीवन और जीवन पद्धति को साधारण जनता के जीवन से एकाकार कर लिया था। जल्द ही ये गरीब भारत, राष्ट्रवादी भारत और विद्रोंही भारत के प्रतीक बन गए। गांधीजी को तीन दूसरे लक्ष्य भी जान से प्यारे थे। इनमें पहला था हिंदू मुसलमान एकता, दूसरा था छुआछूत विरोधी संघर्ष, और तीसरा था देश की स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को

सुधारना। अपने लक्ष्यों को उन्होंने एक बार संक्षेप में इस प्रकार रखा था। मैं ऐसे भारत के लिए काम करूँगा जिसमें सबसे निर्धन व्यक्ति भी इसे अपना देश समझे और इसके निर्माण में उकसी प्रभवी भूमिका हो एक ऐसा भारत जिसमें लोगों का कोई उच्च वर्ग और निम्न वर्ग न हो, जिसमें सभी समुदाय पूरे सद्भाव के साथ रहते हों. . . .इस प्रकार के भारत के छुआछूत नामक कोढ़ के लिए कोई जगह नहीं होगी. . . स्त्रियों को पुरूषों के बराबर अधिकार होंगे. . . मेरे सपनों का भारत नहीं।

गांधी जी एक धर्मप्राण हिंदू थे, मगर उनका सांस्कृतिक धार्मिक दृष्टिकोण संकुचित न होकर बहुत व्यापक था। उन्होंने लिखा है ''भारतीय **संस्कृति न तो पूरी तरह हिंदू है, न ही इस्लागी और न ही कोई और** संस्कृति। **यह सबका समन्वय है।''**[1] वे चाहते थे कि भारतीय अपनी संस्कृति में पूरी तरह ली हों मगर साथ ही दूसरी विश्व संस्कृतियों से जो कुछ अच्छे तत्व मिलते हों उन्हें स्वीकार करें। उन्होंने लिखा है–

**''मैं चाहता हूँ कि जितनी स्वतंत्रता के साथ संभव हो सभी देशों की संस्कृतियों की बयारें मेरे घर में से गुजरें। लेकिन इनमें से किसी बयार के आगे लड़खड़ा जाना मुझे मंजूर नहीं है। दूसरे जनगण के घर में किसी घुसपैठिए, किसी भिखारी या किसी दास की तरह रहना मुझे मंजूर नहीं है।''**

**रौलट कानून के विरूद्ध सत्याग्रह :**

दूसरे राष्ट्रवादियों की तरह गांधीजी को भी रौलट कानून से धक्का लगा। फरवरी 1919 में उन्होंने एक सत्याग्रह सभा बनाई जिसके सदस्यों ने इस कानून का पालन न करने तथा गिरफ्तारी और जेल जाने का सामना करने की शपथ ली। संघर्ष का यह एक नया रूप

---

1. वी. पी. कबाड़ी : इक्मोर्टल महात्मा

था। राष्ट्रवादी आंदोलन, चाहे नरमपंथियों के नेतृत्व में हुआ हो या नरमपंथियों के अभी तक आंदोलनों तक ही सीमित था। वड़ी सभाएं और प्रदर्शन, सरकार से सहयोग करने से इनकार, विदेशी वस्त्रों तथा स्कूलों का वहिष्कार, या व्यक्तिगत आतंकवादी कार्यवाही, अभी तक राजनीतिक कार्य के यही रूस राष्ट्रवादियों को ज्ञात थे। सत्याग्रह ने फौरन ही आंदोलन को एक नए और उच्चतर स्तर तक उठा दिया। अब मात्र आंदोलन करने तथा अपने संतोश और क्रोध को मौखिक रूप से अभिव्यक्त करने की जगह अव राष्ट्रवादी सक्रिय कार्य भी कर सकते थे।

इसके अलावा इस विधि को किसानों, दस्तकारों और शहरी गरीबों के राजनीतिक समर्थन पर अधिकाधिक निर्भर रहना था। गांधी जी ने राष्ट्रवादी कार्यकर्ताओं से गांवों में जाने का आग्रह किया। उन्होंने समझाया कि भारत वहीं बसता है। उन्होंने राष्ट्रवाद को अधिकाधिक साधारण जनता की ओर मोड़ा। खादी (यानी घर से सूत कातकर घर में बुना गया कपड़ा) इस रूपांतरण का प्रतीक थी और जल्द ही यह सभी राष्ट्रवादियों का लिबास बन गई। श्रम की महिमा और आत्मनिर्भरता का महत्व समझाने के लिए गांधीजी स्वयं रोज सूत कातते थे। उन्होंने कहा कि भारत की मुक्ति तभी संभव है जब जनता नींद से जाग उठे औश्र राजनीति में सक्रिय हो। जनता ने भी गांधीजी के आह्वान का जोरदार उत्तर दिया।

1919 में मार्च और अप्रैल महीनों में भारत में अभूतपूर्व राजनीतिक जागरण आया। लगभग पूरा देश एक नई शक्ति से भर उठा। हड़तालें काम रोको अभियान, जुलूस और प्रदर्शन होने लगे। हिंदू मुसलमान एकता के नारे हवाओं में गूंजने लगे। पूरे देश में बिजली की लहर दौड़ गई। भारतीय जनता अब विदेशी शासन के अपमान को और सहने को तैयार नहीं थी।

---

## जलियांवाला बाग का हत्याकांड :

सरकार इस जन आंदोलन को कुचल देने पर आमादा थी। बंबई, अहमदाबाद, कलकत्ता, दिल्ली तथा दूसरे नगरों में निहत्थे प्रदर्शनकारियों पर बार–बार लाठियों और गोलियों का प्रहार हुआ। गांधीजी ने 6 अप्रैल 1919 को एक शक्तिशाली हड़ताल का आह्वान किया। जनता ने अभूतपूर्व उत्साह से इसका अनुसरण किया। सरकार ने इस जन प्रतिरोध का सामना, खासकर पंजाब में दमन से करने का निश्चय किया। इस समय सरकार ने आधुनिक इतिहास का एक सबसे भंयकर राजनीतिक अपराध भी किया। पंजाब में अमृतसर में 13 अप्रैल 1919 को एक निहत्थी मगर भारी भीड़ अपने लोकप्रिय नेताओं डाक्टर सैफुद्दीन किचलू और डाक्टर सत्यपाल की गिरफ्तारी का विरोध करने के लिए जलियांवाला बाग में जमा हुई। अमृतसर के फौजी कमांडर जनरल डायर ने शहर की जनता को आतंक द्वारा वश में करने का निश्चय किया। जलियांवाला बाग बहुत बड़ा बाग था, मगर इसमें से निकलने का केवल एक रास्ता था, शेष तीन ओर से यह मकानों से घिरा था। डायर ने बाग को फौज द्वारा घेर लिया और निकास द्वार पर एक फौजी दस्ता खड़ा कर दिया। उसके बाद उसने अपने फौजियों को राइफलों और मशीनगनों द्वारा अंदर घिरी भीड़ पर गोली बरसाने को हुक्म दिया। वे तब तक गोली बरसाते रहे जब तक कि गोलियां खत्न न हो गई। हजारों लोग मरे और घायल हुए। इस हत्याकांड के बाद पूरे पंजाब में मार्शल ला लगा दिया गया और लोगों पर अत्यंत जंगली किस्म के अत्याचार ढाए गए। एक उदारवादी वकील शिवस्वामी अययर ने जिन्हें सरकार ने नाइट की उपाधि दी थी, पंजाब के अत्याचारों के बारे में लिखा है।

जलियांवाला बाग में लोगों को बिखरने का अवसर दिए बिना सैकड़ों निहत्थे लोगों का कत्ले आम गोलीबारी में घायल सैकड़ों लोगों की दशा के प्रति जनरल डायर की

बेरुखी जो लोग विखरकर भागने लगे थे उन पर मशीनगनों से गोलीबारी, लोगों पर सार्वजनिक रूप से कोड़े बरसाना, हजारों छात्रों को उपस्थिति जताने के लिए 16 मील दूर प्रतिदिन जाने का आदेश 500 छात्रों और प्रोफेसरों की गिरफ्तारी और नजरबंदी, 5 से 7 वर्ष के स्कूली बच्चों को भी झंडे की सलामी के लिए परेड में उपस्थित रहने के लिए बाधा करना. . . .एक विवाह मंडली पर कोड़ों की बारिश, डाक पर सेंसर, छः सप्ताहों तक बादशाही मस्जिद पर ताला, किसी ठोस कारण के बिना लोगों की गिरफ्तारी और नजरबंदी. . . इस्लामियां स्कूल के 6 सबसे बड़े बच्चों पर कोड़ों की मार, केवल इसलिए कि वे स्कूली बच्चे थे और बड़े बच्चे थे, गिरफ्तार लोगों की खुलेआम बंद रखने के लिए बड़े पिंजड़े का निर्माण, दंड के नए–नए रूपों का अविष्कार जैसे सड़क पर रेंगकर चलने के आदेश, कूदते हुए चलने के आदेश आदि जो नागरिक या सैनिक किसी भी कानून प्रणाली के लिए अज्ञात हैं, लोगों को एक ही बेड़ी में आपस में जकड़कर रखना और उन्हें खुली ट्रकों में 15–15 घंटों तक रखना, निहत्थे नागरिकों के खिलाफ हवाई जहाजों और लेबिस गनों तथा वैज्ञानिक युद्ध प्रणाली के नीवनतम तामझाम का उपयोग, लोगों को बंधक बनाना, गैरहाजिर लोगों का हाजिर कराने के लिए उनकी संपत्ति को जब्त और नष्ट करना, हिंदू मुस्लिम एकता के परिणाम जताने के लिए एक हिंदू और एक मुसलमान को एक ही बेड़ी में जकड़कर रखना, भारतीय घरों से पंखे हटाकर, यूरोपीयों को उपयोग के लिए दे देना, भारतीयों के सभी वाहनों को लेकर उपयोग के यूरोपीयों को देना. . . . . ये सब उस मार्शल ला प्रशासन की अनेक घटनाओं में से कुछ एक हैं जिसने पंजाब में आतंक राज कायम किया है तथा जनता को हिलाकर रख दिया है।[1]

पंजाब की घटनाएं जब लोगों को ज्ञात हुई तो पूरे देश में भय की एक लहर सी दौड़ गई। साम्राज्यवाद तथा विदेशी शासन जिस सभ्यता का दावा करते थे उसके पर्दे में छिपे

1. विपिन चन्द्रा : आधुनिक भारत पृ0 197

घिनौने चेहरे और बर्बरता का जीता जागता रूप लोगों ने देखा। जनता ने इस कष्ट का वर्णन महान कवि और मानवतावादी रचनाकार **रवींद्रनाथ** ठाकुर ने किया है जिन्होंने इसके विरोध में अपनी नाइट की उपाधि लौटा दी थी। उन्होंने घोषणा की कि **''वह समय आ गया है जब सम्मान के प्रतीक अपमान अपने बेमेल संदर्भ में हमारी शर्म को उजागर करते हैं और मैं , जहां तक मेरा सवाल है, सभी विशिष्ट उपाधियों से रहित होकर अपने उन देशवासियों के साथ खड़े होना चाहता हूं जो अपनी तथाकथित क्षुद्रता के कारण मानव जीवन के अयोग्य अपमान को सहने के लिए बाध्य हो सकते है।**

**खिलाफत और असहयोग आंदोलन (1919–22) :**

खिलाफत आंदोलन से राष्ट्रीय आंदोलन में एक नई धारा बही। हम देख चुके हैं कि शिक्षित मुसलमानों की नई पीढ़ियां तथा पारंपरिक मौलवियों और धर्मशास्त्रियों का एक भाग अधिकाधिक उग्रपंथी और राष्ट्रवादी बनते जा रहे थे। लखनऊ समझौते ने हिंदुओं और मुसलमानों की साझी राजनीति गतिविधियों के लिए पहले ही जमीन तैयार कर रखी थी। रौलट कानून विरोधी राष्ट्रीय आंदोलन ने समूची भारतीय जनता को एक समान प्रभावित किया था और हिंदू मुसलमान दोनों को राजनीतिक आंदोलन में ले आया था।[1]

उदाहरण के लिए, राजनीतिक गतिविधियों के क्षेत्र में हिंदू मुसलमान एकता की मिसाल दुनिया के सामने रखने के लिए मुसलमानों ने कट्टर आर्यसमाजी नेता स्वामी श्रद्धानंद को आमंत्रित किया था कि वे दिल्ली की जामा मस्जिद के मिंबर से अपना उपदेश दें। इसी तरह अमृतसर में सिखों ने अपने पवित्र स्थान स्वर्ण मंदिर की चाभियां एक मुसलमान नेता डा. किचलू को सौंप दी थीं। अमृतसर में यह राजनीतिक एकता सरकार के दमन के कारण थी। हिंदुओं और मुसलमानों को एक ही बेड़ियां पहनाई गई थीं, एक साथ जमीन पर रेंगकर चलने

---

1. आर. सी. अग्रवाल : भारत का संवैधानिक विकास एवं राष्ट्रीय आंदोलन

के आदेश दिए गए थे और एक साथ ही पानी पीने को कहा गया था जबकि एक हिंदू आम तौर पर किसी मुसलमान के हाथों से पानी नहीं पीता था। इस वातावरण में मुसलमानों के बीच राष्ट्रवादी प्रवृत्ति ने खिलाफत आंदोलन की शक्ल ले ली। ब्रिटेन तथा उसके सहयोगियों ने तुर्की की उस्मानियां सल्तनत के साथ जो व्यवहार किया था और जिस तरह उसके टुकड़े करके थ्रेस को हथिया लिया था, राजनीतिक चेतना प्राप्त मुसलमान उसके आलोचक थे। यह कार्य भूतपूर्व ब्रिटिश प्रधानमंत्री लायड जार्ज के वादे के विपरीत था कि "हम तुर्की को एशिया माइनर और प्रेस की उस समृद्ध और प्रसिद्ध भूमि से वंचित करने के लिए युद्ध नहीं कर रहे हैं जो नस्ली दृष्टि से मुख्य रूप से तुर्क हैं।" मुसलमानों का यह भी मत था कि तुर्की के सुलतान को अनेक लोग खलीफ अर्थात धार्मिक मामलों में मुसलमानों के प्रमुख मानते थे, और उनकी स्थिति पर आंच नही आनी चाहिए। शीघ्र ही अली भाइयों (मुहम्मद अली और शौकत अली), मौलाना आजाद, हकीम अजमल खान और हसरत मोहानी के नेतृत्व मे कए खिलाफत कमेटी गठित हो गई और देशव्यापी आंदोलन छेड़ दिया गया।

दिल्ली में नवम्बर 1919 में आयोजित अखिल भारतीय खिलाफत सम्मेलन ने फैसला किया कि अगर उनकी मांगे न मानी गई तो वे सरकार से सहयोग करा बंद कर देंगे। इस समय मुस्लिम लीग पर राष्ट्रवादियों का नेतृत्व था। उसने राजनीतिक प्रश्नों पर राष्ट्रीय कांग्रेस और उसके आंदोलन का पूरा–पूरा समर्थन किया। अपनी तरफ से लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी समेत तमाम कांग्रेसी नेताओं ने भी खिलाफत आंदोलन को हिंदू मुसलमान एकता स्थापित करने का मुसलमान जनता को राष्ट्रीय आंदोलन में लाने का सुनहरा अवसर जाना। वे समझते थे कि हिंदू मुसलमान सिख और ईसाई पूजीपति और मजदूर किसान और दस्तकार, महिलाएं और युवक विभिन्न क्षेत्रों के आदिवासी तथा अन्य लोग अर्थात भारतीय

संघर्ष करते हुए उसके अनुभव के द्वारा तथा विदेशी शासन को अपना विरोधी समझने के बाद ही राष्ट्रीय आंदोलन में आएंगे। गांधीजी ने खिलाफत आंदोलन को "हिंदुओं और मुसलमानों में एकता स्थापित करने का ऐसा अवसर जाना जो कि आगे सौ वर्षो तक नहीं मिलेगा।" उन्होंने 1920 के आरंभ में घोषणा की कि खिलाफत का प्रश्न सांविधानिक सुधारों तथा पंजाब के अत्याचारों से अधिक महत्वपूर्ण है। उन्होंने यह भी घोषणा की कि अगर तुर्की के साथ शांति संधि की शर्ते भारतीय मुसलमानों को संतुष्ट नहीं करतीं तो वे असहयोग आंदोलन छेडेंगे[1]। वास्तव में गांधीजी शीघ्र ही खिलाफत आंदोलन के एक नेता के रूप में उभरे।

इस बीच सरकार ने कानून को रद्द करने, पंजाब के अत्याचारों की भरपाई या राष्ट्रवादियों की स्वशासन की आकांक्षा को संतुष्ट करने से इनकार कर दिया था। जून 1920 में इलाहाबाद में सभी दलों का एक सम्मेलन हुआ जिसमें स्कूलों, कालेजों, और अदालतों के बहिष्कार का एक कार्यक्रम किया गया। खिलाफत आंदोलन ने 31 अगस्त, 1920 को एक असहयोग आंदोलन का आरंभ किया।

सितंबर 1920 में कलकत्ता में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन हुआ। कुछ ही सप्ताह पहले इसे एक भयानक नुकसान हुआ था जब 1 अगस्त को 64 वर्ष की आयु में लोकमान्य तिलक का निधन हो गया था। जल्द ही इस कमी को गांधी जी चितरंजन दास और मोतीलाल नेहरू ने पूरा कर दिया। कांग्रेस ने गांधीजी की इस योजना को स्वीकार कर लिया कि जब तक पंजाब तथा खिलाफत संबंधी अत्याचारों की भरपाई नहीं होती और स्वराज्य स्थापित नहीं होता सरकार से असहयोग किया जाए। लोगों से आग्रह किया गया कि वे सरकारी शिक्षा संस्थाओं, अदालतों और विधानमंडलों का बहिष्कार करें, विदेशी वस्त्रों का त्याग करें, सरकार से प्राप्त उपाधियां और सम्मान वापस करें, तथा हाथ से सूत कातकर और

1. डा. परमात्मा शरण : भारत का राष्ट्रीय आंदोलन

बुनकर खादी का इस्तेमाल करें। बाद में सरकारी नौकरी से इस्तीफा तथा कर चुकाने से इनकार करने को भी इस कार्यक्रम में शामिल कर लिया गया। फौरन ही कांग्रेस वालों ने चुनाव से नाम वापस ले लिए और जनता ने भी अधिकांशतः उसका बहिष्कार ही किया। सरकार तथा उसके कानूनों के इस अत्यंत शांतिपूर्ण उल्लंघन के इस निर्णय को दिसंबर 1920 में नागपुर में आयोजित कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में अनुमोदित भी कर दिया गया। गांधीजी ने नागपुर में घोषणा की कि "ब्रिटिश जनता यह बात चेत ले कि अगर वह न्याय नहीं करना चाहती तो साम्राज्य को नाष्ट करना प्रत्येक भारतीय का परम कर्तव्य होगा।" नागपुर अधिवेशन में कांग्रेस के संविधान में परिवर्तन किए गए। प्रांतीय कांग्रेस कमेटियों को अब भाषायी आधार पर पुनर्गठित किया गया। कांग्रेस का नेतृत्व अब 15 सदस्यों की कए वर्किंग कमेटी को सौपा गया जिसमें अध्यक्ष और सचिव शामिल थे। इससे कांग्रेस एक निरंतर विद्यमान राजनीतिक संगठन के रूप में काम करने लगी और उसके प्रस्तावों को लागू करने के लिए उसे एक उपकरण भी मिल गया। कांग्रेस का संगठन अब गांवों छोटे कस्बों और मुहल्लों तक भी फैलने वाला था। सदस्यता शुल्क घटाकर प्रति वर्ष चार आने (आज के 25 पैसे) कर दिया गया ताकि निर्धन ग्रामीण और नगर के निर्धन लोग भी उसके सदस्य बन सकें।

अब कांग्रेस का चरित्र बदल गया। वह विदेशी शासन से मुक्ति के राष्ट्रीय संघर्ष में जनता की संगठनकर्ता और नेतृत्वकर्ता बन गई। प्रसन्नता की एक लहर चारों ओर फैल गई। राजनीतिक स्वाधीनता भले ही बाद में आए, अब जनता ने गुलामी की मनोवृत्ति को त्यागना आरंभ कर दिया था। मानों कि भारत अब किसी और हवा में सांस ले रहा हो। उन दिनों का उल्लास और उत्साह कुछ विशेष ही था, क्योंकि अब सोया हुआ शेर उठने ही वाला

था। इसके अलावा हिंदू और मुसलमान कंधे से कधां मिलाकर आगे बढ़ रहे थे। साथ ही, कुछ पुराने नेताओ ने अब कांग्रेस छोड़ भी दी थी। राष्ट्रीय आंदोलन में जो नया मोड़ आया था, वह उन्हें पंसद न था। वे आंदोलन तथा राजनीतिक कार्यकलाप के उसी पुराने ढर्रे में विश्वास करते थे जो कानून की चारदीवारी का रत्ती भर भी उल्लंघन न करे। वे जनता के संगठन हड़तालों कामबंदियों सत्याग्रह कानूनशिकनी गिरफ्तारी और जुझारू संघर्ष के दूसरे रूपों के विरोध में थे। इस काल में जिन लोगो के कांग्रेस छोडी उनमें मुहम्मद अली जिन्ना, जी. एस. खपर्डे, विपिनचंद्र पाल, और एनी बेसेंट प्रमुख थे।

1921–22 में भारतीय जनता एक अभूतपूर्व हलचल के दौर से गुजरी। हजारों की संख्या में छात्रों ने सरकारी स्कूल कालेज छोड़कर राष्ट्रीय स्कूलों और कालेजों में प्रवेश ले लिया। यही समय था जब अलीगढ़ के जामिया मिल्लिया इस्लामिया (राष्ट्रीय मुस्लिम विश्वविद्यालय) बिहार, विद्यापीठ, काशी विद्यापीठ और गुजरात विद्यापीठ का जन्म हुआ। जामिया मिल्लिया बाद में दिल्ली चला गया। इन राष्ट्रीय कालेजों और विश्वविद्यालयों मे आचार्य नरेंद्र, डा. जाकि हुसैन, और लाला लाजपतराय जैसे विख्यात व्यक्ति शिक्षक का कार्य करते थे। सैकड़ों वकीलों ने अपनी मोटी कमाई वाली वकालतें छोड़ दीं। इनमें देशबंधु चितरंजन दास, मोतीलाल नेहरू, राजेंद्र प्रसाद, सैफुद्दीन किचलू, सी. राजगोपालाचारी, सरदार पटेल, टी. प्रकाशम और आसफ अली जैसे लोग शामिल थे। असहयोग आंदोलन चलाने के लिए तिलक स्वराज्य कोष स्थापित किया गया और छः माह के अंदर इसमें एक करोड़ रूपया जमा हो गया। स्त्रियों ने बहुत उत्साह दिखाया और अपने गहनों, जेवरों का खुलकर दान किया। विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार एक जन आंदोलन बन गया। पूरे देश में विदेशी वस्त्रों की बड़ी–बड़ी होलियां जलाई गई। खादी स्वतंत्रता का प्रतीक बन गई। जुलाई 1921 में एक

प्रस्ताव पारित करके खिलाफत आंदोलन ने घोषणा की कि कोई मुसलमान ब्रिटिश भारत की सेना में नहीं भरती होगा।[1] सितंबर में 'राजद्रोह' का आरोप लगाकर अली भाइयों को कैद कर लिया गया। गांधीजी ने फौरन आहवान किया कि इस प्रस्ताव को सैकड़ों सभाओं में पढ़कर सुनाया जाए। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के 50 सदस्यों ने ऐसी ही एक घोषणा की कि जो सरकार सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से भारत का उत्पीड़न कर रही है उसकी सेवा कोई भारतीय न करे। ऐसा ही एक बयान कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने भी जारी किया।

कांग्रेस ने अब आंदोलन को और ऊंचे स्तर तक ले जाने का फैसला किया। इसने हर एक प्रांतीय कांग्रेस कमेटी को अनुमति दी कि अगर उसकी राय में उस प्रांत की जनता तैयार हो तो वह नागरिक अवज्ञा आंदोलन या ब्रिटिश कानूनों के उल्लघंन का आंदोलन आरंभ कर सकती है, और इसमें करों का भुगतान रोकने का आंदोलन भी शामिल किया जा सकता है।

सरकार ने एक बार फिर दमन का सहारा लिया। तब तक कांग्रेस और खिलाफत स्वयंसेवक निचले स्तरों पर हिंदू और मुसलमान राजनीतिक कार्यकर्ताओं को एकताबद्ध करने के लिए साथ–साथ ड्रिल का आयोजन करने लगे थे। ऐसे सारे ड्रिल गैरकानूनी घोषित कर दिए गए। 1921 के अंत तक गांधीजी को छोड़कर सारे महत्वपूर्ण राष्ट्रवादी नेता तथा 3,000 दूसरे लोग जेलों में बंद किए जा चुके थे। नवम्बर 1921 में ब्रिटिश सिंहासन के उत्तराधिकारी, प्रिंस आफ वेल्स जब भारत भ्रमण पर आए तो उनका स्वागत बड़े बंड़े विरोध प्रदर्शनों द्वारा किया गया। सरकार ने उनसे निवेदन किया था कि जनता और राजा महाराजों मे वफादारी की भावना जगाने के लिए वे भारत की यात्रा पर आए। बंबई में एक प्रदर्शन को कुचलने का

---

1. विपिन चन्द्रा : आधुनिक भारत

प्रयास सरकार ने किया और इसमें 53 लोग मारे गए तथा लगभग 400 घायल हुए। दिसंबर 1921 में अहमदाबाद में कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन मे एक प्रस्ताव पारति किया गया। इस प्रस्ताव में कांग्रेस ने अपना ''यह दृढ़ मत दोहराया कि जब तक पंजाब और खिलाफत की गलतियों की भरपाई नहीं की जाती और स्वराज्य स्थापित नहीं होता. . . .वह पहले से भी अधिक जोरदार ढंग से अहिंसक असहयोग का आंदोलन जारी रखेगी।'' इस प्रस्ताव में सभी भारतीयों और खासकर छात्रों से आग्रह किया गया था कि वे ''स्वयंसेवक संगठनों में भरती होकर चुपचाप और बिना किसी प्रदर्शन के अपनी गिरफ्तारी दें। ऐसे सभी सत्याग्रहियों को ''मनसा–वाचा–कर्मणा अहिंसक रहने'' हिंदुओं, मुसलमानों, सिखों, पारसियों, ईसाईयों और यहूदियों में एकता की भावना मजबूत बनाने तथा स्वदेशी का व्यवहार करने और केवल खादी पहनने की शपथ लेनी पड़ती थी। हिंदू स्वयंसेवकों को सक्रिय रूप से छुआछूत से लड़ने की शपथ भी लेनी होती थी। प्रस्ताव में जनता ने यह भी अहिंसक रहकर व्यक्तिगत या सामूहिक अवज्ञा आंदोलन चलाए।

लोग अब संघर्ष के अगले आह्वान का बैचेनी से इंतजार कर रहे थे। आंदोलन भी अब जनता में गहरी जड़ें जमा चुका था। संयुक्त प्रांत तथा बंगाल के हजारों किसानों ने असहयोग के आह्वान का पालन किया था। संयुक्त प्रांत के कुछ भांगों में बंटाईदारों ने जमींदारों की अनुचित मांगे पूरी करने भ्रष्ट महंतों का कब्जा खत्म करने के लिए सिख अकाली आंदोलन नामक एक अहिंसक आंदोलन चला रहे थे। असम में चाय बागानों के मजदूरों ने हड़ताल की। मिदनापुर के किसानों ने यूनियन बोर्ड के कर देने से इनकार कर दिया था। चिराला की पूरी जनता नगरपालिका के कर चुकाने से इनकार करके शहर छोड़ चुकी थी। पेडन्नापाडु में गांवों के सारे अधिकारियों ने इस्तीफा दे दिया था। डुग्गीराला गोपलाकृष्णय्या

के नेतृत्व में गुंटूर जिले में एक शक्तिशाली आंदोलन उठ खड़ा हुआ था। उत्तरी केरल के मलाबार क्षेत्र में भोपला कहे जाने वाले मुस्लिम किसानों ने एक शक्तिशाली जमींदार विरोधी आंदोलन छेड़ रखा था। फरवरी 1919 में वायसराय ने विदेश सचिव को पत्र लिखा कि "शहरों के निम्न वर्गो पर असहयोग आंदोलन का गहरा प्रभाव पड़ा है. . . . कुछ क्षेत्रों में, खासकर असम घाटी के कुछ भागों, संयुक्त प्रांत, बिहार, उडीसा और बंगाल में किसान भी प्रभावित हुए हैं।" 1 फरवरी, 1922 को महात्मा गांधी ने घोषणा की कि अगर सात दिनों के अंदर राजनीतिक बंदी रिया नहीं किए जाते और प्रेस पर सरकार का नियंत्रण समाप्त नहीं होता तो वे करों की गैर अदायगी समेत एक सामूहिक नागरिक अवज्ञा आंदोलन छेड़ेंगे।

लेकिन संघर्ष की यह लहर शीघ्र ही उतरने लगी। संयुक्त प्रांत के गोरखपुर जिले में चौरी चौरा नामक गांव में 3,000 किसानों के एक काग्रेसी जुलूस पर पुलिस ने गोली चलाई। क्रुद्ध भीड़ ने पुलिस थाने पर हमला करके उसमें आग लगा दी जिससे 22 पुलिसकर्मी मारे गए। इसके पहले भी देश के विभिन्न भागों में भीड़ द्वारा हिंसा की कुछ घटनाएं हो चुकी थीं। गांधीजी को भय था कि जन उत्साह और जोश के इस वातावरण में आंदोलन असानी से एक हिंसक मोड़ ले सकता है। उन्हें पूरा विश्वास था कि राष्ट्रवादी कार्यकर्ता अभी भी अहिंसा के पाठ को समझ और व्यवहार में अपना नहीं सके हैं और यह समझ न हो तो नागरिक अवज्ञा आंदोलन सफल नहीं हो सकता। हिंसा से उनका कोई संबंध न था, इस बात के अलावा शायद उन्हें यह भी विश्वास था कि अंग्रेज आसानी से किसी भी हिंसक आंदोलन को कुचल सकते हैं, क्योंकि जनता में भारी सरकारी दमन के प्रतिरोध की शक्ति अभी भी विकसित नहीं हो सकी थी। इसलिए उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन को रोक देने का फैसला किया।[1] कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने 12 फरवरी को गुजरात के बारडोली नामक स्थान पर अपनी

---

1. विपिन चन्द्रा : आधुनिक भारत पृ0 202

मीटिंग की और एक प्रस्ताव द्वारा उन सभी गतिविधियों पर रोक लगा दी जिनसे कानून का उल्लंघन हो सकता था। उसने कांग्रेसजन से आग्रह किया कि वे अपना समय चरखा को लोकप्रिय बनाने, राष्ट्रीय विद्यालय चलाने, छुआछूत मिटाने तथा हिंदू मुसलमान एकता को प्रोत्साहित करने जैसे रचनात्मक कार्यो में लगाएं।

बारडोली के प्रस्ताव ने पूरे देश को सकते में डाल दिया। आश्चर्यचकित राष्ट्रवादियों में इसकी मिली–जुली प्रतिक्रिया हुई। कुछ को तो गांधीजी में पूरी श्रद्धा थी और उन्हें विश्वास था कि आंदोलन पर यह रोक संघर्ष की गांधीवादी रणनीति का ही एक भाग है। परंतु दूसरों ने खासकर युवक राष्ट्रवादियों ने आंदोलन रोके जाने के निर्णय का विरोध किया। सुभाषचंद्र बोस कांग्रेस के एक अत्यंत लोकप्रिय युवक नेता थे, उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है–

**"जिस समय जनता का उत्साह अपनी चरम सीमा को छूने वाला था, उस समय पीछे हट जाने का आदेश देना राष्ट्रीय अनर्थ से कम नहीं था। महात्माजी के प्रमुख सहयोगी देशबंधु दास, पंडित मोतीलाल नेहरू और लाला लाजपतराय, जो सब जेलों में थे, भी इस सामूहिक खिन्नता में भागीदार थे। मैं उस समय देशबंधु के साथ था और मैंने देखा कि जिस तरह महात्मा गांधी बार–बार गोलमाल कर रहे थे, उस पर वे क्रोध और दुख से आपे से बाहर हो रहे थे।"[1]**

जवाहर लाल नेहरू जैसे दूसरे युवक नेताओं ने भी ऐसी ही प्रतिक्रिया व्यक्त की। लेकिन जनता और नेतागण, दोनों को गांधीजी में आस्था थी और वे सार्वजनिक रूप से उनके आदेश का उल्लंघन नहीं करना चाहते थे। खुलकर विरोध किए बिना उन्होंने उनके फैसले को स्वीकार कर लिया। इस तरह पहला असहयोग और नागरिक अवज्ञा (सिविल डिओबीडिएस) आंदोलन लगभग समाप्त ही हो गया।

---

1. सुभाष चन्द्र बोस : द इंडियन स्ट्रगल

इस नाटक का आखिरी अंक यह था कि स्थिति का पूरा लाभ उठाकर सरकार ने तीखा प्रहार करने का निश्चय किया। उसने 10 मार्च, 1922 को महात्मा गांधी को गिरफ्तार करके उन पर सरकार के प्रति असंतोष भड़काने का आरोप लगाया। गांधीजी को छः वर्षो की कैद की सजा सुनाई गई। अदालत में उन्होंने जो बयान दिया उसके कारण यह मुकदमा ऐतिहासिक बन गया। अभियोग पक्ष के आरोपों को स्वीकार करते हुए उनहोंने अदालत से निवेदन किया कि **''कानून में जिस बात को स्वेच्छापूर्वक किया गया अपराध समझा जाता है और जो मुझे किसी नागरिक का परम कर्तव्य लगता है, उसके लिए मुझे जितनी कड़ी सजा दी जा सकती है, दी जाए।''** उन्होंने ब्रिटिश शासन के एक समर्थक से उसके एक कट्टर आलोचक के रूप में अपने रूपांतरण की विस्तार से व्याख्या की और कहा—

''अनिच्छापूर्वक मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से भारत पहले जितना असहाय था, उससे उसे कहीं अधिक असहाय ब्रिटेन के साथ संबंध ने बना दिया है। निहत्थे भारत के पास किसी भी आक्रमण के प्रतिरोध की शक्ति नहीं है। वह इतना निर्धन हो चुका है कि अकालों के प्रतिरोध के लिए उसमें शायद ही कोई शक्ति बची है। नगरवासियों को शायद ही पता हो कि भारत की आधे पेट खाकर जीवित रहने वाली जनता किस तरह जीवनहीन होती जा रही है। शायद ही उन्हें पता हो कि जो क्षुद्र आराम उन्हें प्राप्त है, वह उस काम की दलाली है जो वे विदेशी शोषकों के लिए करते हैं और यह कि ये मुनाफा और दलाली जनता से चूसी जाती है। शायद ही उन्हें महसूस होता हो कि ब्रिटिश भारत में कानून द्वारा स्थापित सरकार जनता के शोषण के लिए चलाई जाती है। कोई भी लफ्फाजी आंकड़ों का कोई भी खल उस साक्ष्य को नहीं मिटा सकते जो अनेक ग्रामों मे

हड्डियों के ढांचों के रूप में दिखाई देता है। मेरे विचार में कानून के प्रशासन को चेतन या अचेतन रूप से शोषक के लाभार्थ भ्रष्ट किया जा रहा है। इससे भी बड़ा दुर्भाग्य यह है कि अंग्रेजों तथा देश के प्रशासन में लगे उनके भारतीय सहयोगियों को यह नहीं मालूम है कि वे वही अपराध कर रहे हैं जिसका वर्णन करने का मैंने प्रयास किया हैं मुझे विश्वास है कि अनेक अंग्रेज और भारतीय अधिकारी ईमानदारी के साथ यह मानते है कि वे दुनिया की सबसे अच्छी प्रणालियों में से एक को यहां लागू कर रहे हैं, और यह कि भारत धीमी गति से ही सही, निरंतर प्रगति कर रहा है। वे यह नहीं जानते कि एक ओर आंतकवाद की एक सूक्ष्म पर प्रभावशाली प्रणाली और शक्ति के संगठित प्रदर्शन और दूसरी ओर जबावी आक्रमण या आत्मरक्षा की सारी शक्तियों से (भारतीयों के) वंचित कर दिए जाने के कारण जनता को शक्तिहीन बना दिया है तथा उनमें अनुकरण की आदत पैदा कर दी है।"[1] निष्कर्ष रूप में गांधीजी ने यह मत व्यक्त किया कि "बुराई के साथ असहयोग उतना ही पुनीत कर्तव्य है जितना कि भलाई के साथ सहयोग।" न्यायाधीश ने कहा कि वह गांधीजी को वही दंड दे रहा है जो 1908 में लोकमान्य तिलक को दिया गया था।

असहयोग आंदोलन में खिलाफत के आंदोलन की एक महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसके कारण नगरों के मुसलमान राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल हुए और इस तरह देश में उन दिनों राष्ट्रवादी उत्साह तथा उल्लास का जो वातावरण था उसे बनाने में इ सका भी एक हद तक योगदान था। देखने में असहयोग और नागरिक अवज्ञा तो असफल रहे थे, मगर इसके कारण राष्ट्रीय आंदोलन अनेक अर्थो में और मजबूत हुआ था। राष्ट्रीय भावना और आंदोलन अब देश के दूर दराज के स्थानों तक पहुंच चुके थे। लाखों लाख किसान, दस्तकार और शहरी गरीब राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल हुए थे। भारतीय समाज के सभी वर्गों का राजनीतिकरण

1. विपिन चन्द्रा : आधुनिक भारत पृ0 209

तथा सक्रियता ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को क्रांतिकारी चरित्र प्रदान किया।

असहयोग आंदोलन का एक प्रमुख परिणाम यह हुआ कि भारतीय जनता के मन से भय की भावना उड़ गई। भारत में ब्रिटिश सत्ता की हैवानी ताकत अब उनके लिए डर का कारण न रही। जनता में ऐसा बेपनाह आत्मविश्वास और आत्मसम्मान जागा जो किसी भी हार या धक्के से नष्ट न हो। इसे गांधीजी ने इस घोषणा द्वारा व्यक्त किया कि "1920 में जो संघर्ष आरंभ हुआ वह एक समझौता विहीन संघर्ष है चाहे वह एक माह चले या एक साल, या कई माह या कई साल।"

दिसंबर 1922 में दास और मोतीलाल नेहरू ने कांग्रेस खिलाफत स्वराज्य पार्टी की स्थापना की। इसके अध्यक्ष दास थे और मोतीलाल नेहरू इसके सचिवों में से एक थे। नई पार्टी को कांग्रेस के अंदर ही एक समूह के रूप में काम करना था। इसने कांग्रेस के कार्यक्रम को ही स्वीकार किया, मगर एक बात को छोड़कर कि यह पार्टी कौंसिल के चुनावों में भाग लेगी।

स्वराज्यवादियों तथा "अपरिवर्तनवादियों" के बीच अब एक तीखा राजनीतिक विवाद उठ खड़ा हुआ। गांधीजी इस बीच स्वास्थ्य संबंधी आधार पर 5 फरवरी 1924 को रिहा कर दिए गए थे, मगर वे भी इनमें एकता कायम करने में असफल रहे। लेकिन दोनों ही पक्ष सूरत में 1907 में हुए विभाजन के कड़वे अनुभव को दोहराने से बचना चाहते थे। गांधीजी की सलाह पर दोनों समूहों ने कांग्रेस में ही रहकर अलग–अलग ढंग से काम करने का फैसला किया।

स्वाराज्यवादियों को तैयारी के लिए बहुत कम समय मिला था, मगर नवम्बर 1923 के चुनावों में उन्हें अच्छी सफलता मिली। केंद्रीय धारा सभा की चुनाव से भरी जाने वाली 101

सीटों में से 42 उन्होंने जीत लीं। दूसरे भारतीय समूहों के सहयोग से उन्होंने केंद्रीय धरा सभा में तथा अनेक प्रांतीय परिषदों में सरकार को बार–बार हराया। स्वशासन, नागरिक स्वाधीनताओं और औद्योगिक विकास के प्रश्नों पर अपने प्रभावशाली भाषणों के द्वारा उन्होंने आंदोलन चलाया। मार्च 1925 में एक प्रमुख राष्ट्रवादी नेता विट्ठलभाई पटेल को केंद्रीय धरा सभा का अध्यक्ष (स्पीकर) चुनवाने में भी वे सफल रहे। जिस समय राष्ट्रीय आंदोलन फिर से शक्ति जुटाने में लगा था ऐसे समय में उन्होंने राजनीतिक शून्य को भरा। उन्होंने 1919 के सुधार कानून के खोखलेपन को भी उजागर किया। लेकिन वे भारत की निरंकुश सरकार की नितियां बदलवाने में असफल रहे, और पहले मार्च 1926 और फिर जनवरी 1930 में उन्हें केंद्रीय धारा सभा का बहिष्कार करना पड़ा।[1]

इस बीच "अपवर्तनवादी" शांति के साथ रचनात्मक कार्यो में लगे रहे। इस कार्य के प्रतीक रूप में पूरे देश में सैकड़ों आश्रम स्थापित हुए जिनमें युवा स्त्री पुरुष चरखा और खादी को प्रोत्साहित करते थे तथा निचली जातियों और आदिवासी जनता के बीच काम करते थे। ऐसे सैकड़ों राष्ट्रीय स्कूल और कालेज स्थापित हुए जिनमें युवक युवतियों को उपनिवेश विरोधी विचारधारा में प्रशिक्षित किया जाता था। इसके अलावा रचनात्मक कार्य करने वालों ने नागरिक अवज्ञा आंदोलनों के संगठन कर्ताओं के रूप में उसकी रीढ़ की हड्डी का काम किया।

## नई शक्तियों का अविर्भाव :

वर्ष 1927 में राष्ट्रीय आंदोलन में फिर से शक्ति पाने के अनेक संकेत देखे गए। इसी वर्ष समाजवाद की नई प्रवृत्ति का भी उदय हुआ। मार्क्सवाद और दूसरे समाजवादी विचार बहुत तेजी से फैले। राजनीतिक दृष्टि से इस शक्ति की अभिव्यक्ति कांग्रेस के अंदर

1. पुखराज जैन : भारत का राष्ट्रीय आंदोलन

एक वामपंथ के उदय के रूप में हुई। इस नई प्रवृत्ति के नेता जवाहर लाल नेहरू और सुभाष चंद्र बोस थे। इस वामपंथ ने अपना ध्यान साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष तक ही सीमित नहीं रखा। साथ ही साथ उसने पूंजीपतियों और जमींदारों के आंतरिक वर्गीय शोषण का सवाल भी उठाया।

भारत के नौजवान सक्रिय हो रहे थे। पूरे देश में नौजवान सभाएं बन रही थीं और छात्रों के सम्मेलन हो रहे थे। पहला अखिल बंगाल छात्र सम्मेलन अगस्त 1928 में जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में हुआ। इसके बाद देश में अनेक दूसरे छात्र संगठन बने तथा सैकड़ों छात्र युवा सम्मेलन आयोजित किए गए। इसके अलावा भारत के युवा राष्टवादी धीरे धीरे समाजवाद की तरफ आकर्षित होने लगे और देश जिस राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक बुराईयों से पीड़ित था, उनके लिए दूरगामी हल सुझाने लगे। उन्होंने पूर्ण स्वाधीनता का कार्यक्रम भी सामने रखा तथा उसे लोकप्रिय बनाया। तीसरे, देश में समाजवादी और कम्युनिष्ट गुटों की स्थापना हुई। रूसी क्रांति की विख्यात घटना ने अनेक युवा राष्ट्रवादियों को आकर्षित किया था। उनमें से अनेक गांधीवादी राजनीतिक विचारों और कार्यक्रमों से असंतुष्ट थे। वे मार्गदर्शन पाने के लिए समावादी विचारधारा की ओर मुड़े मानवेंद्र नाथ राय कम्युनिष्ट इंटरनेशनल के नेतृत्व वर्ग में चुने गए। इसके लिए चुने जाने वाले वे पहले भारतीय थे। 1924 में सरकार ने मुजफ्फर अहमद और श्रीपाद अमृत डांगे को गिरफ्तार करके उन पर कम्युनिष्ट विचारों के प्रचार का आरोप लगाया, और उन्हें तथा कुछ और लोगों को लेकर कानपुर षड्यंत्र का मुकदमा चलाया। 1925 में कम्युनिष्ट पार्टी की स्थापना हुई। इसके अलावा देश के अनेक भारतीयों मजदूर किसान पार्टियां बनीं। इन पार्टियों के समूहों ने मार्क्सवादी और कम्युनिष्ट विचारों का प्रचार किया। लेकिन साथ ही वे लोग राष्ट्रीय आंदोलन और राष्ट्रीय कांग्रेस के अभिन्न अंग भी थे।

---

## क्रान्तिकारी आन्दोलन

इस नई लहरका एक और संकेत क्रांतिकारियों के आंदोलन की गतिविधियों में देखने को मिला। अब यह आंदोलन भी समाजवाद की ओर झुक रहा था। प्रथम असहयोग आंदोलन की असफलता के कारण रूका हुआ क्रांतिकारी आंदोलन फिर से उठ खड़ा हुआ था। एक अखिल भारतीय सम्मेलन के बाद अक्टूबर 1924 में सशस्त्र क्रांति के लिये संगठन के उद्देश्य से हिंदुस्तान प्रजातंत्र संघ की स्थापना हुई। सरकार ने इस पर एक कड़ा प्रहार किया। क्रांतिकारी युवकों को बड़ी संख्या में गिरफ्तार करके उन पर काकोरी षड्‌यंत्र केस (1925) नामक मुकदमा चलाया गया। सत्रह लोगों की लंबी लंबी जेल की सजाएं हुईं, चार को आजीवन कारावास का दंड मिला, तथा रामप्रसाद विस्मिल और अशफाकुल्लाह समेत चार लोगों को फांसी दे दी गई। क्रांतिकारी जल्द ही समाजवादी विचारों के प्रभाव में आ गए, और 1928 में चंद्रशेखर आजाद के नेतृत्व में उन्होंने अपने संगठन का नाम बदलकर हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ (हिंसप्रस) कर दिया।

वे धीरे–धीरे व्यक्तिगत वीरता के कामों और हिंसात्मक गतिविधियों से दूर हटने लगे। लेकिन 30 अक्टूबर 1928 को साइमन कमीशन विरोधी एक प्रदर्शन पर पुलिस के बर्बर लाठी चार्ज के कारण एक आकस्मिक परिवर्तन आया। इसमें लाठियों की चोट खाकर पंजाब के महान नेता लाला लाजपतराय शहीद हो गए। युवक इससे कुद्ध हो उठे और 17 दिसंबर 1928 को भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद और राजगुरू ने लाठी चार्ज का नेतृत्व करने वाले ब्रिटिश पुलिस अधिकारी सांडर्स को गालियों से भून दिया।[1]

हिंसप्रस के नेताओं ने यह भी निर्णय किया कि अपने बदले हुए राजनीतिक उद्देश्यों तथा जन क्रांति की आवश्यकता के बारे में जनता को बतलाएं। परिणामस्वरूप 8

---

1. आचार्य बालशास्त्री हरदास : आर्म्स स्ट्रगल फार फ्रीडम

अप्रैल 1929 को भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने केंद्रीय धारा सभा में एक बम फेंका। बम से किसी को नुकसान नहीं पहुंचा, उसे जानबूझकर ऐसा बनाया गया था कि किसी को चोट न आए। इस काम को उद्देश्य किसी की हत्या करना नहीं था, बल्कि आतंकवादियों के एक पर्चे के अनुसार ''बहरों को सुनना'' था। भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त चाहते तो बम फेंकने के बाद आसानी से भाग निकलते, मगर उन्होंने जान बूझकर अपने को गिरफ्तार कराया क्योंकि वे क्रांतिकारी प्रचार के लिए अदालत का एक मंच के रूप में उपयोग करना चाहते थे।

बंगाल में भी क्रांतिकारी आंतकवाद की गतिविधियां एक बार फिर उभरीं। अप्रैल 1930 में चटगांव के सरकारी शस्त्रागार पर क्रांतिकारियों ने योजनाबद्ध ढंग से एक बड़ा छापा मारा। इसका नेतृत्व मास्टर सूर्यसेन कर रहे थे। अलोकप्रिय सरकारी अधिकारियों पर हुए हमलों में यह पहला हमला था। बंगाल के क्रांतिकारी आंदोलन की एक उल्लेखनीय विशेषता उसमें युवतियों की भागीदारी थी। चटगांव के क्रांतिकारी आंदोलन के विकास के सूचक थे। उनका काम व्यक्तिगत नहीं सामूहिक था और उसका उद्देश्य औपनिवेशिक शासन के अंगों पर प्रहार करना था।

सरकार ने क्रांतिकारियों पर एक तीखा प्रहार किया। उनमें से अनेकों गिरफ्तार कर लिए गए और उन पर अनेकों प्रसिद्ध मुकदमें चलाए गए। भगतसिंह तथा कुछ और लोगों पर सांडर्स की हत्या का मुकदमा भी चला। इन युवक क्रांतिकारियों ने अदालतों में दिए गए अपने बयानों से तथा अपने निर्भीक और अवज्ञापूर्ण व्यवहार से जनता का दिल जीत लिया। उनके बचाव के लिए कांग्रेसी नेता आगे आए जो वैसे अहिंसा के समर्थक थे। जेलों की अमानवीय परिस्थितियों के विरोध में उनकी भूख हड़तालें खास तौर पर प्रेरणाप्रद थीं।

राजनीतिक बंदियों के रूप में उन्होंने जेलों में अपने साथ सम्मानित तथा सुसंस्कृत व्यवहार किए जाने की मांग की। ऐसी ही एक भूख हड़ताल में 63 दिनों की ऐतिहासिक भूख हड़ताल में 63 दिनों की ऐतिहासिक भूख हड़ताल के बाद एक दुबले पतले युवक क्रांतिकारी जतीनदास शहीद हुए। जनता के देशव्यापी विरोध के बावजूद भगतसिंह सुखदेव और राजगुरू को 23 मार्च 1931 को फांसी दे दी गई।[1] फांसी से कुछ दिन पहले जेल सुपरिटेंडेंट को लिखे गए एक पत्र में इन तीन क्रांतिकारियों ने कहा था "बहुत जल्द ही अंतिम संघर्ष की दुंदभि बजेगी। इसका परिणाम निर्णायक होगा। हमने इस संघर्ष में भाग लिया है और हमें इस पर गर्व है।"

क्रांतिकारी आतंकवाद का आंदोलन बहुत जल्द समाप्त हो गया, हालांकि इक्की दुक्की घटनाएं अनेक वर्षो तक जारी रहीं। चंद्रशेखर आजाद 27 फरवरी 1931 को इलाहबाद के एक पार्क में पुलिस से मुकाबला करते हुए मारे गए। बाद में इस पार्क का नाम आजाद पार्क रखा गया। सूर्यसेन फरवरी 1933 में गिरफ्तार कर लिए गए और कुछ समय बाद उन्हें फांसी दे दी गई। सैकड़ों दूसरे क्रांतिकारी गिरफ्तार कर लिए गए और उन्हें लंबी लंबी सजाएं दी गई। इनमें से अनेकों को अडमान के सेलुलर जेल भेज दिया गया। इस तरह तीसरे दशक के अंत तक एक नई राजनीतिक परिस्थिति उभरने लगी थी।

**साइमन कमीशन का बहिष्कार :**

आंदोलन के इस नए चरण को बल तब मिला, जब नवम्बर 1927 में ब्रिटिश सरकार ने इंडियन स्टेट्यूटरी कमीशन का गठन किया, जिसे आम तौर पर साइमन कमीशन कहा जाता है। जो इसके अध्यक्ष थे।. इसका उद्देश्य आगे सांविधानिक सुधार के प्रश्न पर विचार करना था। इस कमीशन के सभी सदस्य अंग्रेज थे। सभी वर्गो के भारतीयों ने इस

---

1. मनमथ नाथ गुप्त : क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास

घोषणा का विरोध किया। इस बात पर उन्हें सबसे अधिक क्रोध था कि कमीशन में एक भी भारतीय को नहीं रखा गया था और इसके पीछे यह धारणा काम कर रही थी कि स्वशासन के लिए भारतीयों की योग्यता अयोग्यता का फैसला विदेशी करेंगे। दूसरे शब्दो में, सरकार के इस काम को आत्म निर्णय के सिद्धांत का उल्लंघन समझा गया तथा ऐसा माना गया कि भारतीयों के आत्मसम्मान को जानबूझ कर चोट पहुंचाई गई है। 1927 के कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन की अध्यक्षता डा. अंसारी साहब कर रहे थे, उसमें राष्ट्रीय कांग्रेस ने "हर कदम पर और हर रूप में इस कमीशन का बहिष्कार का निर्णय किया।" मुस्लिम लीग और हिंदू महासभा ने भी कांग्रेस के फैसले का समर्थन किया। वास्तव में अस्थायी तौर पर ही सही, साइमन कमीशन ने देश के सभी वर्गो और दलों को एक बार फिर एकताबद्ध का दिया। राष्टवादियों के साथ एकजुटता जतलाने के लिए मुस्लिम लीग ने मिले जुले चुनाव मंडलों के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया, इस शर्त के साथ कि मुसलमानों के लिए कुछ सीटें आरक्षित रखी जाएं। सभी महत्वपूर्ण भारतीय नेताओं और दलों ने परस्पर एकजुट होकर तथा सांविधानिक सुधारों को एक वैकल्पिक योजना बनाकर साइमन कमीशन की चुनौती का जबाव देने का प्रयास किया। प्रमुख राजनीतिक कार्यकर्ताओं के दर्जनों सम्मेलन और साझी बैंठकें आयोजित की गई। इसका परिणाम नेहरू रिपोर्ट के रूप में सामने आया जिसके प्रमुख निर्माता मोतीलाल नेहरू थे। इसे अगस्त 1928 में अंतिम रूप दिया गया। दुर्भाग्य से कलकत्ता में दिसंबर 1928 में आयोजित सर्वदलीय सम्मेलन रिपोर्ट को स्वीकार कर सका। मुस्लिम लीग, हिंदू महासभा और सिख लीग के कुछ सांप्रदायिक रूझान वाले नेताओं ने इसे लेकर आपत्तियां की। इस तरह सांप्रदायिक दलों ने राष्ट्रीय एकता का दरवाजा बंद कर दिया। इसके बाद निरंतर सांप्रदायिकता का विकास हुआ।

---

सर्वदलीय सम्मेलन की कार्यवाही से कहीं बहुत अधिक महत्वपूर्ण साइमन की कार्यवाही से कहीं बहुत अधिक महत्वपूर्ण साइमन कमीशन के विरोध में जनता का उभार था। कमीशन के भारत पहुंचने पर एक शक्तिशाली राष्ट्रव्यापी विरोध आंदोलन उठ खड़ा हुआ और राष्ट्रवादी उत्साह तथा एकता नई ऊंचाइयों तक पहुंची।[1]

3 फरवरी को कमीशन के बंबई पहुंचने पर एक अखिल भारतीय हड़ताल की गई। कमीशन जहां–जहां भी गया, वहीं हड़तालों और काले झंडे दिखाकर तथा "साइमन, वापस जाओ" के नारे के साथ उसका स्वागत किया गया इस अवसर पर जनता के विरोध को कुचलने के लिए सरकार ने निर्मम दमन तथा पुलिस कार्यवाहियों का सहारा लिया।

## पूर्ण स्वराज्यका लक्ष्य एवं सविनय अवज्ञा आंदोलन

जनता की इस नई भावना की जल्द ही राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपना लिया। गांधीजी सक्रिय राजनीति में वापस लौट आए और दिसंबर 1928 में कांग्रेस के कलकत्ता सम्मेलन में शामिल हुए। कांग्रेस का पहला काम जुझारू वामपंथ से मेल मिलाप करना था। 1929 के ऐतिहासिक लाहौर अधिवेशन में जवाहर लाल नेहरू को कांग्रेस का अध्यक्ष बनया गया। इस घटना का एक रोमानी पहलु भी था। मोतीलाल नेहरू 1928 में कांग्रेस के अध्यक्ष थे और राष्ट्रीय आंदोलन के अधिकारिक प्रमुख के रूप में उनका स्थान अब उनके पुत्र ने ले लिया था। इस तरह आधुनिक इतिहास में एक विशिष्ट परिवार की विजय हुई।

कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में इस नई जुझारू भावना को आवाज मिली। इस अधिवेशन में पारित एक प्रस्ताव ने पूर्ण स्वराज्य को कांग्रेस का उद्देश्य घोषित किया। 31 दिसंबर 1929 की स्वाधीनता का नया–नया स्वीकृत तिरंगा झंडा लहराया गया। 26 जनवरी 1930 को पहला स्वाधीनता दिवस घोषित किया गया। उसके बाद यह दिवस हर साल मनाया

1. विपिन चन्द्रा : इंडियन स्ट्रगल फार फ्रीडम

जाने लगा, जब लोक यह शपथ लेते थे कि ब्रिटिश शासन की "अधीनता अब और आगे स्वीकार करना मानवता और ईश्वर के प्रति अपराध" होगा। इस अधिवेशन ने एक नागरिक अवज्ञा आंदोलन भी छेडने की घोषणा की। लेकिन इसने संघर्ष का कोई कार्यक्रम नहीं तैयार किया। यह काम महात्मा गांधी पर छोड़ दिया गया और पूरे कांग्रेस संगठन को उनकी आज्ञा के अधीन कर दिया गया। गांधीजी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आंदोलन एक बार फिर सरकार के मुकाबले खड़ा हुआ। देश अब एक बार फिर आशा, उल्लास और मुक्त होने की दृढ़ भावना से घर उठा।

<u>सविनय अवज्ञा आंदोलन</u> :

दूसरा नागरिक अवज्ञा आंदोलन 12 मार्च 1930 को गांधीजी के प्रसिद्ध दांडी मार्च के साथ आरंभ हुआ। इस दिन 78 चुने हुए अनुयायियों को साथ लेकर गांधीजी साबरमती आश्रम से चले, और लगभग 375 किलोमीटर दूर गुजरात के समुद्र तट पर स्थित दांडी गांव पहुंचे। उनकी यात्रा, उनके भाषणों तथा जनता पर उनके प्रभाव की रिपोर्ट प्रतिदिन समाचार पत्रों में छपती रहीं। रास्ते में पड़ने वाले गांवों के सैकड़ों अधिकारियों ने अपने पदों से त्यागपत्र दे दिए। गांधी जी 6 अप्रैल को दांडी पहुंचे, समुद्र तट से मुट्ठी भर नमक उठाया, और इस प्रकार नमक कानून को तोड़ा। यह इस बात का प्रतीक नमक कानून को तोड़ा। यह इस बात का प्रतीक था कि भारतीय जनता अब ब्रिटिश कानूनों और ब्रिटिश शासन के अंतर्गत जीने के लिए तैयार नहीं है। गांधीजी ने घोषणा की--

**"भारत में ब्रिटिश शासन ने इस देश को नैतिक भौतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विनाश के कगार तक पहुंचा दिया है। मैं इस शासन को एक अभिशाप मानता हूं। मैं इस शासन प्रणाली को नष्ट करने पर आमादा हूँ। अब राजद्रोह मेरा धर्म बन चुका है। हमार संघर्ष एक अहिंसक युद्ध है। हम किसी की हत्या नहीं करेंगे, मगर इस शासन रूपी अभिशाप को नष्ट होते देखना हमारा धर्म है।"**[1]

1. विपिन चन्द्रा : आधुनिक भारत

आंदोलन अब तेजी से फैल चला। पूरे देश में नमक कानून तोड़े गए। फिर उसके बाद महाराष्ट्र कर्नाटक और मध्य भारत में ग्रामीण जनता ने चौकीदारी कर अदा करने से इनकार कर दिया। देश में हर जगह जनता हड़तालों, प्रदर्शनों और विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार में भाग लेने लगी और कर अदा करने से इनकार करने लगी। लाखों भारतीयों ने सत्याग्रह किया। देश के अनेक भागों में किसानों ने जमीन की मालगुजारी और लगान देने से इनकार कर दिया। उनकी जमीनें जब्त कर ली गई। इस आंदोलन की एक प्रमुख विशेषता स्त्रियों की भागीदारी थी। हजारों स्त्रियां घरों के अंदर से बाहर निकलीं और सत्याग्रह में भाग लिया। विदेशी बस्त्र या शराब बेचने वाली दुकानों पर धरना देने में उनकी सक्रिय भूमिका रही। जुलूसों में वे पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलीं।

आंदोलन बढ़कर भारत के एकदम उत्तर पश्चिमी छोर तक भी पहुंचा और बहादुर और शेरदिल पठानों में जोश सा भर गया। "सीमांत गांधी" के नाम से जाने जाने वाले खान अब्दुल गफ्फार खान के नेतृत्व ने पठानों ने खुदाई खिदमतगार (ईश्वर के सेवक) नामक संगठन बना लिया, जो जनता के बीच "लाल कुर्ती वाले" कहलाते थे। ये लोग अहिंसा और स्वाधीनता संघर्ष को समर्पित थे। इस समय पेशावर में एक महत्वपूर्ण घटना घटी। गढ़वाली सिपाहियों के दो प्लाटूनों ने अहिंसक प्रदर्शनकारियों पर गोली चलाने से मना कर दिया इसके नेता चंद्र सिंह गढ़वाली थे। इसके बदले में इनके बदले में उनका कोर्ट मार्शल किया गया और लंबी–लंबी जेल सजाएं दी गई। इस घटना से स्पष्ट हो गया कि राष्ट्रवाद की भावना भारतीय सेना तक में फैलने लगी थी जो ब्रिटिश शासन का प्रमुख आधार थी।

सरकार ने इस राष्ट्रीय संघर्ष के साथ पहले जैसा ही व्यवहार किया। निर्मम दमन, निहत्थे स्त्री–पुरूषों पर लाठी और गोली की बौछार, आदि के द्वारा इसे कुचलने के

प्रयास किए गए। गांधी जी तथा दूसरे कांग्रसी नेता समेत 90,000 से अधिक सत्याग्रही गिरफ्तार किए गए। कांग्रेस को गैरकानूनी घोषित कर दिया गया। समाचारों पर कड़ा सेंसर लगाकर राष्ट्रवादी प्रेस का गला घोट दिया गया। सरकारी आंकड़ों के अनुसार पुलिस की गोलीबारी में 10 से अधिक लोग कारे गए और 300 से अधिक घायल हुए।

इस बीच 1930 में ब्रिटिश सरकार ने लंदन से भारतीय नेताओं और सरकारी प्रवक्ताओं का पहला गोलगेज सम्मेलन आयोजित किया। इसका उद्देश्य साइमन कमीशन की रिपोर्ट पर विचार करना था। लेकिन कांग्रेस ने सम्मेलन का बहिष्कार किया और उसकी कार्यवाहियां बेकार गई।

अब सरकार ने कांग्रेस से किसी सहमति पर पहुंचने के लिए बातचीत शुरू की ताकि कांग्रेस इस सम्मेलन में भाग लें। अंत में लार्ड इर्विन और गांधी जी के बीच मार्च 1931 में एक समझौता हुआ। सरकार अहिंसक रहने वाले राजनीतिक बंदियों को रिहा करने पर तैयार हो गई। उपयोग के लिए नमक बनाने का अधिकार तथा विदेशी वस्त्रों तथा शराब की दुकानों पर धरना देने का अधिकार भी मान लिए गए। तब कांग्रेस ने नागरिक अवज्ञा आंदोलन रोक दिया और दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने पर तैयार हो गई। अनेक कांग्रेसी नेता और खासकर युवक बामपंथी गांधी इर्विन समझौते के विरोधी थे, क्योंकि सरकार ने एक भी प्रमुख राष्टवादी मांग नहीं मानी थी। सरकार ने यह मांग तक नहीं मानी थी कि भगत सिंह तथा उनके दो साथियों की फांसी की सजा को आजीवन कारावास में बलद लिया जाए। लेकिन गांधीजी को विश्वास थ कि लार्ड इर्विन और ब्रिटिश भारतीयों मांगों पर बातचीत के बारे में गंभीर थे। सत्याग्रह की उनकी धारणा में यह भी शामिल था कि प्रतिपक्षी को हृदय परिवर्तन का प्रदर्शन करने का अवसर दिया जाए। उनकी रणनीति इस समझ पर आधारित थी कि कोई

भी जन आंदोलन निश्चित ही बहुत संक्षिप्त होगा और बहुत दिनों तक जारी न रह सकेगा क्योंकि जनता की बलिदान की क्षमता अनंत नहीं होती। परिणामस्वरूप कानून विरोधी जनसंघर्ष के बाद एक निष्क्रिय चरण का आरंभ हुआ जिसमें आंदोलन को कानून की सीमाओं में रहकर ही चलाया जाना था। इसके अलावा गांधीजी ने बराबरी के आधार पर बातचीत की थी और इस प्रकार कांग्रेस की प्रतिष्ठा की सरकार की प्रतिष्ठा के बराबर ला दिया था। इसलिए वे कांग्रेस के करांची अधिवेशन में इस समझौते का अनुमोदन कराने में सफल रहे।

गांधीजी सितंबर 1931 में दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने इंग्लैंड गए। लेकिन उनकी जोरदार वकालत के बावजूद सरकार ने डोमिनियन स्टेटस तत्काल देकर उनके आधार पर स्वतंत्रता की बुनियादी राष्ट्रवादी मांग को मानने से इनकार कर दिया।

इस बीच देश में अनेक भागों में किसानों में असंतोष की लहर फैल चुकी थी। विश्वव्यापी मंदी के कारण खेतिहर पैदावारों के दाम गिर गए थे और लगान और मालगुजारी का बोझ उनके लिए असह्य हो चला था। संयुक्त प्रांत में लगान में कमी और बंटाईदारों की बेदखली के खिलाफ कांग्रेस ने आंदोलन चलाया। दिसंबर 1930 में कांग्रेस ने आंदोलन ''न लगान, न टैक्स'' का अभियान चलाया। उत्तर में सरकार ने 26 दिसंबर को जवाहरलाल नेहरू को गिरफ्तार कर लिया। पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत में सरकार की मालगुजारी संबंधी नीति के खिलाफ खुदाई खिदमतगार किसान आंदोलन चला रहे थे। 24 दिसंबर को उनके नेता खान अब्दुल गफ्फार खान भी धर लिए गए। किसान आंदोलन बिहार आंध्र, मध्य प्रांत बंगाल और पंजाब में भी फैल रहे थे। भारत वापस आने पर गांधीजी के सामने नागरिक अवज्ञा आंदोलन को दोबारा आरंभ करने के सिवा कोई रास्ता नहीं बचा।

---

अब सरकार के प्रमुख नए वायसराय लार्ड बेलिंगटन थे जिनका मत था कि कांग्रेस के साथ समझौता करना बहुत बड़ी गलती थी। उनकी सरकार कांग्रेस को कुचलने के लिए आमादा और तैयार थी। वास्तव में भारतीय नौकरशाही नरम तो कभी पड़ी ही नहीं थी। गांधी इर्विन समझौते पर हस्ताक्षर के फौरन बाद आंध्र के पूर्वी गोदावरी जिले में एक भीड़ पर गोली चली थी और चार लोग मारे गए थे सिर्फ इसलिए कि उन्होंने गांधीजी का एक चित्र लगाया था। 4 जनवरी 1932 को गांधीजी तथा दूसरे कांग्रेसी नेता फिर धर लिए गए और कांग्रेस गैरकानूनी घोषित कर दी गई। सामान्य कानून निलंबित कर दिए गए और प्रशासन विशेष अध्यादेशों के सहारे चलने लगा। पुलिस ने आतंक का नंगा खेल खेला और स्वाधीनता सेनानियों पर अनगिनत अत्याचार किए गए। एक लाख से ऊपर सत्याग्रही गिरफ्तार किए गए और हजारों की जमीनों, मकानों और दूसरी जायदादों को जब्त किया गया। राष्ट्रवादी समाचार पत्रों पर दोबारा सेंसरशिप लागू कर दिया गया।

## भारत छोड़ो आन्दोलन की पृष्ठभूमि

**1935 का भारत सरकार कानून :**

नवम्बर 1932 में जब कांग्रेस संघर्ष के मंझधार में थी तब लंदन में एक बार फिर कांग्रेस के बिना तीसरे गोलगेज सम्मेलन का आयोजन किया गया था। इसमें हुए विचार विमर्श का परिणाम अंततः 1935 के भारत सरकार कानून के रूप में सामने आया। इस कानून में एक नए अखिल भारतीय संघ की स्थापना तथा प्रांतों में प्रांतीय स्वायत्तता के आधार पर एक नई शासन प्रणाली की व्यवस्था थी। यह संघ (फेडरेशन) ब्रिटिश भारत के प्रांतों तथा रजवाड़ों पर आधारित था। केंद्र में दो सदनों वाली एक संघीय विधायिका की व्यवस्था भी जिसमें रजवाड़ों को भिन्न–भिन्न प्रतिनिधित्व दिया गया था। मगर रजवाड़ों के प्रतिनिधियों का चुनाव जनता

द्वारा नहीं किया जाता बल्कि उन्हें वहां के शासक मनोनीत करते। ब्रिटिश भारत की केवल 14 प्रतिशत जनता को मताधिकार प्राप्त था। इस विधायिका में राष्टवादी तत्वों को काबू में रखने के लिए राजा महाराजाओं का उपयोग किया गया था, मगर फिर भी इसे कोई वास्तविक शक्ति नहीं दी गई थी। रक्षा तथा विदेश विभाग पर गवर्नर जनरल का विशेष नियंत्रण था। गवर्नर जनरल और गवर्नरों की नियुक्ति ब्रिटिश सरकार करती और वे उसी के प्रति उत्तरदायी थे। प्रांतों को अधिक स्थानीय अधिकार दिए गए थे। प्रांतीय विधान सभाओं के प्रति उत्तरदायी मंत्रियों का प्रांतीय प्रशासन के हर विभाग पर नियंत्रण था। उन्हें कानूनी गतिविधियों पर निषेधाधिकार तथा अपने कानून बनाने के अधिकार थे। इसके अलावा नागरिक प्रशासन और पुलिस पर उनका पूरा नियंत्रण था। यह कानून राष्ट्रवादियों की आकांक्षाओं को पूरा नहीं कर सका, क्योंकि आर्थिक और राजनीतिक शक्ति अभी भी ब्रिटिश सरकार के हाथों में केंद्रित थी। विदेशी शासन पहले की तरह ही जारी था हां कुछेक लोकप्रिय और चुने हुए नेता भारत के ब्रिटिश प्रशासन के ढांचे में और जुड़े। कांग्रेस ने "पूरी तरह निराशाजनक" कहकर इस कानून की निंदा की।

इस कानून के संधीय पक्ष को कभी लागू नहीं किया गया पर प्रांतीय पक्ष जल्द ही लागू कर दिया गया। इस 1935 के नए कानून का कड़ा विरोध करने के बावजूद कांग्रेस ने इसके अंतर्गत होने वाले चुनावों में भाग लेने का निर्णय किया, और इस घोषित लक्ष्य के साथ कि वह इस कानून का अलोकप्रियता सिद्ध करेगी। कांग्रेस के तूफान चुनाव प्रचार को जनता का व्यापक समर्थन मिला। हालांकि गांधीजी ने एक भी चुनाव सभा को संबोधित नहीं दिया। फरवरी 1937 में हुए इन चुनावों में यह बात निश्चित रूप से सिद्ध हो गई कि जनता का एक बड़ा भाग कांग्रेस के साथ है। कांग्रेस ने अधिकांश प्रांतों में भारी जीत हासिल की।

ग्यारह में से सात प्रांतों में जुलाई 1937 में कांग्रेसी मंत्रीमंडल बने। बाद में कांग्रेस ने दो प्रांतों में साझी सरकारें भी बनाई। केवल बंगाल और पंजाब प्रांत में ही गैर कांग्रेसी मंत्रीमंडल बन सके। पंजाब में युनियनिस्ट पार्टी ने और बंगाल में कृषक प्रजा पार्टी और मुस्लिम लीग ने मिलकर सरकार बनाई।[1]

## समाजवादी विचारों का प्रसार :

इस सदी के चौथे दशक में कांग्रेस के अंदर और बाहर समाजवादी विचारों का तेजी से प्रसार हुआ। 1929 में अमरीका में एक बहुत बड़ी आर्थिक मंदी आई जो धीरे–धीरे पूरी दुनिया में छा गई। दूसरे बहुत बड़ी गिरावट आई। दूसरी ओर सोवियत संघ की आर्थिक स्थिति इसके ठीक विपरीत थी। वहां गिरावट तो नहीं आई बल्कि 1924 और 1936 के बीच पहली दो पंचवर्षीय योजनाएं सफलापूर्वक लागू की गईं जिससे सोवियत औद्योगिक उत्पादन चार गुना से भी अधिक हो गया।

राष्ट्रीय आंदोलन के आरंभिक दिनों से ही उसका झुकाव निर्धन जनता की ओर था। 1917 की रूसी क्रांति के प्रभाव से राजनीतिक मंच पर गांधीजी के उदय से तथा दूसरे और तीसरे दशकों में शक्तिशाली वापपंथी गुटों के बनने से यह प्रवृति और मजबूत हुई। राष्ट्रीय आंदोलन के अंदर और पूरे देश के पैमाने पर एक समाजवादी भारत की तस्वीर को लोकप्रिय बनाने में जवाहरलाल नेहरू ने सबसे महात्वपूर्ण भूमिका निभाई। कांग्रेस के अंदर वामपंथी प्रवृति के मजबूत होने का प्रमाण यह था कि 1929, 1936 और 1937 में जवाहरलाल नेहरू तथा 1938 और 1939 में सुभाषचन्द्र बोस कांग्रेस अध्यक्ष पद के लिए विजयी हुए। नेहरू का तर्क था कि राजनीतिक स्वाधीनता का अर्थ जनता की आर्थिक मुक्ति, खासकर मेहनती किसानों की सामंती शोषण से मुक्ति होनी चाहिए।

---

1. विपिन चन्द्रा : आधुनिक भारत

1936 में लखनऊ अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में नेहरू ने कांग्रेस से आग्रह किा कि वह समाजवाद को अपना लक्ष्य बनाए तथा खुद को किसान और मजदूर वर्गो के और भी पास लाए। उनका विश्वास था कि मुस्लिम जनता को उनके प्रतिक्रियावादी सांप्रदायिक नेताओं से दूर हटाने का यही सबसे अच्छा उपाय था। देश में मूलगामी शक्तियों का प्रमाण जल्द ही कांग्रेस के कार्यक्रम तथा नीतियों में भी देखा गया। इस दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रस्थान बिंदू मौलिक अधिकारों और आर्थिक नीति पर वह प्रस्ताव था जिसे कांग्रेस ने करांची अधिवेशन में जवाहर लाल नेहरू के आग्रह पर पारित किया।

कांग्रेस के अन्दर मूलगामी प्रवृति का एक और प्रमुख रूप कांग्रेस के फैजपुर अधिवेशन के प्रस्तावों व 1936 के चुनाव घोषणा पत्र में देखने को मिला। इसमें कृषि–प्रणाली का मूलगामी रूपांतरण करने, लगान और मालगुजारी में काफी कमी करने, ग्रामीण ऋण कम करने तथा आसान शर्तो पर ऋण देने के बाद किए गए थे।

1938 में कांग्रेस अध्यक्ष सुभाष चंद्र बोस थे। इस समय कांग्रेस ने आर्थिक योजना का विचार अपनाया और जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय योजना समिति बनाई। नेहरू, दूसरे वापपंथियों तथा गांधी ने भी चंद लोगों के हाथों में धन का केंद्रीकरण रोकने के लिए बड़े उद्योगों की सार्वजनिक क्षेत्र में रखने की बात की। वास्तव में, चौथे दशक की एक प्रमुख घटना यह थी कि गांधीजी ने भी मूलगामी आर्थिक नीतियों को अधिकाधिक स्वीकार किया। 1933 में नेहरू से सहमत होकर उन्होंने कहा कि "निहित स्वार्थों में एक बड़े परिवर्तन के बिना जनता की स्थिति को कभी नहीं सुधारा जा सकता।" उन्होंने "जमीन जोतने वाले को" का सिद्धांत भी मान लिया और 1942 में घोषणा की कि "जमीन उनकी है जो उस पर मेहनत करते हैं, और किसी की नही।"

कांग्रेस के बाहर समाजवादी प्रवृति का एक परिणाम यह भी था कि 1935 के बाद पूरनचंद्र जोशी के नेतृत्व में कम्युनिष्ट पार्टी का प्रसार हुआ और 1934 में आचार्य नरेंद्रदेव तथा अधिकांश नारायण नेतृत्व में कांग्रेस समाजवादी पार्टी की स्थापना हुई। 1938 में गांधीजी के विरोध के बावजूद सुभाषचंद्र बोस दोबारा कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये। लेकिन कांग्रेस बर्किंग कमेटी के अंदर गांधीजी और उनके समर्थकों के विरोध के कारण बोस अप्रैल 1939 में कांग्रेस के अध्यक्ष पद से त्यागपत्र देने को मजबूर हो गए। फिर उन्होंने और उनके अनेक वामपंथी समर्थकों ने फारवर्ड ब्लाक की स्थापना की। 1939 तक आते–आते कांग्रेस के अंदर मौजूद वामपंथ सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों पर एक तिहाई वोट जुटा सकने में समर्थ हो चुका था। इसके अलावा चौथे और पांचवे दशक में समाजवाद भारत के अधिकांश राजनीतिक चेतना प्राप्त युवकों का विश्वास अपना रूप ले चुका था। चौथे दशक में आल इण्डिया स्टूडेंडस फेडरेशन तथा अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की भी स्थापना हुई।

**किसान और मजदूर आंदोलन :**

चौथे दशक में भारत के किसानों और मजदूरों में राष्ट्रव्यापी जागरण देखने को आया। 1920–20 तथा 1930–34 के दो राष्ट्रवादी आंदोलनों ने किसानों और मजदूरों का बड़े पैमाने पर राजनीतिकरण किया था।

नागरिक अवा आंदोलन तथा वामपंथी पार्टियों और गुटों ने राजनीतिक कार्यकर्ताओं की एक ऐसी नई पीढ़ी पैदा की जो किसानों और मजदूरों के संगठन के लिए समर्पित थी। परिणाम स्वरूप शहरों में ट्रेड यूनियनों का तथा पूरे देश में खासकर संयुक्त प्रांत, बिहार, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, केरल औश्र पंजाब में किसान सभाओं का तेजी से प्रसार हुआ। 1936 में स्वामी सहजानंद सरस्वती की अध्यक्षता में पहला अखिल भारतीय किसान संगठन अखिल भारतीय किसान सभा के नाम से बना।

चौथे दशक में कांग्रेस ने दुनिया के किसी भी भाग में जारी साम्राज्यवाद के खिलाफ एक कड़ा रूख अपनाया और एशिया और अफ्रीका के राष्ट्रीय आंदोलनों को समर्थन दिया। इससे उसी समय इटली, जर्मनी और जापान में उभरते हुए फांसीवाद की निंदा की जो साम्राज्यवाद और नस्लवाद का सबसे ीयानक रूप था, और इथियोपिया, स्पेन, चेकोस्लोवाकिया तथा चीन पर फांसीवादी ताकतों के हमले के खिलाफ संघर्ष में वहां की जनता का पूरा–पूरा समर्थन किया। 1937 में जब जापान ने चीन पर हमला किया तो कांग्रेस ने एक प्रस्ताव के द्वारा भारतीय जनता से आग्रह किया कि वे "चीन की जनता के प्रति अपनी सहानुभूति जताने के लिए जापानी वस्तुओं के प्रयोग से बचें।" 1938 में कांग्रेस ने डा. एम. अटल के नेतृत्व में डाक्टरों का एक दल भी चीनी नेताओं के साथ काम करने के लिए भेजा।

राष्ट्रीय कांग्रेस को पूरा–पूरा विश्वास था कि भारत का भविष्य उस संघर्ष से घनिष्ठतापूर्वक जुड़ा हुआ हैं जो एक तरफ फांसीवाद तथा दूसरी तरफ स्वाधीनता, समाजवाद और जनतंत्र की शक्तियों के बीच छिड़ने वाला है। विश्व की घटनाओं के प्रति कांग्रेस में उभरते हुए दृष्टिकोण तथा दुनिया में भारत की स्थिति की चेतना को जवाहरलाल नेहरू ने 1936 के लखनऊ अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में सामने रखा था।

कांग्रेस साम्राज्वादी शक्तियों के किसी भी आपसी युद्ध में भारत सरकार की किसी भी रूप में भागीदारी का विरोध करेगी, इस बात पर जोर देते हुए नेहरू ने "विश्व की प्रगतिशील शक्तियों के प्रति, स्वाधीनता के लिए तथा राजनीतिक और सामाजिक बंधन तोड़ने के लिए लड़ने वालों के प्रति" अपने पूरे सहयोग का वचन दिया क्योंकि "साम्राज्यवाद और फांसीवाद प्रतिक्रिया के विरोध में उनके संघर्ष से हमें यह लगता है कि हमारा संघर्ष एक साझा संघर्ष है।"

---

रजवाडो की जनता का संघर्ष :

इस काल का एक प्रमुख घटनाक्रम यह था कि राष्ट्रीय आंदोलन रजवाड़ों तक भी फैल गया। इन रजवाड़ों में से अधिकांश में आर्थिक से, राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियां नरक जैसी थी। किसान दमन के शिकार थे, मालगुजारी और कर बहुत अधिक तथा असहाय थे, शिक्षा का कोई खास प्रसार न था, स्वास्थ्य और अन्य सामाजिक सेवाएं एकदम पिछड़ेपन की हालत में थीं, और प्रेस की स्वतंत्रता तथा दूसरे नागरिक अधिकारों का शायद ही कोई मान हो।

अनेक रजवाड़ों की जनता अब जनतांत्रिक अधिकारों और लोकप्रिय सरकारों, की मांग को लेकर आंदोलन करने लगी। विभिन्न रजवाड़ों में राजनीतिक गतिविधियों के तालमेल के लिए दिसंबर 1927 में ही आल इण्डिया स्टेट्स पीपुल्स कांफ्रेंस की स्थापना हो चुकी थी। दूसरे असहयोग आंदोलन ने रजवाड़ों की जनता पर काफी गहरा प्रभाव डाला और उन्हें राजनीतिक गतिविधियों के लिए प्रेरित किया। अनेक रजवाड़ों, खासकर राजकोट, जयपुर, कश्मीर, हैदराबाद और ट्रावनकोर में जनसंघर्ष चलाए गए। राजाओं ने इन संघर्षो का सामना निर्मम दमन के द्वारा किया। इनमें से कुछ ने सांप्रदायिकता का सहारा भी लिया। हैदराबाद के निजाम ने जन आंदोलन को मुस्लिम विरोधी और कश्मीर के महाराजा ने उसे हिंदू विरोधी घोषित किया, जबकि ट्रावन कोर के महाराजा का दावा था कि जन आंदोलन के पीछे ईसाइयों का हाथ है। राष्ट्रीय कांग्रेस ने रजवाड़ों की जनता के संघर्ष का समर्थन किया और राजाओं से आग्रह किया कि वे जनतांत्रिक प्रतिनिधि सरकार स्थापित करें और जनता को मूलभूत नागरिक अधिकार दें। 1938 में जब कांग्रेस ने अपने स्वाधीनता के लक्ष्य को परिभाषित किया तो इसमें रजवाड़ों की स्वाधीनता को भी शामिल किया। अगले साल त्रिपुरी अधिवेशन में

रजवाड़ों की जनता के आंदोलनों में और भी सक्रिय रूप से भाग लेने का उसने फैसला किया। ब्रिटिश भारत तथा रजवाड़ों के राजनीतिक संघर्षों के साझे राष्ट्रीय लक्ष्यों को सामने रखने के लिए जवाहरलाल नेहरू को 1939 में आल इण्डिया स्टेट्स पीपुल्स कांफ्रेंस का अध्यक्ष चुना गया। रजवाड़ों की जनता के आंदोलन ने उस जनता में राष्ट्रीय चेतना पैदा की। इससे पूरे भारत में एकता की नई चेतना भी फैली।

राष्ट्रीय आंदोलन ने सांप्रदायिक ताकतों का हमेशा दृढ़ता से विरोध किया और धर्मनिरपेक्षता से उसकी प्रतिबद्धता हमेशा गहरी और संपूर्ण रही। फिर भी वह सांप्रदायिक चुनौती का सामना करने में पूरी तरह सफल न हो सका। अंत में सांप्रदायिकता देश का विभाजन कराने में सफल रही।[1]

**दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान राष्ट्रीय आंदोलन :**

दूसरा विश्व युद्ध 1939 में आरंभ हुआ। भारत की सरकार राष्ट्रीय कांग्रेस या केंद्रीय सभा के चुने हुए सदस्यों से परामर्श किए बिना फौरन युद्ध में शामिल हो गई। राष्ट्रीय कांग्रेस को फांसीवादी (फासिस्ट) आक्रमण के शिकार देशों से पूरी सहानुभूति थी। वह फांसीवाद विरोधी संघर्ष में लोकतांत्रिक शक्तियों की सहायता करने को तैयार थी। मगर कांग्रेस के नेताओं का सवाल यह था कि एक गुलाम राष्ट्र द्वारा दूसरों के मुक्ति संघर्ष में साथ देना किस प्रकार संभव था ? इसलिए उन्होंने मांग की कि भारत को स्वाधीन घोषित किया जाए या कम से कम भारतीयों को समुचित अधिकार दिए जाएं ताकि वे युद्ध में सक्रिय भाग ले सकें। ब्रिटिश सरकार ने इस मांग को मानने से इनकार कर दिया तथा धार्मिक अल्पसंख्यकों और राजा महाराजाओं को कांग्रेस के खिलाफ खड़ा करने का प्रयास किया। इसलिए कांग्रेस ने अपने मंत्रिमंडलों को आदेश दिया कि वे त्यागपत्र दे दें। अक्टूबर 1940

---

1. बी. डी. पाण्डेय : भारत वर्ष का इतिहास

में गांधीजी ने कुछ चुने हुए व्यक्तियों को साथ लेकर सीमित पैमाने पर सत्याग्रह चलाने का निर्णय किया। सत्याग्रह को सीमित इसलिए रखा गया कि देश में व्यापक उथल पुथल न हो और ब्रिटेन के युद्ध प्रयासों में बाधा न पड़े। सत्याग्रह करने वाले पहले व्यक्ति विनोबा भावे थे 15 मई 1941 तक 25,000 से अधिक सत्याग्रही गिरफ्तार किए जा चुके थे।

हाल में रिहा हुये कांग्रेसी नेताओं ने जापानी आक्रमण की निंदा की और कहा कि अगर ब्रिटेन फौरन प्रभावी शक्ति भारतीयों को सौंप दें और युद्ध के बाद पूर्ण स्वाधीनता का वचन दे तो वे भारत की रक्षा तथा राष्ट्रों के हितों के लिए सहयोग करने को तैयार हैं। अब ब्रिटिश सरकार को युद्ध प्रयासों में भारतीयों के सक्रिय सहयोग पाने के लिए उसने एक कैबिनेट मंत्री सर स्टैफोर्ड क्रिप्स के नेतृत्व में मार्च 1942 में एक मिशन भारत भेजा।

**भारत छोड़ो आंदोलन (1942) :**

क्रिप्स मिशन की असफलता से भारत की जनता रूष्ट हो गई। उसे फांसीवाद विरोधी शक्तियों से अभी भी पूरी सहानुभूति थे, मगर उसे लगता था कि देश की राजनीतिक स्थिति अब बर्दाश्त से बाहर हो चुकी है। युद्ध के दौरान वस्तुओं की कमी और बढ़ती कीमतों ने उसके अंसतोष को और भी गहरा दिया था। अप्रैल अगस्त 1942 के काल में तनाव लगातार बढ़ता गया। जैसे–जैसे जापानी फौंजे भारत की ओर बढ़ती गई तथा जापानी विजय का भय जनता और नेताओं को त्रस्त करने लगा और गांधीजी उतने ही अधिक जुझारु होते गए। कांग्रेस ने अब फैसला किया कि अंग्रेजों से भारतीय स्वाधीनता की मांग मनवाने के लिए सक्रिय उपाय किए जाएं। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की मीटिंग 8 अगस्त 1942 को बंबई में हुई जिसमें प्रसिद्ध "भारत छोड़ो" प्रस्ताव स्वीकार किया गया तथा इस उद्देश्य को पाने क `लिए गांधीजी के नेतृत्व में एक अहिंसक जनसंघर्ष चलाने का फैसला किया गया।

---

8 अगस्त की रात में कांग्रेसी प्रतिनिधियों को संबोधित करते हुए गांधीजी ने कहा– "**इसलिए मैं अगर हो सके तो तत्काल, इसी रात, प्रभात से पहले स्वाधीनता चाहता हूँ आज दुनिया में झूठ और मक्कारी का बोलबाला है। आप मेरी बात पर भरोसा कर सकते हैं कि मैं मंत्रिमंडल या ऐसी दूसरी वस्तुओं के लिए वायसराय से सौदा करने वाला नहीं हूँ। मैं पूर्ण स्वाधीनता से कम किसी चीज से संतुष्ट होने वाला नहीं हूँ। अब मैं आपको एक छोटा सा मंत्र दे रहा हूँ, आप इसे अपने दिलों में संजोकर रख लें और हर एक सांस में इसका जाप करें। यह मंत्र यह है "करो या मरो।" हम या तो भारत को स्वतंत्र कराएंगे या इस प्रयास में मारे जाएंगे, मगर हम अपनी पराधीनता को जारी रहते देखने के लिए जीवित नहीं रहेंगे।**"[1]

लेकिन कांग्रेस आंदोलन चला सके, इसके पहले ही सरकार ने कड़ा प्रसार किया। 9 अगस्त को बहुत तड़के ही गांधीजी तथा दूसरे कांग्रेसी नेता गिरफ्तार करके अनजानी जगहों पर ले जाए गए और कांग्रेस को फिर एक बार गैरकानूनी घोषित कर दयिा गया।

इन गिरफ्तारियों की खबर ने पूरे देश को सकते में डाल दिया और हर जगह विरोध में कए स्वतःस्फूर्त आंदोलन उठ खडत्रा हुआ तिमें जनता का अभी तक दबा हुआ गुस्सा झलक रहा था। नेताविहीन संगठन विहीन जनता ने तिस ढंग से भी ठीक समझा, अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। पूरे देश में कारखानों में, स्कूलों और कालेजों में हड़तालें और कामबंदी हुई और प्रदर्शन हुए जिन पर लाठी चार्ज और फायरिंग भी हुए। बार–बार की गोलबारी और दमन से कुद्ध होकर जनता ने अनेक जगहों पर हिंसक कार्यवाहियां भी कीं। उसने पुलिस थानों डाकखानों रेलवे स्टेशनों आदि ब्रिटिश शासन के तमाम प्रतीकों पर हमले किए। उन्होंने

---

1. विपिन चन्द्रा : आधुनिक भारत

टेलीफोन के तार उखाड़ दिए तार के खंभे गिरा दिए रेल लाइनें उखाड़ दीं और सरकारी इमारतों में आग लगा दी। इस संबंध में मद्रास और बंगाल सबसे अधिक प्रभावित हुए। अनेक जगहों पर अनेक शहरों कस्बों और गांवों में विद्रोहियों का अस्थायी कब्जा भी हुआ। संयुक्त प्रांत, बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, आंध्र, तमिलनाडु और महाराष्ट्रके अनेक भागों में ब्रिटिश शासन लुप्त हो गया। पूर्वी उत्तर प्रदेश के बलिया जिले, बंगाल के मिदनापुर जिले में तासलुक और बंबई के सतारा जिले जैसे कुछ क्षेत्रों में क्रांतिकारियों ने 'समानांतर सरकार' भी बना ली। आम तौर पर छात्र, मजदूर और किसान ही इस विद्रोह के आधार थे जबकि उच्च वर्गों के लोग तथा नौकरशाही सरकार के वफादार रहे।

सरकार ने अपनी ओर से 1942 के आंदोलन को कुचलने के लिए सब कुछ किया। उसके दमन की कोई सीमा नहीं रही। प्रेस का पूरी तरह गला घोंट दिया गया। प्रदर्शन कर रही भीड़ों पर मशीनगनों से गालियां तथा हवा में बम भी बरसाए गए। कैदियों को यातनाएं दी गई। पुलिस और खुफिया पुलिस का राज चारों ओर था। अनेक नगरों और कस्बों को सेना ने अपने नियंत्रण में ले किलया। पुलिस और सेना की गोलीबारी ने 10,000 से अधिक लोग मारे गए। विद्रोही गांवों को जुर्माना के रूप में भारी–भारी रकमें देनी पड़ी और गांव वालों पर सामूहिक रूप सेकोडत्रे बरसाए गए। 1857 के विद्रोह के बाद भारत में इतना निर्मम दमन कभी देखने को नहीं मिला था।[1]

सरकार अंततः आंदोलन को कुचलने में सफल रही। 1942 का यह विद्रोह वास्तव में बहुत संक्षिप्त रहा। इसका महत्व इस बात में था कि इसने दिखावा कि देश में राष्ट्रव्यापी भावनाएं किस गहराई तक अपनी जड़ें जमा चुकी थी और जनता संघर्ष और बलिदान की कितनी बड़ी क्षमता प्राप्त कर चुकी थी। यह स्पष्ट था कि जनता की इच्छा के विरूद्ध भारत पर शासन कर सकना अब अंग्रेजों को संभव नहीं लगता।

---

1. पी. सीतारमैया : हिस्ट्री आफ कांग्रेस

1942 के विद्रोह के दमन के बाद, 1945 में युद्ध की समाप्ति तक देश में राजनीतिक गतिविधियां लगभग ठप रहीं। राष्ट्रीय आंदोलन के सर्वमान्य नेता जेलों में बंद थे और कोई नया नेता उनकी जगह नहीं ले सका था और न ही देश को नेतृत्व दे सका था। 1943 में बंगाल में आधुनिक इतिहास का सबसे बड़ा अकाल फूट पड़ा। कुछ ही महीनों में तीस लाख से अधिक लोग भूख से मर गए। इससे जनता एक भयानक गुस्से से भर उठी क्योंकि सरकार अगर चाहती तो इतने लोगों को अकाल से मरने से बचा सकती थी। फिर भी इस गुस्से को पर्याप्त राजनीतिक अभिव्यक्ति न मिल सकी।

## गांधी युग की घटनाओं में बुन्देलखण्ड की सहभागिता

1919 में विजयराघवाचार्य की अध्यक्षता में कांग्रेस ने गांधी जी के असहयोग आंदोलन के प्रस्ताव को स्वीकारा। 1920 में लाला लाजपतराय की अध्यक्षता में हुई कलकत्ता अधिवेशन में उसे क्रियान्वित करने की बात हुई। सारे देश की आँखे गांधी जी पर टिक गईं। बुन्देलखण्ड के लोग भी गांधी जी से आकर्षित हुए और बुंदेलखण्ड में कांग्रेस का गठन हुआ। झाँसी के आत्माराम गोविंद खेर, रघुनाथ विनायक भुलेकर, उरई के पं. झुन्नीलाल पाण्डेय, बेनीमाधव तिवारी, कोंच के कृष्ण गोपाल शर्मा, बांदा के कुँवर हरप्रसाद सिंह, महोबा के चुन्नीलाल जैन, शंकर लाल जैन, बैजनाथ तिवारी और मु0 वख्श ने असहयोग आंदोलन का नेतृत्व संभाला। हमीरपुर के दीवान शत्रुघन सिंह ने भी कांग्रेस को सहयोग दिया।

इसी बीच हमीरपुर के रोला खंगारन में एक महिला सती हो गई, जिसमें 25 लोगों को गिरफ्तार किया गयां कांग्रेस के दीवान शत्रुघन सिंह ने इस केस की पैरवी की और जनता ने भी इस मुकदमें के लिए भरपूर दान किया। यह कांग्रेस का स्थानीय एजेंडा बन गया। दीवान साहब की पत्नी रानी राजेंद्र कुमारी ने भी पर्दा–प्रथा त्यागकर कांग्रेस के आंदोलन में बढ़–चढ़कर भाग लिया।[1]

---

1. श्रीपति सहाय रावत : समरगाथा

पूरे बुंदेलखण्ड में सत्याग्रह शुरू हो गया। बुन्देलखण्ड के भी सभी क्षेत्रों में जनता गिरफ्तारियां देने लगी। अनेक नेता जेल में गए। हमीरपुर से दीवान शत्रुघन सिंह और रानी राजेंद्र कुमारी जालौन जिले में मुन्नीलाल पाण्डेय, बेनीमाधव तिवारी, पं. चतुर्भुज शर्मा, पं० बालमुकुन्द शास्त्री आदि सभी के नेतृत्व में पूरे बुंदेलखण्ड में जनता ने असहयोग की ज्वाला को धधका दिया।

**नागपुर झंडा सत्याग्रह :**

चौरी–चौरा कांड के बाद गांधी जी ने कहा था, जब तक देश में हिंसात्मक वातावरण रहेगा, तब तक मैं सत्याग्रह नहीं करूंगा। इसी बीच नागपुर में कांग्रेस के तिरंगे झण्डे को लेकर जुलूस निकला और सिविल लाईंस में अंग्रेजों की बस्ती में पहुंचा। अंग्रेजों की आपत्ति पर पुलिस ने इसे आगे बढ़ने से रोका। सत्याग्रहियों द्वारा न मानने पर सिपाहियों ने स्वयं सेवकों को बंदूक के कुंदों से पीटा और उन्हें जेल में बंद कर दिया और 6 माह की सजा दी। सारे राष्ट्र ने इसे गंभीरता से लेते राष्ट्रीय अपमान समझा।

सेठ जमनालाल बजाज, पूनम चंद शका, माखन लाल चतुर्वेदी और डॉ. हार्डीकर ने स्वयं झण्डा लेकर सिविल लांइस नागपुर को चल दिये। कांग्रेस ने इन्हें भी पीटा और 6 माह की सजा दी। कांग्रेस ने इसे मुद्दा बनाया और झण्डा सत्याग्रह की स्वीकृति दी। इस समय नागपुर म० प्र० में था। सारे म० प्र० से नागपुर में सत्याग्रह के लिए स्वयं सेवक आने लगे। म० प्र० कांग्रेस ने सारे देश से स्वयं सेवकों को आमंत्रित किया। कांग्रेस और सरकार के बीच ध्वजारोहण प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया। सारे देश से स्वयं सेवक नागपुर पहुंचे।[1]

बुन्देलखण्ड के लोगों ने भी झंडा सत्याग्रह में सहभागिता की। दीवान शत्रुघन सिंह के नेतृत्व में श्री पंत जी सहाय रावत, कीतर सिंह, इंद्रजीत, पंचम और कुंजबिहारी

---

1. श्रीपति सहाय रावत : समर गाथा

हमीरपुर से उरई पहुंचे और वहां से बुंदेलखण्ड में झण्डा सत्याग्रह के प्रभारी मुन्नीलाल पाण्डेय से दिशा निर्देश लेकर 150 सत्याग्रहियों के साथ इलाहाबाद होकर नागपुर रवाना हुए।[1]

गोदिया जंक्शन पर इन्हें सूचना मिली कि वे गिरफ्तार किये जा सकते हैं। इस पर सत्याग्रहियों ने तय किया कि यदि उन्हें गिरफ्तार किया जाता है तो रेलगाड़ी पर ही झण्डा बांधकर फहराया जाय और रेलगाड़ी को फील्ड बनाया जाए। जैसे ही गाड़ी चली झण्डा फहराने लगा और लोग अचंभे से देखने लगे। उसमें यात्रा कर रहे रेवले गार्ड ने इस पर आपत्ति की किंतु सत्याग्रहियों ने उनकी बात नहीं मानी। बालाघाट में अंग्रेज सिपाहियों ने सत्याग्रहियों को बहुत मारा। उन्हें भीषण यातनाएं दी गयीं। दो–दो सत्याग्रहियों को पीठ जोड़कर बांध दिया गया, ताकि वे एक दूसरे से बात न सकें। बंधे हुए ही उन्हें नित्य क्रियाएं संपन्न करनी पड़ती थीं। उ0 प्र0 के 150 सत्याग्रहियों को धारा 109 के अनुसार एक–एक वर्ष की सजा दी गयी। इन्हें नागपुर जेल में रखा गया। इन्हें पाशविक भोजन दिया गया। अमानवीय व्यवहार किया गया।

सत्याग्रहियों के कष्ट सहकर भी न झुकने से अंग्रेज सरकार परेशान हो गयी। उन्हें इस बात का अनुमान नहीं था कि झण्डा सत्याग्रह समूचे भारत का झण्डा सत्याग्रह हो जायेगा। म0 प्र0 कौंसिल में उस समय कांग्रेस का पूर्ण बहुत था। कौंसिल में कांग्रेस ने प्रस्ताव पारित कर दिया कि कांग्रेस का झण्डा भारत का राष्ट्रीय झण्डा है। उसे प्रत्येक प्रांत और स्थान पर फहराया जा सकता है। अतः सिविल लाईस नागपुर में झण्डा फहराना कानूनी है।

इस प्रस्ताव के बाद नागपुर सिविल लाईस में झण्डा फहरा दिया गया। माखन लाल चतुर्वेदी के नेतृत्व में एक विशाल जुलूस निकला। सरकार चुप हो गयी। सभी सत्याग्रही रिहा हुए। सत्याग्रही जब अपने क्षेत्र में पहुंचे तो जनता द्वारा भव्य स्वागत हुआ।

---

1. श्रीपत सहाय रावत : समरगाथा

कांग्रेस के विविध अधिवेशनों में हमीरपुर के प्रमुख सत्याग्रहियों ने भाग लिया। 1921 में आयोजित अहमदाबाद कांग्रेस के अधिवेशन में दीवान शत्रुघन सिंह पं0 बैद्यनाथ, श्रीपति सहाय राव, मुन्नी लाल पाण्डेय, रघुनाथ विनायक, आत्मराम, गोविंद खेर, बेनीमाधव तिवारी, कुँवर हर प्रसाद सिंह, शंकर लाल जैन आदि ने भाग लिया। 1925 में कानपुर में तथा 1926 में करांची में अखिल भारतीय कांग्रेस अधिवेशन में झांसी, जालौन, बांदा, हमीरपुर आदि से कांग्रेसी नेता ने भाग लिए। इसी बीच कानपुर के सांप्रदायिक दंगों में गणेश शंकर विद्यार्थी शहीद हो गए जो गांधी जी के बीच प्रिय पात्र थे। अंग्रेजों ने कई शहरों में दंगे करवाए। लेकिन कांग्रेस के रचनात्मक रवैये में जरा भी ढील नहीं आयी और ऐसी विषम परिस्थिति में भी अपने संगठन और प्रचार में जुटी रही।

माण्टफोर्ड सुधारों के बाद प्रांतीय काउंसिलों जिला परिषदों और नगर पालिकाओं को अधिकार मिले। मोतीलाल नेहरू और चितरंजन दास ने स्वराज्य पार्टी को बनाकर कहा कि इन सरकार के विरूद्ध इन संस्थाओं के भीतर भी लड़ो और बाहर भी। अंग्रेज सरकार ने प्रशासन को आदेश दिये कि कांग्रेस के उम्मीदवार चुनाव न जीत पाएं। और ब्रिटिश विरोध के बाद भी कांग्रेस के उम्मीदवार जीते। इनमें हमीरपुर में मुन्नीलाल और जालौन में मुन्नीलाल पाण्डेय जीते। बुन्देलखण्ड के सभी जिला परिषदों पर कांग्रेस का अधिकार हो गया। जगह–जगह स्काउट रैलियां आयोजित की गयीं, जो भावी स्वतंत्रता संग्राम के लिए देशभक्तों को तैयार करने का माध्यम थीं।

अंग्रेज सरकार तिरंगा फहराना अपराध मानती थी और झण्डा फहराने वालों को प्रताड़ित करती थी। लेकिन बुंदेलखण्ड में कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने झण्डे, टोपियां और कुर्तों की इतनी भरमार कर दी की बरातों तक में झण्डा फहराया जाने लगा। महिलाओं ने भी झण्डे

फहराए। हमीरपुर जनपद में रानी राजेंद्र कुमार के नेतृत्व में महिलाओं के झण्डा जुलूस निकाला और अनेक महिलाओं को जेल जाना पड़ा।

1937 में पं0 नेहरू ने बुंदेलखण्ड का दौरा किया वे हमीरपुर, जालौन, झांसी, सभी जगह गए। इससे बुंदेलखण्ड में सत्याग्रहियों का हौंसला बढ़ा। हमीरपुर जनपद में मुन्नीला गुरूदेव, स्वामी ब्रहमानंद, राम गोपाल गुपत, रामसेवक खरे, उदित नारायन सिंह, सुदर्शनभाई, प्रताप सिंह तोमर आदि ने 1938 में जराखर में एक बड़ा राजनैतिक सम्मेलन कराया। इसमें उ0 प्र0 के कांग्रेसी मुख्यमंत्री पं0 गोविंद बल्लभ पंत ने भाग लिया। इस सम्मेलन में पं0 परमानंद तथा पं0 जवाहरलाल नेहरू भी विशेष रूप से आए और ध्वजरोहण किया।

## सविनय अवज्ञा आंदोलन और बुन्देलखण्ड

लाहौर कांग्रेस में बुंदेलखण्ड से भगवान दास बालेंदु और श्रीपत सहाय राव के नेतृत्व में अनेक प्रतिनिधियों ने भाग लिया। जब अंग्रेज सरकार ने नेहरू रिपोर्ट को स्वीकार नहीं किया ता 1 जनवरी 1930 को रात्रि में पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पारित हुआ। इस अधिवेशन जहां सुभाष चन्द्र बोस ने हिंसा प्रयोग का भी प्रस्ताव रखा। वहां गांधीजी ने कहा कि सविनय अवज्ञा आंदोलन पूरी तरह अहिंसक होगा।

नमक सत्याग्रह के अंतर्गत कांग्रेस के दीवान शत्रुघन सिंह को जिम्मेदारी सौंपी गयी। उन्होंने हमीरपुर जनपद के राठ में नमक सत्याग्रह प्रारंभ किया। पं0 बैजनाथ तिवारी के नेतृत्व में पहला जत्था राठ की ओर चला, जिस पर पुलिस ने लाठीचार्ज किया। राठ में तिवारी ने नमक बनाया और दूसरे स्थान पर जनता को भेजा। उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। 6 माह की सजा हुई। हमीरपुर जनपद के प्रत्येक शहर व कस्बे में नमक सत्याग्रह हुआ। इनका नेतृत्व दीवान शत्रुघन सिंह, भगवान दास, बालेंदु, स्वामी ब्रहमानंद, श्रीपति सहाय,

कपिल देव पाण्डेय, रामदुलारे, रामसनेही, चिरंजीलाल आदि ने किया। स्वामी ब्रहमानंद को तो मानवीय यातनाएं दी।[1]

1933 की कलकत्ता कांग्रेस में हमीरपुर से कई प्रतिनिधियों ने भाग लिया। 1935 के प्रांतीय चुनावों में हमीरपुर जनपद में दीवान शत्रुघन सिंह ने सरकारी प्रत्याशी को हराया। 1940–41 के व्यक्तिगत सत्याग्रह में जनपद के सैकड़ों सत्याग्रही जेल में गए और जेल पूरी तरह भर गयीं।

**झाँसी** जिले में राष्ट्रीय आंदोलन विभिन्न चरणों में यहां की जनता ने सक्रिय योगदान किया। झांसी के योगदान को निम्नांकित रूप में व्यक्त किया जा सकता है–

9 अस्त 1925 को क्रांतिकारियों ने काकोरी में पं0 रामप्रसाद विस्मिल के नेतृत्व में अंग्रेजी खजाना लूटा था। इन क्रांतिकारियों को पकड़ने के लिए पुलिस सक्रिय हो गयी। क्रांतिकारी छिन्न–भिन्न हो गए। शचींद्र नाथ के माध्यम से चंद्रशेखर आजाद ने झांसी को केंद्र बनाया और चुने हुए नौजवानों को सदस्य बनाया। जिनमें प्रमुख थे विश्वनाथ, गंगाधर, वैशम्पायन, सदाशिव राव मलकापुर और भगवान दास माहौर। चंद्रशेखर आजाद ओरछा में हरिशंकर ब्रह्मचारी के वेश में छद्‌मवेष में रहे।[2] आजाद के निर्देश पर भगवान दास माहौर और मलकापुर झांसी की ब्रह्मशाला को अन्यत्र ले गए। वे भुसावल में पकड़े गये। जलगांव की अदालत में मुकदमा चला। अदालत में उन्होंने पुलिस मुखबिर पर गोली चलायी। उन्हें लंबी सजाएं हुई।

झांसी जनपद में **नमक सत्याग्रह** 12 मार्च 1930 को औपारा (चिरंगाव) में करने का निश्चय हुआ। अतएव दो दिन पूर्व ही झांसी में सत्याग्रही इकट्‌ठे होने लगे थे। पहला जत्था रघुनाथ विनायक धुलेकर के नेतृत्व में बरूआसागर गया। दूसरा जत्था सीताराम भास्कर के नेतृत्व में निकला। तीसरा जत्था कुंजबिहारी लाल के नेतृत्व में चला।[3] हर जत्थे के

1. श्रीपत सहाय रावत : समरगाथा
2. राष्ट्रगौरव : बुन्देलखण्ड का स्वतंत्रता संग्राम, पृ0 130
3. वही सम्पादक : दशरथ जैन

सत्याग्रही हाथों में तिरगा झण्डा लेकर गीत गाते निकले। जाति धर्म का भेद भूलकर सभी सत्यग्रही देशभक्ति से सराबोर थे। बहुत से सत्याग्रही पकडे गए। उन्हें सजाएं दी गयीं।

सन् 1937 में उटकमंड बैंक डकैती और मद्रास बम काण्ड में आजन्म सजा पाए प्रसिद्ध क्रांतिकारी शंभूनाथ आजाद जेल से छूट कर आए और बरूआसागर में क्रांतिकारी संगठन तैयार किया। इसमें झांसी के नौजवानों वीर नारायन, बाबूराम श्रीवास्तव, रामसेवक रिछारिया और गगनलाल ने सक्रिय भाग लिया।

आर्य समाज आंदोलन गोवा आंदोलन, बेगार विरोधी आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन में रघुनाथ विनायक धुलेकर, आत्माराम गोविंद खरे, बाबू कालिका प्रसाद, कुंजबिहारी, रामेश्वर प्रसाद वर्मा, स्वामी सुराण्यानंद, कामरेड बेंजामिन्न अयोध्या प्रसाद के नेतृत्व में यहां की जनता ने महत्वपूर्ण भाग लिया।

**बांदा** में 1923 में ठाकुर जुगल किशोर जिला परिषद के अध्यक्ष बने। विधान परिषद चुनाव में स्वराज्य पार्टी के श्री प्रकाश जीते।

श्री चंद्रशेखर आजाद, योगेशचंद्र चटर्जी आदि नवयुवकों ने क्रांतिकारी दल का गठन किया तो बांदा के गोकुल भाई, मिथिला शरण, रामगोपाल गुप्त ने अस्त्र–शस्त्र इकट्ठे किये। श्री आजाद ने बांदा का दौरा किया।

नबम्वर 1929 में महात्मा गांधी, कस्तूरबा, सरोजनी नायडू बांदा आईं और सविनय अवज्ञा आंदोलन का वातावरण बना। 1930 में जब लाहौर कांग्रेस के अधिवेशन में पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास हुआ तो क्रांतिकारी दल ने 'सत्याग्रही' नामक समाचार पत्र साइक्लोस्टाईल मशीन से बांदा से छापा। 12 अप्रैल 1930 को विदेशी वस्त्रों की होली जलाई

गई और रामलीला मैदान में नमक बनाया गया। जिसके मास्टर नारायण प्रसाद, हर प्रसाद और मिथिला शरण सहित सैकड़ों सत्याग्रही गिरफ्तार हुए। 1931 ई0 में इरविन पैक्ट के साथ सत्याग्रही छोड़े गए।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जब कांग्रेस ने सत्याग्रह आंदोलन छेड़ा तो पं0 लक्ष्मी नारायण, चंद्रभूषण, बिहार खाँ, गोदीन शर्मा आदि गिरफ्तार हुए। सन् '1942 में भारत छोड़ो आंदोलन में बांदा के अनेक लोग जो मुबंई अधिवेशन के लिए गए थे, गिरफ्तार हुए। टेलीफोन के तार काटे गए, रेल पटरियाँ उखाडीं गईं और युवाओं द्वारा बांदा में भीषण ध्वंसात्मक गतिविधयां हुईं। सैकड़ों लोग गिरफ्तार हुए।'

1935 में बुंदेलखण्ड कांग्रेस की स्थापना हुई। इसकी संचालन समिति में पं0 लक्ष्मीनारायण, कुंवर हर प्रसाद जी सक्रिय रहे।

जबलपुर में 1925 में झण्डा सत्याग्रह में सुन्दर लाल, सुभद्रा कुमारी चौहान, नाथूराम मोदी, नरसिंह दास अग्रवाल के नेतृत्व में जबलपुर के हजारों लोगों ने भाग लिया। 1930 में जबलपुर में नमक सत्याग्रह और जंगल सत्याग्रह अभूतपूर्व रहा। सेठ गोविंददास और द्वारिका प्रसाद मिश्र के नेतृत्व में विशाल जनसमूह ने दुगावती की समाधि तक पदयात्रा की और पूर्ण आजादी प्राप्त की। 1932 में सिथिल होते सत्याग्रही आंदोलन को गति देने के लिए नेशनल स्काउट एसोशियेशन ने सवाई मल जैन के नेतृत्व में अभूतपूर्व योगदान दिया। इनके अन्य सहयोगी थे– नर्मदा प्रसाद सर्राफ, श्री प्रसाद दुबे, गणेश प्रसाद श्रीवास्तव आदि।

सुभाष चंद्र बोस जब कांग्रेस के अध्यक्ष बने तो जबलपुर में उत्साह की लहर जग उठी। सुभाष चंद्र बोस बंदी होकर दो बार जबलपुर आए।

---

सविनय अवज्ञा आंदोलन के समय डॉ0 राजेंद्र प्रसाद और नेहरू जी जबलपुर आए। उनके भाषण से उत्साहित होकर महाराजपुर में सत्याग्रह शुरू हुआ, जिसमें सेठ गोविंददास, काशीप्रसाद, हरमत राव, अब्दुल आदि गिरफ्तार हुए।

भारत छोड़ो आंदोलन के समय जब कांग्रेसी नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया तो जबलपुर में इस पर तीव्र प्रतिक्रिया हुई। 9 अगस्त 42 को तिलक भूमि में सार्वजनिक सभा की गई। 11 अगस्त को सत्याग्रहियों पर बर्बर लाठीचार्ज हुआ। 14 अगस्त को सत्याग्रहियों पर गोली चलाई गई, जिसमें गुलाब सिंह नामक युवक शहीद हुआ। भवानी प्रसाद तिवारी के नेतृत्व में 28 फरवरी 1945 में जबलपुर में स्थित सिग्नल व कोर में एक हड़ताल प्रारंभ हुई जिसमें एक हड़ताली की जवान ने कहा 'यद्यपि हम सब गुलामों के रूप में एकत्रित हुए हैं लेकिन गुलामों के रूप में मरना, नहीं चाहते हैं। अपने देश के लिए हम अपने खून की आखिरी बूंद तक बहा देंगे।'

इस घटना का उल्लेख तत्कालीन वायसराय लार्ड वेविल ने अपनी निजी डायरी में किया है।

**सागर** में 1926 में किसान सभा का गठन किया गया। 1926 में ही लाला लाजपतराय सागर आए। 1930 में सागर में जगह–जगह लोगों ने नमक सत्याग्रह किया। सैकड़ों आंदोलनकारी गिरफ्तार हुए। जेल में पुलिस और आंदोलनकारियों में टकराव भी हुआ।

1930 में ही सागर में 'हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' की गतिविधियां तेजी से बढ़ी। इसका एक प्रकोष्ठ सागर में भी स्थापित हुआ। सविनय अवज्ञा आंदोलन में भी सागर की जनता ने तेजी से भाग लिया। 1932 में महात्मा गांधी की गिरफ्तारी के बाद

सागर में दूसरा सविनय अवज्ञा आंदोलन चलाया गया। सरकार ने दमन चक्र तेज कर दिया। सागर म0 प्र0 के उन 9 जिलों में से था, जहां 'Un-Lawfull Assosiation Ordinance' 1932 लागू किया गया। सविनय अवज्ञा आंदोलन में सागर के हरिजन सेवक संघ, भीम अखाड़ा और गढ़ाकोटा की अछूतोद्धार सोसायटी ने महत्वपूर्ण योगदान दिया।

1934 में गांधीजी सागर आए। 1935 में कांग्रेस समाजवादी दल यहां गठित हुआ। 1942 में पवनार में विनोबा भावे द्वारा आयोजित सत्याग्रह में सागर जिले ने भी अपना यथोचित योगदान दिया। 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में सागर जिले में महिलाओं और छात्र/छात्राओं ने उत्साह से भाग लिया। 24 अगस्त 1942 को गढ़ाकोटा में ऐसे ही आंदोलनकारियों की भीड़ को तितर-बितर करने के लिए चलायी गई गोली से सांबूलाल जैन शहीद हो गया। जिसकी भीषण प्रतिक्रिया यहां हुई।

**ग्वालियर** में 1857 की क्रांति में ग्वालियर प्रमुख रण-स्थली रहा था। ग्वालियर राज्य में विद्यार्थी बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और झांसी जिले के क्रान्तिकारियों से यहां की जनता को बराबर प्रेरणा मिली।

1920-21 में गांधीजी के असहयोग आंदोलन का यहाँ भी प्रभाव पड़ा। श्री श्यामलाल पांडवी के नेतृत्व में यहां रचनात्मक कार्य-कलाप प्रारंभ हुए।

**गुना** में गोपी कृष्ण विजयवर्गीय और पोहरी में गोपालकृष्ण पौराणिक ने रचनात्मक क्रिया-कलाप शुरू किए। ग्वालियर की बालचंद संस्था ने 'वंदे मातरम' गीत को प्रमुख स्थान दिया और विलिंद जी का 'प्रताप-प्रतीज्ञा' नाटक अभिनीत किया। इन दोनों रचनाओं ने स्वतंत्रता का शंखनाद करके लोगों को प्रेरित किया।

---

ग्वालियर में राजनैतिक संगठन का सूत्रपात 1935–36 में हुआ। उत्तरदायी शासन की स्थापना का वास्तविक अल्टीमेटम जनवरी 1939 में दिया गया। 1940 में मुरैना में श्री रावल में बंद पाण्डवी जी का चित्र लगाया गया। 1940–42 में सत्याग्रही आंदोलनों में यहां की जनता ने भारी गिरफ्तारियां दीं। 18–20 अप्रैल 1947 को अखिल भारतीय देशी राज्य का अधिवेशन बड़े जोर–शोर से ग्वालियर में हुआ, जिसमें पं0 नेहरू और पट्टाभि सीहार मैया ने भाग लिया।

= = = =0= = = =

# अध्याय—6

## भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का अंतिम चरण एवं बुन्देलखण्ड की भूमिका

(i) सुभाष चन्द्र बोस एवं आजाद हिंद फौज

(ii) नौ सेना वायु सेना विद्रोह

(iii) स्वतंत्रता एवं बुन्देलखण्ड पर प्रभाव

(iv) भारतीय राजनीति एवं स्वतंत्रता आंदोलन में बुन्देलखण्ड की भूमिका का मूल्यांकन

1942 के विद्रोह के दमन के बाद, 1945 में युद्ध की समाप्ति तक देश में राजनीतिक गतिविधियां लगभग ठप रहीं। राष्ट्रीय आंदोलन के सर्वमान्य नेता जेलों में बंद थे और कोई नया नेता उनकी जगह नहीं ले सका था और न ही देश को नेतृत्व दे सका था। 1943 में बंगाल में आधुनिक इतिहास का सबसे बड़ा अकाल फूट पड़ा। कुछ ही महीनों में तीस लाख से अधिक लोग भूख से मर गए। इससे जनता एक भयानक गुस्से से भर उठी क्योंकि सरकार अगर चाहती तो इतने लोगों को अकाल से मरने से बचा सकती थी। फिर भी इस गुस्से को पर्याप्त राजनीतिक अभिव्यक्ति न मिल सकी।

## सुभाष चन्द्र बोस एवं आजाद हिन्द फौज :

इस समय राष्ट्रीय आंदोलन को देश के बाहर एक नई अभिव्यक्ति मिली। सुभाषचंद्र बोस मार्च 1941 में देश से बाहर निकल गए थे और सहायता के लिए सोवियत संघ जाना चाहते थे। लेकिन जून 1941 में सोवियत संघ भी जब मिन्न राष्ट्रों की ओर से युद्ध में उतरा तो वे जर्मनी चले गए। वहां से वे फरवरी 1943 में जापान के लिए चल पड़े ताकि जापानी सहायता से वे ब्रिटिश शासन के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष चला सके। भारत की स्वाधीनता के लिए सैनिक अभियान चलाने के उद्देश्य से उन्होंने सिंगापुर में आजाद हिंद फौज की स्थापना की। इसमें उनकी सहायता एक पुराने आतंकवादी क्रांतिकारी रास बिहारी बोस ने की। सुभाष चंद्र बोस के वहां पहुंचने से पहले एक सेना बनाने के लिए कुछ कम जजनरल मोहन सिंह कर चुके थे जो ब्रिटिश भारत की सेना में कप्तान थे। दक्षिण पूर्व एशिया में रहने वाले भारतीय तथा मलावा, सिंगापुर और वर्मा में जापानी सेनाओं द्वारा बंदी बनाए गए भारतीय सैनिक और अधिकारी बड़ी संख्या में आजाद हिंद फौज में शामिल हो गए। सुभाष चंद्र बोस ने, जिन्हें अब आजाद हिंद फौज के सिपाही **''नेताजी''** कहते थे, अपने अनुयायियों को

"जयहिंद" का मूलमत्र दिया। वर्मा से भारत पर आक्रमण करने में आजाद हिंद फौज ने जापानी सेना का साथ दिया। अपनी मातृ भूमि को स्वाधीन कराने के विचार से प्रेरित होकर आजाद हिंद फौज के सैनिक अधिकारी यह आशा करने लगे थे कि वे स्वतंत्र भारत की अस्थायी सरकार का प्रमुख सुभाष चंद्र बोस को बनाकर उनके साथ भारत में उसके मुक्तिदाताओं के रूप में प्रवेश करेंगे।

भारतीय क्रान्तिकारियों में नेताजी सुभाष चन्द्र बोस का मुख्य स्थान है। उनका सारा जीवन देश सेवा में बीत गया। उनका जन्म 23 फरवरी 1897 ई. में कटक नामक स्थान में हुआ था। उनके पिता का नाम जानकीदास था। सुभाष चन्द्र बोस बहुत ही तीक्ष्ण बुद्धि के व्यक्ति थे। उन्होंने 1920 में आई.सी.एस. की परीक्षा भी पास कर ली थी। परन्तु अंग्रेजों की नौकरी नहीं की। उन्होंने अंग्रेजों की गुलामी की अपेक्षा अपने आपको भारत की मुक्ति के लिये लगा दिया। सुभाष चन्द्र बोस ने लंदन से आते ही पहले गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन में भाग लेने का विचार किया। परन्तु उनको कुछ तसल्ली न हुई। इसके बाद उन्होंने देशबन्धु चितरंजनदास से भेंट की। देशबन्धु चितरंजन दास इन दिनों राष्ट्रीय भावनायें उत्पन्न करने के लिये एक पत्र निकाल रहे थे और उन्होंने एक राष्ट्रीय कालेज भी खोला था। चितरंजन दास ने इस पत्र की सारी जिम्मेदारी सुभाष चन्द्र बोस को दे दी। सुभाष ने इस समाचार पत्र में अपने क्रान्तिकारी विचारों का पूरे जोर–शोर से प्रचार करना शुरु कर दिया। उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता और अंग्रेजी साम्राज्यवाद के नाश के लिये खूब प्रचार किया। इसलिये 1921 ई. में उन्हें 6 महीने की कैद की सजा हुई। जेल से वापस आने के बाद सुभा ा ने युवक दल को संगठित किया, जिसका उद्देश्य स्वराज प्राप्ति था। उन्होंने चितरंजन दास के साथ मिलकर स्वराज्य पार्टी में कार्य किया।[1]

---

1. मनमथ नाथ गुप्त : क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास

1923 ई. में वे कलकत्ता के मेयर चुन लिये गये। परन्तु 25 अक्टूबर 1924 को उनको दुबारा गिरफ्तार कर लिया गया और उनको माण्डले (वर्मा) की जेल में भेज दिया गया। यहाँ उनका स्वास्थ्य खराब हो गया और 1926 में आपको बिना शर्त के छोड़ दिया गया। 1927 में इन्होंने धारा सभा (असेम्बली) का चुनाव लड़ा और इण्डीपेन्डेन्स लीग का संगठन किया तथा साइमन कमीशन का बहि  कार किया। 13 सितम्बर 1929 को यतीन्द्र नाथ लाहौर में शहीद हो गये थे। उनकी अर्थी कलकत्ता लायी गयी थी। उनका बड़ा भारी जुलूस निकाला गया था। सुभाष ने इस समय बड़ा ओजस्वी भाषण दिया। इसलिये सरकार ने उन्हें 6 महीने की कैद की सजा दी। 1931 में उन्हें पुनः 6 माह की कैद की सजा दी गई। जेल से छूटने के बाद मथुरा में युवकों के सम्मेलन में सुभाष ने फिर सरकार के विरुद्ध भाषण दिया। सरकार ने उन्हें फिर गिरफ्तार कर लिया। परन्तु स्वास्थ्य खराब होने के कारण छोड़ दिया। वे स्विट्जरलैण्ड इलाज कराने गये। 1937 ई. में सुभाष को भारत आने की आज्ञा मिल गयी। 1938 ई. में वे हरिहरपुर अधिवेशन में कांग्रेस के प्रधान बने। इसमें उन्होंने जोर–शोर से स्वतंत्रता का प्रचार करना शुरु कर दिया। उन्होंने कहा कि कांग्रेस को स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये तिथि निश्चित कर लेनी चाहिये। यदि ब्रिटिश सरकार उस समय तक स्वतंत्रता न दे तो हमें जोरदार आन्दोलन करना चाहिये। सुभाष चन्द्र बोस के इन विचारों से महात्मा गाँधी सहमत नहीं थे।

इसलिये अगले वर्ष जब सुभाष चन्द्र बोस कांग्रेस के प्रधान पद के लिये दोबारा खड़े हुये तो उन्होंने उनका घोर विरोध किया और उनके मुकाबले में पट्टाभि सीतारमैया को प्रधान बनवाने का यत्न किया। परन्तु महात्मा गाँधी को सफलता नहीं मिली और सुभाष चन्द्र बोस दुबारा प्रधान चुने गये। इसके बाद भी महात्मा गाँधी का विरोध जारी रहा। अन्त में तंग

आकर सुभाष ने कांग्रेस छोड़ दी और अगामी दल की नींव डाली। जब सुभाष चन्द्र बोस अपने दल द्वारा क्रान्तिकारी भावनायें भर रहे थे। उन्हीं दिनों लन्दन में सुनाम (पाटियाला) के सरदार ऊधम सिंह ने ओडवायर पर गोली चलाई। ओडवायर पंजाब के गवर्नर रह चुके थे और उन्हीं के आदेश से जलियाँ वाला बाग, अम तसर में निहत्थे लोग गोलियों से मार दिये गये थे। इसी का बदला लेने के लिये सरदार ऊधम सिंह 1919 ई. में लन्दन चले गये थे। उनका क्रान्तिकारी दल से सम्बन्ध रह चुका था। वे बहुत समय से ओडवायर को गोली मारने की फिक्र में थे। लन्दन की एक सभा में ओडवायर आये थे। वहीं ऊधम सिंह ने उन पर गोलियाँ चलाईं। ओडवायर गोली से मर गये। सरदार ऊधम सिंह को फाँसी की सजा दी गई।

22 जून 1940 ई. को सुभाष चन्द्र बोस वीर सावरकर से मिले। इन दिनों दूसरा महायुद्ध छिड़ गया था। अंग्रेज जाति जर्मनी से युद्ध में फँसी हुई थी और उसे सफलता नहीं मिल रही थी। सुभाष बोस ने विनायक दामोदर **सावरकर** से कहा – **"मैं कलकत्ता में अंग्रेजों की सार्वजनिक स्थानों से मूर्तियों को हटाने के लिये आन्दोलन शुरु करने वाला हूँ।"**

**सावरकर** ने कहा – जब अंग्रेज भयानक युद्ध में फँसे हुये हैं, तो उस समय आप जैसे योग्य व्यक्तियों को छोटी–छोटी स्थानीय बातों पर आन्दोलन चलाकर अंग्रेजों को जेलखाने में सड़ने का क्या लाभ है ? **सावरकर** ने कहा – "रासबिहारी बोस की तरह अंग्रेजों को धोखा देकर भारत से बाहर चले जाओ। जो कैदी जर्मनी और इटली के हाथों में पड़ जाये, उन्हें सही नेतृत्व दो। हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता की घोषणा करो। जब जापना युद्ध में शामिल हो जाये तो हिन्दुस्तान को स्वतंत्र कराने के लिये बंगाल की खाड़ी या वर्मा की तरफ से आक्रमण करो, इसके बिना भारत को स्वतंत्र कराना कठिन है।"[1]

---

1. आचार्य बालशास्त्री : आर्म्ड स्ट्रगल फ्रीडम

सुभाष वीर सावरकर की सलाह का बहुत ही अधिक प्रभाव पड़ा, उन्होंने अपनी सारी योजनायें बाद में इसी के अनुसार बनाईं। उन्हें विश्वास हो गया था कि अन्दरूनी संघर्ष के अतिरिक्त जब तक बाहर से ऐसा यत्न नहीं किया जायेगा तो भारत स्वतंत्र नहीं होगा।

जब सुभाष बोस कलकत्ता आये तो सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। सरकार उनकी सब गतिविधियों पर कड़ी निगरानी रखती थी। सुभाष ने अनशन रख लिया। सरकार ने उनको मुक्त कर दिया परन्तु उनके घर पर पुलिस पहरा लगा दिया। सुभाष ने बीमारी का बहाना किया अपना कमरा बन्द रखा और सबसे मिलना जुलना छोड़ दिया। यह बात फैल गई कि वह राजनीति को छोड़कर अध्यात्मवाद में लग गये हैं।

16 जनवरी 1941 को रात्रि के आठ बजे वे पुलिस को चकमा देकर पठान के वेष में अपने मकान से बाहर निकल गये और गाड़ी में सवार होकर कलकत्ता से पेशावर पहुँच गये। उनके साथी भगतराम ने उन्हें 21 जनवरी 1941 को काबुल पहुँचा दिया। इसके बाद सुभाष जर्मनी पहुँच गये वहाँ हिटलर ने उनकी मुलाकात हुई। हिटलर ने उन्हें हर तरह की सहायता देने का वचन दिया। जो भी भारतीय सैनिक इटली और जर्मनी के हाथ में पड़ गये थे उन सबको मिलाकर उन्होंने मुक्ति सेना बनाई और इसका दफ्तर ड्रेसडन (जर्मनी) में बनाया।

7 दिसम्बर 1941 को जापना जर्मनी का साथ देने के लिये अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध में शामिल हो गया। जापान ने 16 फरवरी 1942 ई. को संसार के सबसे प्रसिद्ध अंग्रेजों के समुद्री गढ़ सिंगापुर को फतह कर लिया। इसके बाद जापान ने मलाया से वर्मा तक का सारा प्रदेश फतह कर लिया।

इन दिनों भारत के पुराने व प्रसिद्ध क्रान्तिकारी रासबिहारी बोस जापान में थे।

उन्होंने 18 मार्च 1942 को भारतीय नेताओं का एक सम्मेलन बुलाया। उसमें उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता लीग तथा आजाद हिन्द फौज बनाने की घोषणा की। इसके बाद 14 जून से 23 जून 1942 तक बैंकाक में रास बिहारी की अध्यक्षता में एक और सम्मेलन हुआ जिसमें जापान से वर्मा तक देशों में रहने वाले असंख्य भारतीय सम्मिलित हुये। इसमें यह प्रस्ताव पास किया गया कि आजाद हिन्द फौज भारत की स्वतंत्रता के अतिरिक्त और किसी उद्देश्य के लिये प्रयोग में लाई जाये। यह भी माँग की गई कि जापान इस सेना को भारत की स्वतंत्र सेनो के रूप में मान्यता दे। इस आजाद हिन्द फौज में 50,000 भारतीय सैनिक भर्ती हो गये। इस कान्फ्रेन्स में यह निर्णय किया गया कि सुभाष चन्द्र बोस को टोकियो आने का निमंत्रण दिया जाये। इस निमंत्रण के अनुसार नेताजी सुभाष चन्द्र बोस अनेक रुकावटों को पार करते हुये 20 जून 1943 को टोकियो पहुँच गये। इधर भारत में महात्मा गाँधी ने "अंग्रेजो भारत छोड़ो" आन्दोलन चलाया हुआ था।

टोकियो पहुँचकर सुभाष बोस ने घोषणा की – "जो अवसर इस दूसरे महायुद्ध द्वारा आया है ऐसा अवसर शायद भविष्य में सौ वर्षों में भी न आये। इसलिये हमारा यह पक्का इरादा है कि भारत की स्वतंत्रता के लिये इस अवसर का पूरा लाभ उठाया जाये। हमारा यह कर्तव्य है कि स्वतंत्रता का मूल्य चुकाने के लिये अपना खून दें। जिन्होंने हमारे विरुद्ध हथियार उठाये हैं उनका उत्तर हथियारों से ही दिया जाये। यह हमारा कर्तव्य है।"

21 जून 1943 को सुभाष चन्द्र बोस ने टोकियो रेडियो से घोषणा की कि अंग्रेजों से यह आशा करना कि वे अपने साम्राज्य को नष्ट कर देंगे, मूर्खता है। हमें स्वयं भारत में से और भारत के बाहर से भी स्वतंत्रता के लिये संघर्ष करना पड़ेगा। केवल ऐसी लड़ाई से हमें स्वतंत्रता मिल सकती है। 2 जुलाई 1943 को सुभाष बोस सिंगापुर पहुँचे। वहाँ लाखों

व्यक्तियों ने आपका हार्दिक स्वागत किया। उन्होंने वहाँ अपने भाषण में कहा – "हमारी लड़ाई प्रत्येक प्रकार के साम्राज्यवाद के विरुद्ध है चाहे वह अंग्रेजी साम्राज्यवाद हो या जापानी, हमें देशद्रोहियों से बचना चाहिये। चलो दिल्ली, जो भी तुम्हें प्राप्त होगा वह तुम्हारा होगा परन्तु इस समय मैं तुम्हें भूख, प्यास, कठिनाइयों और यहाँ तक कि मृत्यु के अतिरिक्त और कुछ नहीं दे सकता। हमें अपना सर्वस्व बलिदान कर देना चाहिये ताकि भारत स्वतंत्र हो क्योंकि उसमें सब कुछ आ गया।"

5 जुलाई 1943 को रास बिहारी बोस ने भारतीय स्वतंत्रता लीग की अध्यक्षता सुभाष को दे दी और स्वयं केवल मुख्य परामर्शदाता बन गये। 21 अक्टूबर 1943 ई. को सुभाष चन्द्र बोस ने आजाद हिन्द फौज के सर्वोच्च सेनापति की हैसियत से स्वतंत्र भारत की अस्थाई सरकार बनाई। इसमें सुभाष चन्द्र बोस ने शपथ ग्रहण की – "मैं परमात्मा के नाम पर पवित्र शपथ ग्रहण करता हूँ कि मैं भारत और उसके 38 करोड़ लोगों को स्वतंत्र कराऊँगा और मैं इस पवित्र युद्ध को अपने जीवन की अन्तिम साँस तक जारी रखूँगा। मैं सदा भारत का सेवक रहूँगा और अपने 38 करोड़ भाइयां तथा बहिनों के हितों की देखभाल करना मेरा परम कर्तव्य होगा। स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद भी स्वतंत्रता को कायम रखने के लिये मैं अपने रक्त की अन्तिम बूँद भी सदा बहाने को तैयार रहूँगा।"

जापान, जर्मनी, वर्मा, फिलीपीन्स, कोरिया, इटली, चीन, मानचूको और आयरलैण्ड ने सुभाष चन्द्र बोस की इस अस्थाई सरकार को मान्यता भी दे दी। 8 नवम्बर 1943 को जापान ने अण्डमान और निकोबादरद्वीप नेता जी की इस अस्थाई सरकार और अण्डमान का नाम शहीद द्वीप तथा निकोबार का नाम स्वराज द्वीप रखा क्योंकि यहाँ हजारों क्रान्तिकारी

अंग्रेजों की जेलों में मातृभूमि की स्वतंत्रता का अरमान लिये हुये मर गये थे। 30 दिसम्बर 1943 को स्वतंत्र भारत का झण्डा इन द्वीपों पर फहरा दिया गया।

4 फरवरी 1944 ई. को आजाद हिन्द सेना ने अंग्रेजों पर आक्रमण किया और राम, कोहिया, पलेल, तिहिम इत्यादि भारतीय प्रदेशों को अंग्रेजो से मुक्त करा लिया। 22 सितम्बर 1944 को सुभाष ने शहीदी दिवस मनाया। उसमें उन्होंने आजाद हिन्द फौज के सिपाहियों को कहा – **"हमारी मातृभूमि स्वतंत्रता की खोज में है, तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा। यह स्वतंत्रता की देवी की माँग है।"**

7 मई 1945 को जापान ने हार मान ली। 13 अगस्त 1945 को अमेरिकन सैनिकों ने जापान के प्रमुख नगर हिरोशिमा और नागासाकी पर दो अणु बम गिराये। इससे इतनी सख्त तबाही और बरबादी हुई कि जापान ने घुटने टेक दिये और अपनी हार मान ली। जापान के अधीन भी जो प्रान्त हो गये थे, सब दुबारा अंग्रेजों के कब्जे में आ गये। ऐसी परिस्थितियों में सुभाष को टोकियो की तरफ भागना पड़ा। कहा जाता है कि जिस हवाई जहाज में नेता जी सुभाष जा रहे थे उसमें फार्मूसा द्वीप के पास आग लग गई और उनका देहान्त हो गया। परन्तु इस बारे में सहमति नहीं है।

सुभाष बोस भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अमर सेनानी थे। वर्मा की विजय के बाद अंग्रेजों ने आजाद हिन्द फौज के सिपाहियों पर मुकद्दमे चलाये। वे उन सिपाहियों को मृत्युदण्ड देना चाहते थे। आजाद हिन्द फौज के सेनापति मेजर जनरल शाहनबाज, सहगल तथा ढिल्लो पर दिल्ली के लाल किले में मुकद्दमा चलाया गया। श्री जवाहर लाल नेहरू तथा भूला भाई देसाई और तेजबहादुर सप्रू ने जजों के सामने यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया कि पराधीन देश को विदेशी शासकों के विरुद्ध स्वतंत्रता संघर्ष करने का पूर्ण अधिकार है।

इसलिये आजाद हिन्द फौज के इन सैनिको ने अपराध नही किया है और उनको छोड दिया जाये। दूसरी ओर भारतीय सेनाओं ने इस विषय मे बड़े सैनिक अधिकारियों की राय पूछी। आजाद हिन्द फौज के सैनिकों की रिहाई के पक्ष में अधिकांश अधिकारियों की राय थी।[1]

इससे स्पष्ट होता है कि सेना में इस समय बड़ी भारी जागृति उत्पन्न हो चुकी थी। अब वह देश की पराधीनता को सहन नहीं कर सकती थी। जहाँ महात्मा गाँधी ने जनता को स्वतंत्रता के लिये तैयार करने में अपना सारा जीवन लगा दिया, वहीं सुभाष चन्द्र बोस को यह भी श्रेय प्राप्त है कि उसके कार्यों से भी जहाँ जनता में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध हिम्मत बँधी वहीं भारतीय सेना में भी क्रान्ति की लहर फैल गई कि अंग्रेजों को दबाना असम्भव हो गया। जब सेना ने आजाद हिन्द फौज के सैनिकों के लिये रिहाई की माँग की तो ब्रिटिश सरकार को झुकना पड़ा और उन्होंने शाहनवाज, ढिल्लो और सहगल को मुक्त कर दिया।[2]

इससे अंग्रेजों को सर्वथा अहसास हो गया कि भारतीय सेना पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। बाद में जल सेना और वायु सेना ने विद्रोह करके सुभाष द्वारा फैलाई गई जागृति को चरितार्थ कर दिया।

## नौसेना एवं वायुसेना का विद्रोह (1946)

जिन दिनों आजाद हिन्द फौज के सैनिकों पर मुकद्दमे चल रहे थे उन्हीं दिनों जनता में उनको छुड़ाने के लिये भारी आन्दोलन चल रहा था। उधर सेना में क्रान्ति की लहर फैल चुकी थी। ऐसी स्थिति में आग भड़काने के लिये जरा सी चिनगारी की आवश्यकता थी। अंग्रेजों के दुर्व्यवहार से तंग आकर 20 जनवरी 1946 को कराँची में वायु सेना के सिपाहियों ने हड़ताल शुरु कर दी। इसके बाद यह हड़ताल बम्बई, लाहौर और दिल्ली में भी फैल गई। 5,200 वायु सैनिकों ने इस हड़ताल में भाग लिया। नौसेना ने भी वायु सेना का अनुकरण

---

1. मन्मथ नाथ गुप्त 'क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास
2. मन्मथ नाथ गुप्त 'क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास

किया। 19 फरवरी 1946 को 5,000 नौसैनिकों ने हडताल शुरु कर दी। उन्होंने अपनी छातियों पर आजाद हिन्द फौज के बैज लगा लिये। 21 फरवरी 1946 को यह हडताल नौसेना के विद्रोह के रूप में फैल गई और यहाँ बम्बई के अतिरिक्त कलकत्ता, दिल्ली, कराची और मद्रास में फैल गई। अंग्रेजों ने इस विद्रोह को दबाने के लिये गोलियाँ चलाई, गोलियों का जबाब गोलियों से दिया गया। बड़ी कठिनता से सरदार वल्लभ भाई पटेल ने समझौता कराया। इसके बाद ब्रिटिश सरकार को यह विश्वास हो गया कि भारतीय जनता और सेना अब इतनी जाग चुकी है कि उसको ब्रिटिश सेना द्वारा गुलाम नहीं रखा जा सकता। इसलिये ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली ने घोषणा की कि अंग्रेज भारत को छोड़ जायेंगे और भारत को स्वतंत्रता दे दी जायेगी।

जब भारत को स्वतंत्रता देने के लिये स्वतंत्रता बिल ब्रिटिश संसद में लाया गया, तो उस समय विरोधी दल के नेता चर्चिल ने ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली पर आक्षेप किया कि उसने उस अंग्रेजी साम्राज्य को नष्ट कर दिया जिसको अंग्रेजों ने अपने त्याग एवं बलिदान के बाद पैदा किया था। इस पर ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने उत्तर दिया – **"ब्रिटेन भारतीयों को स्वतंत्रता दे रहा है क्योंकि भारतीय सेना अब ब्रिटेन की तरफ वफादार नहीं रही है और ब्रिटेन भारत को अधीन रखने के लिये बहुत भारी सेना भारत में नहीं रख सकता है।"**

इससे यह स्पष्ट होता है कि जब जनता के अतिरिक्त सैनिकों में भी क्रान्ति की लहर दौड़ गई तो अंग्रेजों के पास भारत छोड़ने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रहा। हमें यह कदापि नहीं भूलना चाहिये कि सेना में इस क्रान्ति की लहर को फैलाने में सुभाष चन्द्र बोस का अद्वितीय योगदान है।

---

सुभाष चन्द्र बोस इत्यादि क्रान्तिकारी भी यह समझते थे कि देश मे अन्दरूनी स्वतंत्रता आन्दोलन को किसी बाहरी सशक्त आन्दोलन से शक्ति देना जरूरी है, वरना अंग्रेज नहीं निकलेंगे। इसलिये उन्होंने जापानियों और जर्मनी की सहायता माँगी थी और उन्होंने श्री मोहन सिंह द्वारा भारत की स्वतंत्रता के लिये गठित आजाद हिन्द फौज का नेतृत्व किया। आजाद हिन्द फौज के कार्यों और बाद में उनके सैनिकों पर चलाये गये मुकद्दमों से सेना में बड़ी क्रान्ति की लहर आ गई।

इस तरह से कांग्रेस के संवैधानिक आन्दोलन और क्रान्तिकारी आन्दोलन ने एक दूसरे के लिये पूरक का कार्य किया। ब्रिटिश सत्ता, सेना में बड़ी क्रान्ति की लहर से बहुत घबराती थी।

19 फरवरी 1946 ईसवी को जल सेना ने विद्रोह कर दिया। इन घटनाओं ने अंग्रेजों की आँखें खोल दीं और उन्होंने समझ लिया कि भारतीय रा  ट्रवाद को अब सेना में घुसने से नहीं रोका जा सकता है क्योंकि भारत की सेना में इतनी ब्रिटिश सेना नहीं थी कि वह सब जगह भेजी जा सकती।

सेना के इस रोष से ब्रिटिश सत्ता घबराती थी। उसे यह विश्वास हो गया था कि उसका शासन काल अब यहाँ समाप्त होने ही वाला है। सेना मे बड़ी क्रान्ति के सैलाब को मुश्किल से शान्त किया गया। सेना में बढ़ी इस क्रान्ति की लहर से ब्रिटिश सत्ता घबराती थी।

## स्वतंत्रता एवं बुन्देलखण्ड पर उसका प्रभाव

बुन्देलखण्ड की जनता ने भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रत्येक चरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया। बुन्देलखण्ड में स्वतंत्र रजवाड़े नाम मात्र के ही शेष रह गये थे। प्रमुख रियासत ग्वालियर, दतिया व छतरपुर की थी। 1946—47 में रजवाड़ों में भी जन

आन्दोलनों की एक नई लहर उठी जिसमें हर जगह राजनीतिक अधिकारों तथा संविधान सभा में निर्वाचित प्रतिनिधित्व की माँग की जा रही थी। पं. जवाहर लाल नेहरू ने ग्वालियर में घोषणा की थी कि जो रजवाड़े संविधानसभा में सम्मिलित होने से इन्कार करते हैं उन्हें शत्रुतापूर्ण माना जायेगा। सरदार पटेल और वी.पी. मेनन ने रजवाड़ों पर अंकुश लगाने की महत्वपूर्ण नीति तैयार की।[1] बुन्देलखण्ड में रजवाड़ों की जनता के दबाव से और कांग्रेस की कुशल कूटनीति से सभी रजवाड़े भारतीय संघ में विलय के लिये स्वेच्छा से तैयार हो गये।

15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। बुन्देलखण्ड की जनता ने भी पलक पाँवड़े बिछाकर स्वतंत्रता के प्रभात का स्वागत किया। यद्यपि भारतीय स्वाधीनता देश के विभाजन एवं साम्प्रदायिक दंगों का दंश लेकर आयी थी। जिससे सारा देश दुःखी था। महात्मा गाँधी ने 1947 में अपने जन्म दिन पर दुःखी होकर उद्‌गार व्यक्त किये – "ईश्वर से वे प्रार्थना करेंगे कि वह मुझे आँसुओं की इस घाटी से उठा ले और मुझे उस हत्याकाण्ड का असहाय दर्शक न बना रहने दे जो बर्बर बन चुका मनु य कर रहा है। भले ही वह स्वयं को मुसलमान या हिन्दू या और कुछ क्यों न कहता हो।"[2]

पं. जवाहर लाल नेहरू ने इस काल का चित्रण करते हुये कहा – "भय और घृणा ने हमारे मन को जकड़ लिया था और सभ्यता के सारे बन्धन टूट चुके थे। एक दरिंदगी से दूसरी दरिंदगी देखने में आई। मानव शरीर धारियों प्राणियों की निर्मम पशुता देखकर हृदय एकाएक शून्य से भर उठा . . . . हम मरने वालों और मर रहे लोगों के प्रति और मौत से भी अधिक भयानक पीड़ा उठा रहे लोगों के प्रति दुःखी थे। इससे भी अधिक दुःखी थे हम भारत, अपनी साझी माता के प्रति, जिसकी मुक्ति के लिये हम इतने वर्षों से प्रयास कर रहे थे।[3]

---

1. सुमित सरकार : आधुनिक भारत पृ0 473
2. विपिन चन्द्रा : आधुनिक भारत पृ0 237
3. विपिन चन्द्रा : आधुनिक भारत

सौभाग्य से बुन्देलखण्ड क्षेत्र साम्प्रदायिक दंगों की इस आग से अछूता रहा और यहाँ साम्प्रदायिक सद्भाव रखते हुये लोगों ने स्वतंत्रता का स्वागत किया।

भारतीय स्वतंत्रता उपनिवाद के विघटन की एक शुरुआत थी।[1] एक अर्थ में स्वाधीनता की प्राप्ति से केवल विदेशी शासन की समाप्ति हुई थी। पर सदियों का पिछड़ापन, पूर्वाग्रह, असमानता और अज्ञान अभी भी देश पर हावी थे और पुनर्रचना का लम्बा कार्य अभी शेष था। रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने 1941 में कहा था – **''भाग्य का चक्र किसी न किसी दिन अंग्रेज जाति को बाध्य करेगा कि वह अपने भारतीय साम्राज्य से हाथ धो ले। लेकिन वे अपने पीछे किस तरह का भारत, कितनी बुरी बदहाली छोड़ जायेंगे ? जब उनके सदियों पुराने प्रशासन का स्रोत अंततः सूखेगा तो कितना कूड़ा करकट और कीचड़ वे अपने पीछे छोड़ जायेंगे।''**

बुन्देलखण्ड क्षेत्र की स्थिति भारत के पिछड़े क्षेत्रों से भिन्न न थी। अशिक्षा, अंधविश्वास, जातीय भेदभाव से यहाँ का सामाजिक परिवेश आछन्न था। स्वतंत्रता का प्रभात इनसे मुक्ति का अग्रदूत था।

स्वाधीनता के संघर्ष ने औपनिवेशिक शासन को ही नहीं उखाड़ फेंका था। बल्कि नये भारत की एक तस्वीर भी सामने रखी थी। यह तस्वीर एक लोकतांत्रिक, नागरिक स्वतंत्रताओं से भरपूर एवं धर्मनिरपेक्ष भारत की थी। यह तस्वीर स्वाधीन, आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था, सामाजिक और आर्थिक समानता और राजनीतिक रूप से जागरूक और सक्रिय जनता पर आधारित भारत की थी। इस तस्वीर को मूर्तरूप देने का प्रयास संविधान सभा ने स्वतंत्र भारत का नया संविधान बनाकर किया।

---

1. सुमित सरकार : आधुनिक भारत पृ0 475

## भारतीय राजनीति एवं स्वतंत्रता आन्दोलन में बुन्देलखण्ड की भूमिका का मूल्यांकन

बुन्देलखण्ड जिसे भारत वर्ष का हृदय कहते हैं, भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। रामायण काल में बाल्मीकि का आश्रम व चित्रकूट में राम की भूमिका इसी क्षेत्र से सम्बन्धित रही। महाभारत काल का यह एक प्रमुख केन्द्र रहा। महर्षि पाराशर, महर्षि वेदव्यास इसी क्षेत्र के थे। चन्देरी के शिशुपाल का राज्य भी इसी क्षेत्र में था। गुरु द्रोणाचार्य का जन्म भी झाँसी के पूर्व में बाघाट नामक स्थान पर हुआ था।[1] चन्देलों का राज्य 300 वर्षों तक इस क्षेत्र में रहा और तत्कालीन भारतीय राजनीति में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही।

चन्देलों के पश्चात् बुन्देलों का शासन इस क्षेत्र में रहा। बुन्देलों में शौर्य और पराक्रम की गाथाओं से कोई भी देशवासी अनजान नहीं है। वीर सिंह, जुझार सिंह, चंपत राय और महाराजा छत्रसाल ने बुन्देली राज्य की स्थापना व सुदृढ़ता में महत्वपूर्ण योगदान दिया। मध्य कालीन भारत की राजनीति में बुन्देलों व मुगलों के बीच स्वाधीनता संघर्ष वर्षों चला। छत्रसाल ने मुगलों को पराजित कर एक स्वाधीन विशाल बुन्देला राज्य की स्थापना की।

छत्रसाल के समय ही बुन्देलों और मराठों में घनिष्ठता बढ़ी और कालान्तर में इस क्षेत्र के बड़े भाग पर मराठों का वर्चस्व स्थापित हुआ। मराठों ने अंग्रेजों से संघर्ष किया।

प्रथम स्वाधीनता संग्राम 1857 में बुन्देलखण्ड भारतीय राजनीति का प्रमुख केन्द्र बना रहा। महारानी लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे, नाना साहब, झलकारी बाई, मर्दन सिंह बाँदा के नबाब ने प्रथम स्वाधीनता संग्राम में इस क्षेत्र का कुशल नेतृत्व किया।

कांग्रेस की स्थापना के पश्चात् राष्ट्रीय आन्दोलन की दोनों धाराओं में इस क्षेत्र का योगदान रहा। स्वदेशी आन्दोलन में इस क्षेत्र की जनता ने बढ़ चढ़कर भाग लिया। वहाँ क्रान्तिकारी आन्दोलन में क्रान्तिकारी पं. परमानन्द ने गदर पार्टी की गतिविधियों में बढ़ चढ़कर

1. मोतीलाल त्रिपाठी 'अशांत': बुन्देखण्ड दर्शन पृ0 13

भाग लिया। क्रान्तिकारी आन्दोलन के द्वितीय चरण में जहाँ चन्द्रशेखर आजाद, गंगाधर, शिम्वायन, मास्टर रुद्र नारायण सिंह तथा सदाशिवराव मालकार ने इस क्षेत्र में क्रान्तिकारी गतिविधियों का नेतृत्व किया और यहाँ के युवाओं का सहयोग लिया। वहाँ अहिंसावादी आन्दोलन में दीवान शत्रुघ्न सिंह, रानी राजेन्द्र कुमारी, रामगोपाल गुप्त, लक्ष्मी नारायण अग्निहोत्री, रामसेवक रिछारिया, पं. चतुर्भुज शर्मा, बेनी माधव तिवारी, मन्नीलाल पाण्डेय आदि ने असहयोग आन्दोलन, सविनय अवज्ञा आन्दोलन एवं भारत छोड़ो आन्दोलन में यहाँ की जनता का नेतृत्व किया और स्वाधीनता के यज्ञ में इस क्षेत्र की आहुति दी।

बुन्देलखण्ड शौर्य और पराक्रम की भूमि रही है और भारतीय संस्कृति व सभ्यता की रक्षा के लिये इस क्षेत्र का अमूल्य योगदान रहा है। यहाँ का इतिहास जितना प्रेरक और रोमांचकारी है उतना किसी अन्य क्षेत्र में दुर्लभ है। इसका अतीत अत्यन्त गौरवशाली था। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में यहाँ के क्रान्तिकारियों का योगदान सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहा है।

= = = =0= = = =

# उपसंहार

बुन्देलखण्ड युग–युगों से भारत की राजनीति में एक महात्वपूर्ण स्थान रखता है। इस भू–भाग का संयोग भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की रक्षा के लिए अमूल्य रहा है। कालपी वेदव्यास की जन्मभूमि रही है। पाराशर ऋषि का कर्मक्षेत्र भी यही रहा है, जिनका उल्लेख महाभारत में है। यहाँ बाल्मीकी आश्रम भी है। यहाँ के स्वर्णगिरि और कुडलपुर अन्य प्रसिद्ध तीर्थ हैं। यहाँ जैन धर्म की समृद्धि हुई।

बुन्देलखण्ड का अतीत अत्यंत समुज्जवल और गौरवशाली था। यहाँ की संस्कृति और सभ्यता प्राचीन काल में अत्यंत उच्च स्तर पर आसीन थे। दुर्ग, प्रासाद, मंदिर के भग्नाशेष मौन साधक की तरह मौन वाणी में अपने चरमोत्कर्ष की गाथा गुनगुनाते हैं।

साहित्यिक, सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक एवं कलात्मक तथा प्राकृतिक और भौगोलिक, दृष्टियों से थी। बुन्देलखण्ड का इतिहास बड़ा गौरवपूर्ण रहा है। यहां की रत्नगर्भा भूमि में जहां रणबांकुरे आल्हा–ऊदल, विराटा की पद्मिनी, वीर सिंह जूदेव छत्रसाल, चंपतराम, हरदौल, दुर्गवती, रानीलक्ष्मीबाई, उत्पन्न हुए हैं जिनके शौर्य और पराक्रम की गाथाएं आज भी जीवंत हैं। यहां संगीत सम्राट तानसेन बैजू, मृदंगाचार्य, कुदऊ, उस्ताद आदिल खाँ आदि कलाकारों ने अपनी रागिनियों द्वारा इसके वैभव को बढ़ाया है। यह भूमि बाल्मिकि, व्यास, भवमूति, जगनिक, तुलसी, केशव, बिहारी, पद्माकर, ईसुरी, मुंशी अजमेरी, मैथिलीशरण गुप्त, सियाराम शरण गुप्त, सुभद्रा कुमारी चौहान, काशीराम व्यास, डॉ0 वृंदावन लाल वर्मा, सेठ गोविंददास जैसे साहित्यिक मनीषियों से समृद्ध रही है, वहाँ विश्वविजयी गामा, ध्यानचंद, खिलाड़ी रूप सिंह चित्रकार कालीचरण और मूर्तिकार मास्टर रूद्रनारायण जैसे विविध पक्षों के व्यक्तित्व इस भूमि की ही देन है।[1]

बुंदेलखण्ड के मंदिरों की मूर्तिकला विश्व को आश्चर्य चकित करने वाली है। खजुराहो, देवगढ़, अजयगढ़, चंदेली तथा ग्वालियर आदि का पुरातत्व तथा स्थापत्य केंद्रों और

1. मोतीलाल तिवाठी 'अशांत' : बुन्देलखण्ड का इतिहास

चित्रकूट, ओरछा, कालिंजर, अमरकंटक, सूर्य मंदिर उन्नाव–बालाजी आदि तीर्थों का इस क्षेत्र में सम्मिलन हुआ है, जो विश्व के पर्यटकों के लिए आकर्षण का केंद्र है।

बुंदेली इतिहास के संदर्भ में चंदेलों का युग प्राचीन बुन्देलखण्ड का स्वर्ण युग कहा जाएगा। खजुराहो की चर्चा ज्यों–ज्यों विश्वव्यापी होती गई, चंदेल राजवंश और उसकी परंपरा की ओर इतिहासकारों और जिज्ञासुओं का ध्यान आकृष्ट होता गया। हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद जो अराजकता फैली उसने चंदेल राज्य की नींव डाली।

चंदेलकालीन सभ्यता एवं संस्कृति का पता हमें तत्कालीन युग के शिलालेखों, भग्वाशेषों एवं साहित्य से पता चलता है। बुंदेलखण्ड के चंदेल युग के राजपूत युग के अंतर्गत माना जाता है। संस्कृत नाटककार बत्स, आल्हरणखण्ड के रचयिता, जगनिक चंदेल राजाओं से आश्रय प्राप्त थे। चंदेल राजा हिंदू धर्म को मानने वाले थे लेकिन अन्य धर्मों का भी इनके काल में विकास हुआ, विशेषतः जैन धर्म का। आल्हरखण्ड के अध्ययन से पता चलता है कि चंदेल राज्य में रहने वाले मुसलमानों को भी काफी सम्मान प्राप्त था।[1]

चंदेलवंश के बाद बुंदेलखण्ड में बुंदेली राज्य की स्थापना हुई, जिसका चरमोत्कर्ष हमें चंपतराय और छत्रसाल के शासन में मिलता है, जिन्होंने इस क्षेत्र की स्वाधीनता के लिए मुगलों से बराबर संघर्ष किया। लेकिन बुंदेली राजाओं में व्याप्त वैमनस्यता और आपसी फूट ने अंग्रेजों को इस क्षेत्र में सफलतापूर्वक अपने पैर जमाने का अवसर मिला। छत्रसाल के अंतिम समय में बुंदेलखण्ड का एक बड़ा भाग मराठों को दे दिया गया। मराठों का उ0 प्र0 एवं म0 प्र0 के बुंदेलखण्ड क्षेत्र में पूर्ण अधिकार था। मराठों एवं अंग्रेजों के युद्ध में मराठे पराजित हुए और ब्रिटिश साम्राज्य धीरे–धीरे जड़ जमाता रहा।

1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम का स्वतंत्रतापूर्व भारतीय राजनीति में अपना महत्व है। झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे के बलिदान और संघर्ष की गाथाएं

---

1. जगनिक : आल्हखण्ड

स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अंकित हैं। 1857 के असफल क्रांति के बाद संपूर्ण भार ब्रिटिश ताज के अधीन हो गया और गवर्नर जनरल की नियुक्ति हुई। और देश में ब्रिटिश सिद्धांतो पर आधारित शासन की स्थापना हुई। ब्रिटिश शासन के अंतर्गत भारत को राजनैतिक एकता प्राप्त हुई और प्रारंभ में ब्रिटिश शासन भारतीय जनता को ईश्वर का वरदान लगा। लेकिन जैसे–जैसे अंग्रेजों का असली चेहरा सामने आया, जनता का मोहभंग होने लगा और उसकी प्रतिक्रिया स्वाधीनता संघर्ष में हुई।

स्वाधीनता के लिये संघर्ष में भारतीय राजनीति दो धाराओं में चलती रही और दोनों का उद्देश्य अंग्रेजों की गुलामी से भारत को मुक्त कराना था। ये दो तरीके थे सशस्त्र संघर्ष का रास्ता और अहिंसात्मक संघर्ष।

अहिंसात्मक संघर्ष का नेतृत्व कांग्रेस ने किया। कांग्रेस ने शुरू–शुरू में राजनैतिक अधिकारों के लिए संघर्ष किये। 1905 के बंगभंग के बाद कांग्रेस ने औपनिबेशिक स्वराज्य को अपना लक्ष्य घोषित किया। लेकिन सरकार इस विषय पर बात करने को तैयार न थी। परिणाम स्वरूप कांग्रेस में फूट हुई और कांग्रेस उदारवादी और उग्रवादी दो दलों में बंट गयी। तिलक के नेतृत्व में उग्रवादी आंदोलन पखान चढ़ा। तिलक ने स्वराज्य को जन्म सिद्ध अधिकार घोषित किया और स्वदेशी आंदोलन प्रारंभ किया तथा एक नयी राजनैतिक चेतना प्रारंभ की। तिलक जेल भेजे गये। प्रेस एक्ट द्वारा वैचारिक स्वातंत्र्य का गला घोंटा गया। प्रथम विश्व युद्ध में महात्मा गांधी के कहने पर जनता ने अंग्रेजों का सहयोग किया। लेकिन ब्रिटिश सरकार की नीतियों से दुःखी होकर क्रांतिकारियों के एक वर्ग ने गदर पार्टी की स्थापना की, जिन्होंने 1915 में क्रांति की कोशिश की।

प्रथम युद्ध के बाद गांधीजी ने असहयोग आंदोलन प्रारंभ किया, लेकिन क्रांतिकारी दल को ये विश्वास हो गया कि ये सरकार वैघानिक आंदोलनों से कुछ नहीं देगी, क्योंकि

स्वराज्य पार्टी विधानमण्डलों में जाकर भी कुछ नहीं कर पायी। चंद्रशेखर आजाद के नेतृत्व में क्रांतिकारी दल ने जनता में सुस्त चेतना को जागृत करने के लिए आतंकवादी प्रयास शुरू किए। भगतसिंह एवं बटुकेशवर दत्त ने केंद्रीय एसेंबली में बम फेंका और जान की बाजी लगा दी। बुंदेलखण्ड में भी अनेक स्थलों पर क्रांतिकारी गतिविधियां संचालित रहीं। झाँसी, ओरछा, जबलपुर, इसके प्रमुख केंद्र रहे। भगतसिंह एवं उनके साथियों की राजनीति में भूमिका राष्ट्रीय आंदोलन के उस चरण की ओर संकेत करती है, जब शताब्दी के तीसरे दसक में परिवर्तित परिस्थितियों क्रांतिकारी नौजवान एक नई दिशा में बढ़ रहे थे। यह नौजवान पीढ़ी पूर्ण राष्ट्रीय स्वाधीनता की बात कर रही थी, जिसे अब तक कांग्रेस ने भी स्वीकार नहीं किया था। यह पीढ़ी जातिगत और सांप्रदायिक भेदभावों की विरोधी थी तथा एक धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण अपना रही थी। भगत सिंह एवं उनके साथियों की गतिविधियां भारतीय जनता के मानस पटल पर अंकित हो चुकी थी। प्रसिद्ध कम्युनिष्ट नेता **बी. पी. रणन्दवे** के अनुसार ''**भगत सिंह एवं उनके साथी देश की जन चेतना के अंग, जनता की आकांक्षाओं तथा प्रतिष्ठा के एवं गुलामी के खाले के लिए चलने वाले संघर्ष के प्रतीक बन गए थे। यह बेचैन क्रांतिकारी नारे लगाकर ही संतुष्ट नहीं हुआ। यह प्रतीक था उस दुर्दमनीय साहस का मौत से पंजा लड़ाने की क्षमता का और यंत्रणाओं के सामने अडिग रहने वाले उस साहस का जिनके बगैर क्रांति की बातें महज लफ्फाज़ी हुआ करती हैं।. . . . भगत सिंह ने ब्रिटिश शासन के प्रति अपनी गहरी नफरत को असीम व्यक्तिगत शौर्य के साथ जोड़ा और इस प्रकार वे संघर्षरत् राष्ट्र के, विदेशी शासन के प्रति उसकी नफरत के प्रतीक बन गए।**[1]

भगत सिंह ने क्रांतिकारी आंदोलन को तीन नारे दिये– **इंकलाब जिंदाबाद,**

1. शहीद भगत सिंह की चुनी कृतियां : समाजवादी साहित्य सदन द्वारा प्रकाशित पृ0 3

**सर्वहारा जिंदाबाद और साम्राज्यवाद का नाश हो।**[1] वास्तव में भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद आदि क्रांतिकारी राष्ट्रीय आंदोलन की क्रांतिकारी विचारधारा के प्रतीक ही नहीं वरन् विचारक और प्रर्वतक के रूप में जाने जाते हैं। यह धारा 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम से शुरू होती है तथा अनुशीलन, युगान्तर, गदर पार्टी, हिंदुस्तान रिपब्लिक ऐसोशियेसन, भारतीय नौजवान सभा, हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिक एसोशियेसन से होती हुई तरह–तरह के धक्के झेलती, गिरती उठती आगे बढ़ती है तथा बाद में मजदूरों की लंबी–लंबी राजनीतिक हड़तालें छात्र आंदोलन किसानों के सशस्त्र संघर्ष तथा नाविकों के विद्रोह के रूप में एक क्रांतिकारी आंदोलन का रूप ग्रहण करती हुई, ब्रिटिश सत्ता से टकराती और उसके अस्तित्व के लिए एक गंभीर चुनौती पेश करती है। हिंदुस्तान रिपब्लिक एसोशियेसन में "सोशिलिस्ट" शब्द का जुड़ना क्रांतिकारी आंदोलन के इतिहास में एक विशिष्ट घटना थी जो इस आंदोलन का उद्‌देश्य प्रकट करती है।[2]

राष्ट्रीय आंदोलन की क्रांतिकारी धारा से अलग स्वाधीनता आंदोलन में कांग्रेस की धारा की अलग चलती है, जिसके प्रवर्तक गांधीजी थे। ये दोनों धाराएं आपस में टकरा कर विकसित होती हैं। कांग्रेस का मुख्य उद्देश्य क्रांति न होकर ब्रिटिश सत्ता पर दबाव डालकर संपन्न वर्ग के लिए कुछ रियायतों को प्राप्त करना था। गांधीजी का जब अभियान वस्तुतः अंग्रजों के ऊपर समझौतों के लिए दबाव डालने का हथियार रहा। उनका असहयोग आंदोलन क्रांतिकारी संघर्ष की प्रतिक्रिया में उभरता है और उसके संघर्ष की धार को कुंद करने की कोशिश करता है। असहयोग आंदोलन में भारतीय जनता ने एक सक्रिय भागीदारी प्रदर्शित की। इस जन चेतना के निर्माण में क्रांतिकारी गतिविधियों की परोक्ष भूमिका रही। चौरी–चौरा काण्ड के बाद असहयोग आंदोलन का जिस तरह से स्थगन किया उसे जनता ने उचित नहीं माना। गांधी इरविन समझौते की काली छाया के नीचे बैठकर देश की सत्ता ने देश के 3

1. शिव वर्मा : भगत सिंह की चुनी हुई कृतियां, पृ0 19
2. राजेन्द्र सक्सेना : भारतीय राजनीति में भगतसिंह का योगदान, पृ0 109

सपूतों भगत सिंह, राजगुरू और सुखदेव को फांसी की सजा सुनाई। भारतीय जनता और कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने गांधीजी से सजा रद्द कराने की अपील की। लेकिन गांधीजी ने न सिर्फ ऐसी अपीलों को अनदेखा कर दिया बल्कि लार्ड इरविन से अनुरोध किया कि यदि फांसी की सजा इन क्रांतिकारियों को देनी ही है तो इस कार्य को कांग्रेस के करांची अधिवेशन से पहले ही करा लिया जाय।[1]

लेकिन असहयोग आंदोलन का भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में विशेष महत्व है। इस आंदोलन के साथ ही गांधी युग का श्री गणेश होता है। इस आंदोलन से कांग्रेस एक लोकप्रिय अखिल भारतीय संस्था तथा भारत में विदेशी शासन के विरूद्ध अहिंसात्मक विरोध का माध्यम बन गयी थी।[2]

ये आंदोलन गिने चुने बुद्धिजीवियों का आंदोलन न रहकर आम जनता का आंदोलन बन गया था, जिसमें किसानों और मजदूरों ने भी इसमें प्रांण–पण से भाग लिया। गांधीजी ने इस तथ्य को समझा था कि अंग्रजों की पाशविक शक्ति का मुकाबला हिंसा से नहीं हो सकता। बल्कि अहिंसा, आत्मबल और निर्भरता से ही इन्हें हराया जा सकता है। कूपलेण्ट के अनुसार **"गांधी जी ने भारत के इतिहास का रूख बदल दिया। उन्होंने वह कार्य कर दिखाया जो तिलक भी नहीं कर सके थे। उन्होंने अहिंसात्मक शक्ति के द्वारा राष्ट्रीय आंदोलन को क्रांतिकारी ही नहीं बनाया, अपितु लोकप्रिय बना दिया।"**[3]

शांतिपूर्ण प्रतिरोध एवं सत्याग्रह का जो मार्ग गांधीजी ने अपनाया वह बिल्कुल नया था। सरकार के पास उसका कोई संतोषजनक जबाव नहीं था। इससे जनता में जागृति के साथ–साथ आत्म गौरव और स्वदेशी की लोकप्रियता की भावना आई। विदेशी माल के बहिष्कार से भारत में ब्रिटिश व्यापारियों के माल को काफी हानि पहुंची। स्वदेशी के प्रयोग ने हजारों बुनकरों को कार्य प्रदान किया। सुभाष चन्द्र बोस के अनुसार "1921 के असहयोग

---

1. नवभारत टाईम्स, लखनऊ 23 मार्च 1990, पृ0 7
2. इकबाल नारायन : हमारा राष्ट्रीय आंदोलन एवं संविधान, पृ0 102
3. जे. वी. कृपलानी : गांधी द स्टेटसमैन

आंदोलन ने देश को सचमुच एक बहुत अच्छी तरह संगठित बल दिया। इसके पहले कांग्रेस केवल एक संवैधानिक दल एवं बातचीत करने वाली संस्था थी।"

बुंदेलखण्ड में भी झाँसी, जालौन, बांदा, हमीरपुर, दतिया, सागर, दमोह, जबलपुर, शिवनी, छतरपुर में असहयोग आंदोलन में लाखों सत्याग्रहियों ने अपूर्ण सहभागिता की।

असहयोग आंदोलन की सबसे बड़ी कमजोरी यह थी कि इसने धर्म निरपेक्षता के सिद्धांत के बिल्कुल विपरीत कार्य किया। गांधीजी ने धर्म को व्यक्ति का निजी मामला बताया और खिलाफत के पूर्ण धार्मिक मामलों को राजनीति में इतना डुबो दिया कि इसके बाद सांप्रदायिकता की समस्या बढ़ती गयी।

असहयोग आंदोलन को चौरी–चौर काण्ड के बाद एकदम वापस लेने के बाद कांग्रेस और मुस्लिम लीग की मित्रता समाप्त हो गई। हिंदु मुस्लिम एकता की भावना भी कुंठित होने लगी। असहयोग आंदोलन अपने कुछ कार्यक्रमों में नितांत असफल रहा जैसे विधान मण्डल कार्यक्रमों के बहिष्कार से अवसरवादी और राजभक्त विधान मण्डलों में भर गए। इस नीति से असंतुष्ट कांग्रेसियों ने स्वराज्य पार्टी बनाकर विधान मण्डलों में भाग लिया। बाद में कांग्रेस ने भी इस मूल को स्वीकारा।

सविनय अवज्ञा आंदोलन भारतीय के दोनों चरणों में भारतीय जनता ने अभूतपूर्व सहभागिता की। इसमें बुंदेलखण्ड के सभी अंचलों से सहभागिता हुई। सविनय अवज्ञा परिणाम की दृष्टि से प्रभावशाली नहीं रहा। आंदोलन में भाग लेने वाले लोगों में जिस आत्मबल की आवश्यकता थी, उसका अभाव रहा। गांधीजी द्वारा अकारण आंदोलन को स्थगित करना एवं समाप्त करना आंदोलन की आलोचना का विषय रहा। सुभाष चंद्र बोस ने कहा था "आंदोलन स्थगन उसकी असफलता की घोषणा है।"[1]

मुस्लिम लीग के तत्वाधान में अधिकांश मुस्लिम समुदाय इससे विमुख रहा और

---

1. आर. सी. अग्रवाल : भारत का राष्ट्रीय आंदोलन एवं भारतीय संविधान

अंबेडकर के नेतृत्व में अछूत संप्रदाय भी इससे अलग रहा और आंदोलन स्वराज्य के अपने लक्ष्य को पूरा नहीं कर सका।

1947 में जब क्रिप्स प्रस्ताव अचानक वापस ले लिये गये, उसका परिणाम यह हुआ कि ब्रिटिश शासकों और कांग्रेस नेताओं की खाई और भी चौड़ी हो गई। सारे देश में सरकार के विरूद्ध आंदोलन चलाने का निर्णय लिया। संभवतः भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में यह पहला अवसर था जब गांधीजी के विचार पं0 नेहरू से भी उग्र थे। 11 अप्रैल 1942 में **'हरिजन'** के एक लेख में लिखा **"मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि मैं अब अपना धीरज रखने में असमर्थ हूँ। क्या भारत के करोड़ों लोगों में से असंख्य सैनिक तैयार नहीं किये जा सकते ? क्या वे संसार में किसी से कम बहादुर है ? . . . . . देश की इन सुरक्षा तैयारियों में मुझे कहीं भी भारतीय स्वाधीनता झांकती नहीं दिखायी देती।"**[1]

**भारत छोड़ो आंदोलन** का उद्देश्य भारत की स्वतंत्रता की स्वीकृति और ब्रिटिश शासन का अंत था। भारत छोड़ो आंदोलन का घोर दमन किया गया। हजारों लोग मारे गए। बुंदेलखण्ड के लगभग सभी अंचलों के हजारों लोगों ने गिरफ्तारियां दीं और अंग्रेजी दमन का आतंक सहन किया। इसी समय मुस्लिम लीग के द्वारा अलग राज्य की मांग की गयी जिसे गांधीजी ने कभी नहीं स्वीकारा। भारत छोड़ो आंदोलन स्वाधीनता आंदोलन का वह चरण है, जिसमें ब्रिटिश राज्य को हिलाकर रख दिया और उन्हें स्वाधीनता के लिए तैयार होना पड़ा। संयोग से द्वितीय विश्व युद्ध के परिणाम स्वरूप हुई ब्रिटेन की जर्जर स्थिति ने भी स्वतंत्रता का पथ प्रशस्त किया।

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के प्रत्येक चरण में बुंदेलखण्ड के सभी अंचलों ने

---

1. महात्मा गांधी : 'हरिजन' 11 अप्रैल 1942

सक्रियता से भाग लिया। गदर पार्टी के क्रिया कलापों में जहाँ परमानंद जी की महती भूमिका रही, वहाँ क्रांतिकारी गतिविधियों भगवान दास माहौर एवं सदाशिव राव सिरमौर रहे। गांधीजी के विभिन्न सत्याग्रह आंदोलनों में आत्माराम गोविंद खेर, लक्ष्मी नारायण अग्निहोत्री, दीवान शत्रुघन सिंह, सेठ गोविन्द दास, सुभद्रा कुमारी चौहान, रामसेवक खरे आदि नेताओं ने बुंदेलखण्ड की जनता को नेतृत्व दिया और स्वाधीनता की इस जंग में यहाँ की जनता ने आहुति दी।

भारतीय राजनीति में बुंदेलखण्ड की भूमिका प्राचीन काल से लेकर स्वाधीनता के अहिंसात्मक संघर्ष तक सक्रिय एवं महत्वपूर्ण रही है और स्वतंत्रता पूर्व राजनीति में बुन्देलखण्ड के योगदान को अनदेखा नहीं किया जा सकता।

= = = =0= = = =

# सन्दर्भ ग्रंथ सूची

# संदर्भ ग्रन्थ सूची

## पुस्तकें


| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | अब्दुल हारून | : | चंदेल साम्राज्य का क्रमिक विकास एवं पतन |
| 2. | अग्रवार आर. सी. | : | भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन एवं भारतीय संविधान का विकास |
| 3. | अग्रवाल हरीमोहन | : | क्रांतिकारी आंदोलन में बुन्देलखण्ड का इतिहास |
| 4. | अवस्थी रीता | : | मध्यकालीन बुन्देलखण्ड का राजनैतिक इतिहास |
| 5. | अलतेकर ए. एस. | : | प्राचीन भारतीय शासन |
| 6. | आन्ध्रे वी. आर. | : | बुन्देलखण्ड अंडर मराठाज |
| 7. | आजाद अबुल कलाम | : | इंडिया विन्स फ्रीडम |
| 8. | ईश्वरी प्रसाद | : | हिस्ट्री आफ माडर्न इंडिया |
| 9. | एनीबेसेंट | : | हाउ इंडिया गौट हर फ्रीडम |
| 10. | एटकिसन | : | स्टैटिटिस्टिकल एंड डिस्क्रिप्टिव एकाउण्ट आफ एन. डब्लू. पी. (बुन्देलखण्ड) |
| 11. | कबाड़ी वी. पी. | : | इम्मार्टल महात्मा |
| 12. | कार्वर | : | हिस्ट्री आफ बुन्देलखण्ड |
| 13. | केज एण्ड मोलीसन्स | : | हिस्ट्री आफ इंडियन म्यूटिनी |
| 14. | कूपलैंड आर. | : | इंडियन पालिटिक्स (1936–42) |
| 15. | खत्री स्वदेश | : | बुन्देलखण्ड में राष्ट्रीय एकता का इतिहास (1526–1939) |
| 16. | गुप्त मोहन लाल | : | बुन्देलखण्ड की अमर क्रांति |
| 17. | गुप्त नत्थू लाल | : | बुन्देलखण्ड की अमर क्रांति |
| 18. | गुप्त भगवान दास | : | मुगलों के अन्तर्गत बुंदेलखण्ड का सांस्कृति और आर्थिक और समाजिक इतिहास |
| 19. | गुप्त ज्ञान प्रकाश | : | मुगलकालीन बुंदेलखण्ड |
| 20. | गुप्त मनमथ नाथ | : | क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास |
| 21. | चन्द्रा विपिन | : | आधुनिक भारत |
| 22. | चटर्जी एम० पी० | : | इंडियाज स्ट्रगल फार फ्रीडम |
| 23. | चिन्तामणि सी. वाई. | : | इंडियन पालिटिक्स सिन्स म्यूटिनी |
| 24. | जगनिक | : | आल्हखण्ड |
| 25. | जायसवाल के० पी० | : | हिन्दू पालिटी |

26. जायसवाल के0 पी0 : अन्धकार युगीन भारत
27. जैन पद्मराज : गदर का इतिहास
28. जोश सोहन सिंह : हिन्दुस्तानी गदर पार्टी
29. झा डी0 डी0 : अर्ली हिस्ट्री आफ बुन्देलखण्ड
30. ठाकुर हीरा सिंह : बुन्देली माटी के सपूत
31. ठाकुर एग्नेस : 1857 का विद्रोह एवं झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई
32. ढेगुला राम स्वरूप : बुन्देलखण्ड का राजनीतिक एवं सांस्कृति अनुशीलन
33. तामसकर वी. : रानी आफ झाँसी
34. त्रिपाठी श्रवण कुमार : बुन्देलखण्ड की अमर क्रांति
35. त्रिपाठी मोतीलाल : बुन्देलखण्ड का इतिहास
36. त्रिपाठी आर. एस. : हिस्ट्री आफ ऐन्सियेन्ट इंडिया
37. त्रिपाठी कमलेश कुमार : चंदेल समाज : ऐतिहासिक परिशीलन
38. त्रिपाठी मोतीलाल : बुन्देलखण्ड दर्शन
39. दत्त के0 के0 : इंडियाज मार्च टु फ्रीडम
40. दास ब्रजरत्न : बुन्देलों का इतिहास
41. दीक्षित आर. के0 : चंदेलाज आफ जैजाकभुक्ति
42. देओल जी. एस. : सरदार भगत सिंह
43. नारायण इकबाल : हमारा राष्ट्रीय आंदोलन तथा संविधान
44. नेहरू जवाहर लाल : डिस्कवरी आफ इंडिया
45. निगम एम0 एल0 : कल्चरल हिस्ट्री आफ इंडिया
46. पटेरिया संतोष कुमार : चंदेरी लोक संस्कृति
47. पाग्सन डब्लू. आर. : हिस्ट्री आफ बुन्देलखण्ड
48. पाण्डेय अयोध्या प्रसाद : चंदेलकालीन बुन्देलखण्ड
49. फ्रेंकलिंग जे0 : मेम्वायर आफ बुन्देलखण्ड
50. फारेस्ट जार्ज : हिस्ट्री आफ इंडियन म्यूटिनी
51. बल शास्त्री हरदास : आर्म्ड स्ट्रगल फार फ्रीडम
52. बोस सुभाष चन्द्र : द इडियन स्ट्रगल
53. बुन्देली राधाकृष्ण एवं सत्यभामा : बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन
54. मंजूमदार आर. सी. : हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ द इंडियन प्युपिल

55. मड़वैया कैलाश : बुन्देलखण्ड के इतिहास पुरूष
56. मिश्र अर्पणा : बुंदेलो का मुगलों से सम्बन्ध
57. मिश्र जे0 पी0 : बुन्देला रिबेलियन 1842
58. मिश्र कमलेश : बुन्देलखण्ड के भौतिक आधार
59. मुंशी श्याम लाल : तवारीखे बुन्देलखण्ड
60. रावत श्रीपति सहाय : समरगाथा
61. रावर्टस पी. ई. : ब्रिटिश कालीन भारत का इतिहास
62. रिजवी एस0 एस0 : फ्रीडम स्ट्रगल इन यू0 पी0 (वोल्यूम–3)
63. वर्मा एस0 वी0 : ए स्टडी आफ मराठा डिप्लोमेसी
64. वर्मा अनिल कुमार : बुन्देल मराठा सम्बन्ध (1665–1761)
65. वर्मा वृन्दावन लाल : झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई
66. विश्वकर्मा जे0 के0 : कल्चलर जाग्रफी आफ बुन्देलखण्ड रीजन
67. वैश्य सुधा : भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में देशी रियासतों का योगदान
68. सरकार विपिन : आधुनिक भारत
69. सावरकर विनायक दामोदर : 1857 का भारतीय स्वातंत्र्य समर
70. स्मिथ बिन्सेन्ट : आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इंडिया
71. सिन्हा एस0 एम0 : द रिवोल्ट आफ 1857 इन बुन्देलखण्ड एण्ड एडज्वायनिंग टेरीटरीज
72. सिल्वर्ड सी0 के0 : कन्ट्रीब्यूशन टु हिस्ट्री आफ वेस्ट बुन्देलखण्ड
73. सिसोंदिया सी0 पी0 : बुन्देलखण्ड का ब्रिटिश कालीन इतिहास एवं संस्कृति
74. सिंह देवेन्द्र कुमार : 1857 का प्रथम स्वाधीनता संग्राम एवं जनपद जालौन
75. सीता रमैया पट्टाभि : द हिस्ट्री आफ इंडियन नेशनल कांग्रेस
76. श्रीवास्तव प्रताप नारायण : बीर बुन्देले
77. श्रीवास्तव संजय : राष्ट्रीय आंदोलन में बुन्देलखण्ड का योगदान
78. श्रीवास्तव रमेश चन्द्र : बुन्देलखण्ड–साहित्यिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक वैभव
79. शास्त्री बागीस : बुन्देलखण्ड का इतिहास
80. शम्भू दयाल : बुन्देलखण्ड का 1857 का स्वतंत्रता संग्राम
81. सुन्दर लाल : भारत में अंग्रेजी राज
82. हार्डीकर श्री निवास बालाजी : झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई
83. हार्डीकर श्री निवास बालाजी : तात्या टोपे

## लेख


1. ऐदलवाडकर रेखा : महारानी लक्ष्मीबाई (म0 प्र0 सन्देश 1972)
2. दशरथ जैन (सम्पादक) : राष्ट्रगौरव– बुन्देलखण्ड का स्वतंत्रता संग्राम (विशेषांक)
3. जौहरी वी0 के0 : बुन्देलखण्ड इतिहास के आइने में (झांसी महोत्सव स्मारिका 1995)
4. वाजपेयी के0 डी0 : बुन्देलखण्ड का गौरव (मानव अभिनंदन समिति, भोपाल)
5. भाटिया राजकुमार : बुन्देलखण्ड में अंग्रेजों का प्रथम प्रवेश (समग्र बुन्देलखण्ड 1998)
6. मेहरोत्रा सोनिया : बुन्देलखण्ड वंदनीय नारियां (बलभद्र पुस्तकालय स्वर्ण जयन्ती विशेषांक)
7. सक्सेना जे0 पी0 : जियोलॉजीकल कन्ट्रोल ऑन द इवोल्यूशन आफ बुन्देलखण्ड टोपोग्राफी (जर्नल भूगोल, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर)
8. सक्सेना राजेश कुमार : बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक धरोहर (स्मारिका झाँसी महोत्सव 1995)
9. श्रीवास्तव हरीमोहन : लक्ष्मीबाई का शौर्य वर्णन (वेतवा वाणी)


## अन्य


1. जिला जालौन का गजेटियर
2. जिला झाँसी का गजेटियर
3. जिला बांदा का गजेटियर
4. जिला हमीरपुर का गजेटियर
5. हरिजन (समाचार पत्र)
6. यंग इंडिया (समाचार पत्र)
7. मध्य प्रदेश संदेश (पत्रिका)
8. नवभारत टाईम्स (समाचार पत्र)
9. स्मारिका झांसी महोत्सव
10. समग्र बुन्देलखण्ड 1998 (विशेषांक)